CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

भर्तृहरि शतकम्

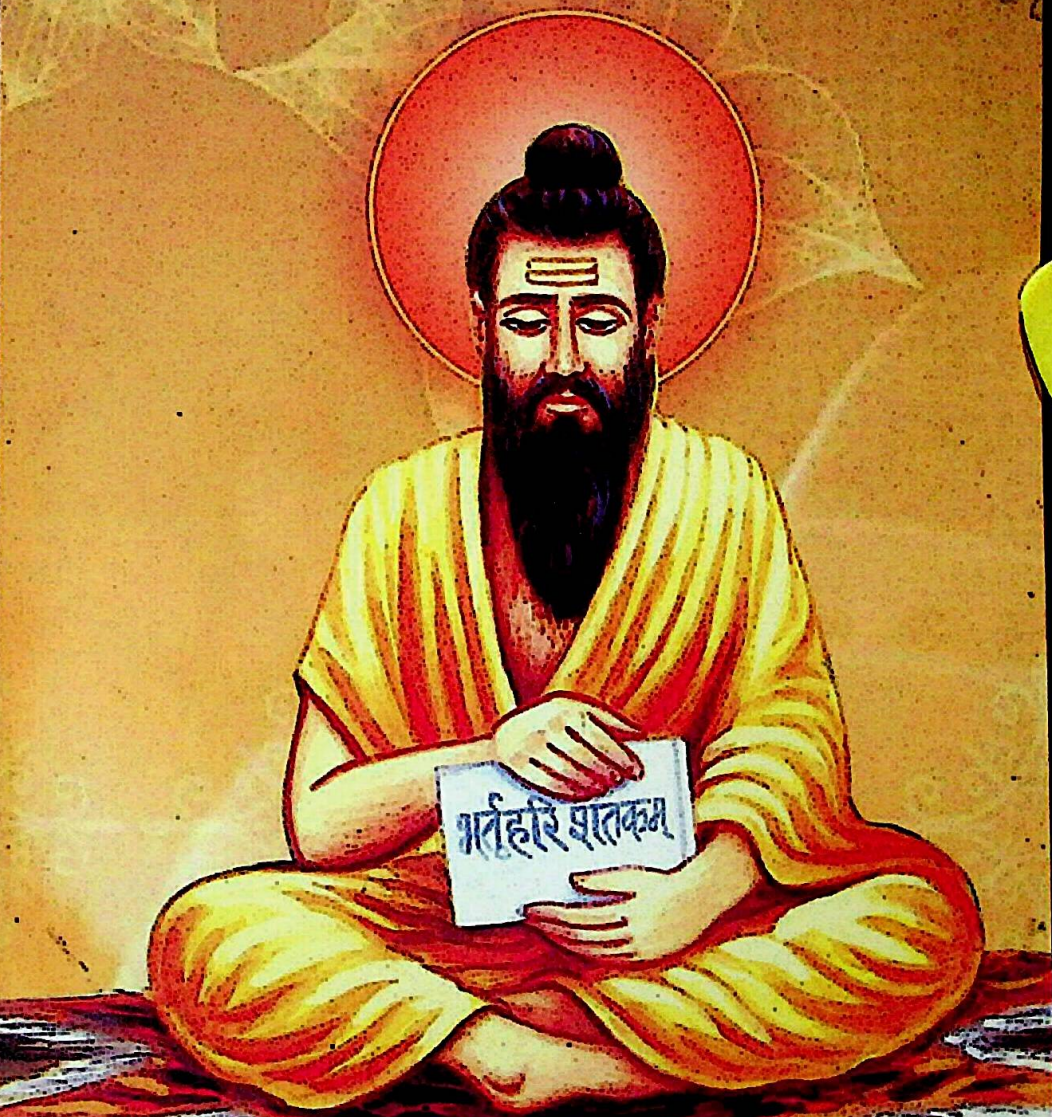

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

CC-0. Unknown. Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भर्तृहरिशतकम्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वामी जगदीश्वरानन्द की अन्य पुस्तकें :—

- विदुर नीति
- चाणक्य नीति
- भर्तृहरिशतकम्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ओ३म्

भर्तृहरिशतकम्

(नीति-शृङ्गार-वैराग्यसमन्वितम्)

अनुवादक एवं टिप्पणीकार—
स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

प्रकाशक :
सुबोध पब्लिकेशन्स

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ISBN : 978-81-7078-097-7

प्रकाशक
सुबोध पब्लिकेशन्स,
2/3-बी, अन्सारी रोड, नई दिल्ली-110002
दूरभाष : 011-23278858

संस्करण
सन् 2016
दयानन्दाब्द 192
संवत् 2072
सृष्टि संवत् 1,96,08,53,116

मूल्य : ₹ 125.00

टाईप-सैटिंग
स्वस्ति कम्प्यूटर्स, करनाल (हरियाणा)
चलभाष : 092559-12314

मुद्रक
जयमाया ऑफसेट, शाहदरा, दिल्ली-110095

आवरण
एम० 2 डब्ल्यु० मीडिया

P-411

Bhartriharishatakam, Edited by : Swami Jagdishwaranand Saraswati
Published by : Subodh Publications
2/3-B, Ansari Road, Daryaganj, New Delhi-110002, (INDIA)
e-mail : Subodhbooks@yahoo.co.in

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिका

भर्तृहरि के प्रति अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए पाश्चात्य लेखक आर्थर डब्ल्यू० राइडर [Arthur W. Ryder] ने लिखा है—

In short verses the Hindus excel. Their mastery of form, their play of fancy, their depth and tenderness of feeling are all exquisite. Of the many who wrote such verses, the greatest is Bhartrihari.

—[An Anthology of World Poetry,
Edited by M. V. Doren, Cassell]

अर्थात् छोटे-छोटे पद्य अथवा श्लोक लिखने में भारतीय सब से आगे हैं। उनका रीति पर अधिकार, उनकी कल्पनाशक्ति की उड़ान, उनकी अनुभूति की गहराई और कोमलता—सभी अत्युत्कृष्ट हैं। जिन अनेक व्यक्तियों ने ऐसे पद्य लिखे हैं भर्तृहरि उनमें मूर्द्धन्य हैं।

नीति, शृंगार और वैराग्यशतकों का रचयिता यह भर्तृहरि कौन था? महाकवि भर्तृहरि की कविता जितनी प्रसिद्ध है उनका व्यक्तित्व उतना ही अज्ञात है। जनश्रुति के आधार पर वे महाराज विक्रमादित्य के ज्येष्ठ भ्राता थे। चीनी यात्री इत्सिंग ने 'वाक्यपदीय' के कर्त्ता भर्तृहरि नाम के वैयाकरण की मृत्यु 615 ई० में लिखी है। उसने यह भी लिखा है कि भर्तृहरि वैखानस-संन्यास-जीवन के आनन्द की तथा गृहस्थ-जीवन के प्रमोद की रस्सियों के बने झूले पर सात बार इधर से उधर झूलते रहे। पाश्चात्य अन्वेषक इत्सिंग के कथन में आस्था रखते हुए वैयाकरण भर्तृहरि और नीति आदि शतकों के रचयिता को अभिन्न मानते हैं। परन्तु भर्तृहरि के शतक डिण्डिम घोष के साथ कह रहे हैं कि भर्तृहरि बौद्ध नहीं अपितु वैदिकधर्मी था। वैदिकधर्म के आचार, विचार, पद्धति और प्रक्रिया पर उन्हें पूर्ण विश्वास था।

भर्तृहरि का प्रत्येक श्लोक लावण्यमयी एक तन्वी कविता है।

'नीतिशतक' में मनुस्मृति और महाभारत की गम्भीर नैतिकता कालिदास की-सी प्रतिभा के साथ प्रस्फुटित हुई है। विद्या, वीरता, दया, मैत्री, उदारता, साहस, कृतज्ञता, परोपकार-परायणता आदि मानव-जीवन को ऊँचा उठानेवाली उदात्त भावनाओं का उन्होंने बड़ी सरलता एवं सरस पदावली में वर्णन किया है। इसमें जिन नीति-सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है वे संसार के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानव-मात्र के लिए भूषण-रूप हैं।

'**शृंगारशतक**' में कवि ने शृंगार का चटकीला चित्रण किया है। इस शतक में कवि ने ललित-मधुर शैली में यह दिखलाया है कि स्त्रियाँ अपने आकषर्ण द्वारा पुरुषों पर कैसा जादू कर देती हैं। शूर से शूर पुरुष भी काम का गर्व चूर कर देने में असमर्थ है।

'**वैराग्यशतक**' में कवि ने कारुण्य और निराकुलता के साथ संसार की निस्सारता और वैराग्य की आवश्यकता प्रतिपादित की है। संसार एक विचित्र पहेली है—कहीं वीणा का सुमधुर संगीत सुनाई पड़ता है, कहीं सुन्दर रमणियाँ दीख पड़ती हैं तो कही कुष्ठ-पीड़ित शरीरों के बहते हुए घाव। अतः पता नहीं कि यह संसार अमृतमय है या विषमय, वरदान है या अभिशाप।

शरीर के जर्जर हो जाने पर भी भोग-तृष्णा समाप्त नहीं होती, परन्तु भोगों में रोगों का भय है। अतः वैराग्य का आश्रय लेने पर ही अभय की प्राप्ति हो सकती है। भर्तृहरि की दृष्टि में तपस्वी जीवन ही श्रेयस्कर है।

भर्तृहरि की शैली प्रसादगुण-सम्पन्न और मंजी हुई है। उसमें ओज और प्रवाह है, पदलालित्य और भावप्रवणता है। भाषा सरल, सुबोध और स्वाभाविक है। दैनिक जीवन के गूढ़ एवं प्रत्यक्ष सत्यों को भर्तृहरि ने बड़े मनोरम एवं हृदयहारी रूप में प्रस्तुत किया है। कहीं नीति के उदात्त उपदेश हैं, कहीं रमणियों के रूप-विलास का चित्रण और कहीं वैराग्य का शुभप्रकाश द्योतित हो रहा है। छन्दों की विविधता, विषय की रोचकता और सूक्तियों की सुन्दरता भर्तृहरि के काव्य को निस्सन्देह सर्वगुणसम्पन्नता प्रदान करती है।

प्रस्तुत पुस्तक में भर्तृहरि के तीनों शतकों का अनुवाद प्रस्तुत है। इन शतकों पर बाजार में कोई उत्तम अनुवाद उपलब्ध नहीं था। जो हैं वे घटिया कागज पर और रद्दी छपे हुए हैं। इसी कमी को अनुभव करते हुए यह अनुवाद पाठकों के करकमलों में समर्पित है। पुस्तक में स्थान-स्थान पर पाद-टिप्पणियाँ और विशेष वक्तव्य लिखकर हमने इसकी उपयोगिता को और अधिक बढ़ाने का प्रयत्न किया है। श्लोकों की अनुक्रमणिका भी दे दी गई है जो विद्वानों के लिए विशेष रूप से उपयोगी होगी।

वेद-सदन
एच 1/2, माडल टाउन,
दिल्ली—110009

विदुषामनुचरः
जगदीश विद्यार्थी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषयसूची

विषय	पृ० संख्या
नीतिशतकम्	8
मङ्गलाचरणम्	8
अज्ञपद्धतिः	9
विद्वत्पद्धतिः	16
मानशौर्यपद्धतिः	22
अर्थपद्धतिः	28
दुर्जनपद्धतिः	35
सुजनपद्धतिः	40
परोपकारपद्धतिः	46
धैर्यपद्धतिः	53
दैवपद्धतिः	58
कर्मपद्धतिः	65
परिशिष्टम्	71
शृंगारशतकम्	73
वैराग्यशतकम्	129
श्लोकानुक्रमिणका	193

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ओ३म्

नीतिशतकम्

मङ्गलाचरणम्

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये ।
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे॥

शब्दार्थ— जो (दिक्-) पूर्व आदि दिशाओं (कालादि-) भूत आदि काल इत्यादि से (अनवच्छिन्न-) अलग न कर सकने योग्य (अनन्त-) अपरम्पार=जिसका आदि-अन्त न हो (चिन्मात्रमूर्तये) ज्ञान ही जिसका स्वरूप है, ऐसे (स्व+अनुभूति+एक+मानाय) निजी ज्ञान, अपना अनुभव ही जिसे जानने का एकमात्र मापदण्ड हो, उस (शान्ताय) शान्त, निश्चल (तेजसे) ज्योतिर्मय परब्रह्म परमात्मा को (नमः) प्रणाम है।

भावार्थ—परमेश्वर पूर्व आदि सभी दिशाओं और भूत, वर्तमानादि सभी कालों में सदा अखण्ड, एकरस, समानरूप में विद्यमान है। वाणी द्वारा उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उस अनन्त और चैतन्य स्वरूप परब्रह्म को केवल आत्मानुभव से ही जाना जा सकता है। ऐसे शान्त और ज्योतिर्मय ब्रह्म को बारम्बार नमस्कार है।[1]

---

1. इस मंगलाचरण के पश्चात् किन्हीं पुस्तकों में निम्न श्लोक उपलब्ध होता है—

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता,
साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या,
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च॥ 1॥

मैं अपने चित्त में रात-दिन जिसकी स्मृति सँजोए रहता हूँ वह बाला मुझसे प्रेम नहीं करती, वह किसी और पुरुष पर मुग्ध है। वह पुरुष किसी अन्य स्त्री में आसक्त है। इस पुरुष की अभिलषित स्त्री मुझ पर प्रसन्न है, इसलिए रानी को, रानी द्वारा चाहे हुए पुरुष को, उस पुरुष की चाही हुई वेश्या को तथा मुझे धिक्कार है और सब से अधिक कामदेव को धिक्कार है जिसने यह सारा कुचक्र चलाया।

यह श्लोक नीतिशतक में प्रसंगोचित प्रतीत नहीं होता, अतः हमने इसे मूलपाठ में न देकर पाद-टिप्पणी में दिया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अज्ञपद्धति

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम्॥ 1॥

शब्दार्थ—(बोद्धारः) विद्वान् लोग (मत्सर+ग्रस्ताः) ईर्ष्या-द्वेष से पीड़ित हैं, (प्रभवः) अधिकारीगण (स्मय+दूषिताः) अभिमान में चूर हैं (च) और (अन्ये) अन्य लोग (अबोध+उपहताः) अज्ञान के कारण नष्ट हो रहे हैं, अतः (सुभाषितम्) सूक्तियाँ=उत्तम बातें (अङ्गे) शरीर में, मन में (जीर्णम्) रहकर गल जाती हैं।

भावार्थ—विद्वान् लोग एक-दूसरे से डाह रखते हैं, जो धनी या अधिकारी हैं वे अभिमान के नशे में चूर हैं, जो साधारण लोग हैं वे पहले ही अज्ञान में फँसे हुए हैं, ऐसी अवस्था में साधु-सन्तों के दिव्य उपदेश उनके मन में रह जाते हैं, वे किसे सुनाएँ?

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति॥ 2॥

शब्दार्थ—(अज्ञः) अबोध, अज्ञानी, मूर्ख मनुष्य को (सुखम्) सरलता से (आराध्यः) समझाया जा सकता है और (विशेषज्ञः) ज्ञानी, बुद्धिमान् को (सुखतरम्) और भी सरलता से (आराध्यते) मनाया जा सकता है परन्तु (ज्ञान+लव+दुर्विदग्धम्) थोड़ी-सी अधिकचरी जानकारी से, ज्ञानगर्व से भरे, थोड़ा जानकर ही अपने-आपको पण्डित माननेवाले (तम्) ऐसे (नरम्) मनुष्य को तो (ब्रह्मा+अपि) चतुर्वेदवित् ब्रह्मा भी (न रञ्जयति) सन्तुष्ट नहीं कर सकता।

भावार्थ—अबोध व्यक्ति को सरलता से समझाया जा सकता है, बुद्धिमान् को और भी सरलता से समझाया जा सकता है किन्तु ज्ञान-लव-दुर्विदग्ध अर्थात् अधकचरे ज्ञान से ही अपने को पण्डित माननेवाले मनुष्य को चारों वेदों का ज्ञाता ब्रह्मा भी नहीं समझा सकता।

विशेष—'दुनिया में डेढ़ अकल, एक मेरे पास, आधी में सारी दुनिया'—ऐसा समझनेवाले व्यक्ति को ज्ञान-लव-दुर्विदग्ध कहते हैं। ऐसे व्यक्ति को बड़े से बड़ा वेदों का विद्वान् भी नहीं समझा सकता। सन्त तुलसीदास जी ने भी कहा है—

फूलइ फलइ न बेत, जदपि सुधा बरसिंह जलद।
मूरख हृदय न चेत, जौं गुरु मिलहिं बिरंचि सम॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्,
समुद्रमपि सन्तरेत्प्रचलदूर्मिमालाकुलम्।
भुजङ्गमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद् धारयेत्,
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्॥ 3॥

शब्दार्थ—(मकर+वक्त्र+दंष्ट्र+अन्तरात्) मनुष्य मगरमच्छ के मुँह की नुकीली दाढ़ों के भीतर से (मणिम्) मणि को (प्रसह्य) साहस करके (उद्धरेत्) निकाल सकता है। (प्रचलत्+ऊर्मिमाला+आकुलम्) चञ्चल लहरों से क्षुब्ध (समुद्रम् अपि) समुद्र को भी (सन्तरेत्) तैरकर पार कर सकता है। (कोपितम्) क्रुद्ध किये हुए (भुजङ्गम्-अपि) साँप को भी (शिरसि) सिर पर (पुष्पवत्) फूलमाला के समान (धारयेत्) धारण कर सकता है, (तु) किन्तु (प्रतिनिविष्ट+मूर्खजन+चित्तम्) बुराइयों में फँसे हुए दुराग्रही, हठी, मूर्ख मनुष्य के चित्त को (न आराधयेत्) नहीं मना सकता।

भावार्थ—मनुष्य साहस करे तो मगरमच्छ के मुँह में हाथ डालकर उसकी नुकीली दाढ़ों के बीच में फँसी हुई मणि को बाहर निकालकर ला सकता है, आँधी और तूफान के कारण चञ्चल लहरों से विक्षुब्ध समुद्र को भी तैरकर पार कर सकता है और क्रुद्ध किये हुए फुंकार मारते हुए साँप को पुष्पहार की भाँति सिर पर धारण कर सकता है [चाहे ये असम्भव बातें सम्भव हो जाएँ], परन्तु बुराइयों में फँसे हुए हठी, मूर्ख मनुष्य के मन को बुराइयों से हटा लेना अथवा उसे मना लेना असम्भव है।

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्,
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः।
कदाचिदपि पर्यटञ्छशविषाणमासादयेत्,
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्॥ 4॥

शब्दार्थ—(यत्नतः) प्रयत्नपूर्वक (पीडयन्) पेरने पर (सिकतासु) बालू में से (अपि) भी सम्भवतः (तैलम्) तेल (लभेत) प्राप्त हो जाए (च) और (पिपासा+अर्दितः) प्यास से पीड़ित मनुष्य (मृग+तृष्णिकासु) मृगमरीचिका में भी सम्भवतः (सलिलम्) पानी (पिबेत्) पी ले, (पर्यटन्) घूमते हुए (कदाचित्) कभी (शश+विषाणम्) खरगोश का सींग (अपि) भी (आसादयेत्) सम्भवतः पा जाए (तु) परन्तु (प्रतिनिविष्ट+मूर्खजन+चित्तम्) हठधर्मी मूर्ख के मन को (न आराधयेत्) नहीं मना सकते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावार्थ—प्रयत्नपूर्वक पेरने पर चाहे बालू रेत से तेल निकल आये। प्यास से व्याकुल मनुष्य की प्यास चाहे मृगमरीचिका के जल से बुझ जाए और इधर-उधर घूमते हुए चाहे खरगोश का सींग भी मिल जाए [चाहे ये सारे असम्भव कार्य सम्भव हो जाएँ] परन्तु हठधर्मी मूर्ख मनुष्य को मनाना या उसे सुधारना असम्भव है।

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते,
छेत्तुं वज्रमणिं शिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यति॥
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते,
[1]मूर्खान्यः पथि नेतुमिच्छति बलात्सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः॥ 5॥

शब्दार्थ—(यः) जो मनुष्य (सुधा+स्यन्दिभिः) अमृतवर्षिणी, मधुर (सूक्तैः) वचनों से (मूर्खान्) मूर्खों को (बलात्) जबरदस्ती (पथि) सन्मार्ग में (नेतुम्, इच्छति) लाने की इच्छा करता है, (असौ) ऐसा व्यक्ति (बाल+मृणाल+तन्तुभिः) कोमल कमलनाल के तन्तुओं से (व्यालम्) मदमस्त हाथी को (रोद्धुम्) बाँधने को (सम्, उज्जृम्भते) साहस करता है। (शिरीष+कुसुम+प्रान्तेन) शिरीष के फूल की पंखुड़ी की नोक से (वज्रमणिम्) हीरे को (भेत्तुम्) काटने की (संनह्यति) चेष्टा करता है और (मधु+बिन्दुना) शहद की एक बूँद से (क्षार, अम्बुधेः) खारे समुद्र में (माधुर्यम्) मिठास (रचयितुम्+ईहते) उत्पन्न करने की इच्छा करता है।

भावार्थ—जो मनुष्य अमृतमय मधुर वचनों से दुष्टों [मूर्खों] को सन्मार्ग पर लाना चाहता है उसका वह कार्य ऐसा ही है। जैसे कोमल कमलनाल के तन्तुओं में मदमस्त हाथी को बाँधने की चेष्टा करना, अथवा शिरीष पुष्प की पंखुड़ी की नोक से हीरे को काटने का प्रयत्न करना[2] और शहद की एक बूँद टपकाकर खारे समुद्र को मीठा बनाना।

---

1. इस चरण का एक पाठभेद इस रूप में भी है—
   नेतुं वाञ्छति यः खलान् पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः।
   अर्थ में विशेष अन्तर नहीं है।
2. किसी उर्दू के कवि ने भी कहा है—
   फूल की पत्ती से कट जाता है हीरे का जिगर।
   मर्दे-नादाँ पर कलामे-नर्मो-नाजुक बे-असर॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वायत्तमेकान्तहितं[1] विधात्रा विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः।
विशेषतः सर्वविदां समाजे विभूषणं मौनमपण्डितानाम्॥ 6॥

शब्दार्थ—(विधात्रा) सृष्टिकर्त्ता परमात्मा के द्वारा (अपण्डितानाम्) अबोधजनों, मूर्खों की (अज्ञतायाः) मूर्खता के (छादनम्) ढकने के लिए (स्वायत्तम्) अपने अधीन (एकान्तहितम्) एकदम हितकर (मौनम्) मौनरूपी साधन (विनिर्मितम्) बनाया है। यह मौन (विशेषतः) विशेषकर (सर्वविदाम्) धर्म, अर्थ और काम के सम्बन्ध में सब-कुछ जाननेवालों की (समाजे) समाज में (अपण्डितानाम्) मूर्खों के लिए (मौनम्) मौन रहना, चुप्पी (विभूषणम्) उत्तम आभूषण है।

भावार्थ—सृष्टि के रचयिता परमात्मा ने मौन रहना, चुप्पी साध लेना मनुष्य के अपने अधीन और एकदम हितकारक एक ऐसा गुण बनाया है जो मूर्खता को ढके [छुपाये] रहता है, उसे प्रकट नहीं होने देता। यह मौन विद्वत्-समाज में अबोधजनों के लिए विशेष रूप से आभूषण बन जाता है।

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप[2] इव मदान्धः समभवं,
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किञ्चित्किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतं,
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः॥ 7॥

शब्दार्थ—(यदा) जब (अहम्) मैं (किञ्चित्+ज्ञः) कुछ जानता था (तदा) तब (द्विपः इव) मदमस्त हाथी की भाँति (मद+अन्धः) अभिमान में चूर (सम्+अभवम्) रहा करता था और (सर्वज्ञः, अस्मि) मैं सब-कुछ जानता हूँ (इति) ऐसा (मम) मेरा (मनः) मन (अवलिप्तम्) घमण्डी (अभवत्) हो गया था, परन्तु (यदा) जब मैं (बुधजन+सकाशात्) बुद्धिमान् जनों के संसर्ग से (किञ्चित्, किञ्चित्) थोड़ा-थोड़ा (अवगतम्) जान पाया (तदा) तब (मूर्खः अस्मि) मैं मूर्ख हूँ (इति) ऐसा जानकर (मे) मेरा (मदः) गर्व (ज्वरः इव) ज्वर के समान (व्यपगतः) जाता रहा।

भावार्थ—जब मैं अल्पज्ञ था तब मदोन्मत्त हाथी की भाँति घमण्ड में अन्धा हो गया था और यह समझता था कि "मैं सब-कुछ जानता हूँ", परन्तु जब बुद्धिमानों के संसर्ग से कुछ-कुछ ज्ञान हुआ तब पता चला कि "मैं तो

1. पाठभेद—गुणं 2. पाठभेद—गजः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूर्ख हूँ।" उस समय मेरा अभिमान ज्वर की भाँति उतर गया।

विशेष—कहते हैं कि एक बार किसी व्यक्ति ने महान् दार्शनिक सुकरात की बड़ी प्रशंसा की। सुकरात ने कहा—"मैं तो परले दर्जे का मूर्ख हूँ, बस अन्तर इतना ही है कि मैं अपनी मूर्खता को जानता हूँ और आप नहीं जानते।"

कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगन्धिजुगुप्सितं,
निरुपमरसप्रीत्या खादन् खरास्थिनिरामिषम्।
सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य न शङ्कते,
न हि गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुताम्॥ 8॥

शब्दार्थ—(कृमि+कुल+चितम्) कीड़ों के समूह से भरी हुई (विगन्धि) बदबूदार (जुगुप्सितम्) घिनौनी (निरामिषम्) मांसरहित (खर+अस्थि) गधे की हड्डी को (लाला+क्लिन्नम्) लार टपकाते हुए (निरुपम+रसप्रीत्या) अत्यन्त प्रेम से, मज़ा लेकर (खादन्) खाता हुआ (श्वा) कुत्ता (पार्श्वस्थम्) पास खड़े हुए (सुरपतिम्, अपि) देवराज इन्द्र को भी (विलोक्य) देखकर (न शङ्कते) लजाता नहीं है, क्योंकि (क्षुद्रः+जन्तुः) नीच प्राणी (परिग्रह+फल्गुताम्) अपनी अपनाई हुई वस्तु की तुच्छता की ओर (न हि गणयति) ध्यान ही नहीं देता।

भावार्थ—कीड़ों से भरी हुई, दुर्गन्धयुक्त, घृणास्पद तथा मांसरहित गधे की हड्डी को स्वाद लेकर प्रेम से खाता हुआ कुत्ता पास खड़े हुए देवराज इन्द्र को देखकर भी लज्जित नहीं होता। ठीक ही है, क्षुद्र प्राणी अपनी अपनाई हुई वस्तु की तुच्छता पर ध्यान नहीं देता।

शिरः शार्वं स्वर्गात्पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं,
महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम्।
अधो गङ्गा सेयं पदमुपगता स्तोकमथवा,
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः॥ 9॥

शब्दार्थ—(सा इयम् गङ्गा) यह गङ्गा नदी (स्वर्गात्) स्वर्ग से (शार्वम्) शिव के (शिरः) सिर पर [पहुँची], (पशुपति+शिरस्तः) महादेव जी के सिर से (क्षिति+धरम्) हिमालय पर्वत पर (उत्तुङ्गात् महीध्रात्) ऊँचे हिमालय पर्वत से (अवनिम्) पृथिवी पर (च) और (अवनेः अपि) धरती से भी (जलधिम्) समुद्र में जा गिरी। इस प्रकार यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गङ्गा समुद्र के (अधः) नीचे (स्तोकम्) छोटे-से (पदम्) पद को (उपगता) प्राप्त हुई। (अथवा) ठीक इसी प्रकार (विवेकभ्रष्टानाम्) बुद्धिहीन मनुष्यों का (शतमुखः) सैकड़ों [अनेक] प्रकार से (विनिपातः) पतन होता है।

भावार्थ—गङ्गा स्वर्ग से महादेव जी के सिर पर गिरी, महादेव के सिर से हिमालय पर्वत पर, हिमालय पर्वत से पृथिवी पर और पृथिवी से समुद्र में जा गिरी। फिर उस समुद्र के नीचे कहीं छोटा सा स्थान पा गई। स्वर्ग की गङ्गा पाताल में पहुँच गई। ठीक इसी प्रकार विवेकहीन मनुष्यों का भी अनेक प्रकार से पतन होता है।

विशेष—गङ्गा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पुराणों में बहुत मतभेद है। गङ्गावतरण के आलंकारिक वर्णन को न समझकर लोगों ने मिथ्या कल्पनाएँ कर लीं। वस्तुतः आकाश से जो बर्फ के गोले हिमालय के ऊपर पड़ते हैं, वही गङ्गा का शिव के सिर पर गिरना है। शिव कोई स्वर्गिक देवता नहीं है, अपितु हिमालय का ही नाम है। इसके लिए दो प्रमाण प्रस्तुत हैं—

1. **हरद्वार नाम**—हरद्वार का अर्थ है—हर का द्वार। यहाँ से ऊपर हिमालय को जाते हैं। यदि हिमालय का नाम हर न होता तो इसका नाम 'हरद्वार' न होकर कुछ और होता।

2. **शिवालक पर्वत**—हिमालय की शाखा देहरादून-अम्बाला की ओर फैली हुई है। इसका नाम है शिवालक। अलक का अर्थ होता है जटाएँ, सिर का बाल। यदि हिमालय का नाम हर या शिव का न होता तो इस पर्वत-शाखा का नाम शिवालक न होता।

गङ्गोत्री—जहाँ से गङ्गा निकली है उसके आसपास के प्रदेश में जटामासी बूटी, जिसका दूसरा नाम जटा भी है, का विशाल वन है। यहाँ से निकलने के कारण यह प्रसिद्ध हो गया कि गंगा जटाओं से निकली है, जो यथार्थ ही है।

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो,
नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ।
व्याधिर्भेषजसङ्ग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रैः प्रयोगैर्विषं,
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम्॥ 10॥

शब्दार्थ—(हुतभुक्) अग्नि को (जलेन) पानी से (वारयितुम्) रोकना, दूर करना, ठण्डा करना, (शक्यः) सम्भव है (सूर्य+आतपः) सूर्य के प्रचण्ड ताप को (छत्रेण) छाते से रोका जा सकता है (समदः नागेन्द्रः)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मदमस्त हाथी को (निशित+अङ्कुशेन) तीखे अंकुश से वश में किया जा सकता है (गो+गर्दभौ) गाय-बैल और गधे को (दण्डेन) दण्डे से सीधा किया जा सकता है (व्याधिः) रोग (भेषजसंग्रहैः) ओषधियों का संग्रह करके निवारण किया जा सकता है (विषम्) सर्प आदि के विष को (विविधैः) भिन्न-भिन्न प्रकार के (मन्त्र-प्रयोगैः) मन्त्रों [उपायों] से उतारा जा सकता है। इस प्रकार (शास्त्रविहितम्) शास्त्रों में वर्णित (सर्वस्य) सभी रोगों की (औषधम्) औषध, दवा, चिकित्सा (अस्ति) है, परन्तु (मूर्खस्य) मूर्खों को सीधा करने अथवा सज्जन बनाने की (औषधम्) कोई दवा (न+अस्ति) नहीं है।

भावार्थ—अग्नि को जल से शान्त किया जा सकता है। सूर्य के तीव्रताप को छाते से रोका जा सकता है। मदमस्त हाथी को तीखे अंकुश से वश में किया जा सकता है। बैल और गधे को दण्डे से सीधा किया जा सकता है। रोगों का निवारण नाना प्रकार की ओषधियों से हो सकता है। विष अनेक प्रकार के मन्त्रों [उपायों] द्वारा उतारा जा सकता है। इस प्रकार शास्त्र में सभी रोगों की ओषधियों का विधान है, परन्तु मूर्खों को सीधा करने अथवा सज्जन बनाने की कोई ओषधि नहीं है।[1]

---

1. इसके पश्चात् अनेक संस्करणों में निम्न दो श्लोक उपलब्ध होते हैं—

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणन्न खादन्नपि जीवमानस्तद् भागधेयं परमं पशूनाम्॥ 1॥

जो मनुष्य साहित्य, सङ्गीत-शास्त्र [गाना, बजाना तथा नाचना] और कलाओं [शिल्प आदि] से अनभिज्ञ है वह विना पूँछ और सींग का पशु ही है। यह मनुष्यरूपी पशु विना घास खाये ही जीवित रहता है, यह प्राकृत पशुओं के लिए बड़े सौभाग्य की बात है, अन्यथा यह पशुओं का चारा और घास ही समाप्त कर देता। विशेष—साहित्य, सङ्गीत आदि मानव को मुग्ध कर देते हैं। यहूदी मेनुहिन को वाद्ययन्त्र बजाते पाकर महान् विज्ञानवेत्ता आइन्स्टाईन ने एक बार कहा था—"आपने मेरे लिए सिद्ध कर दिया कि ईश्वर है।"

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥ 2॥

जिन मनुष्यों में न विद्या है न तप, न दान की भावना है, न ज्ञान है, न शील, न जीवन में उत्तम गुण हैं और न धर्म, वे पृथिवी पर भाररूप पशु ही हैं जो मनुष्य के रूप में विचरा करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्वत्पद्धतिः

[1]शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयागमा,
विख्याताः कवयो वसन्ति विषये यस्य प्रभोर्निर्धनाः।
तज्जाड्यं वसुधाधिपस्य सुधियस्त्वर्थं विनापीश्वराः,
कुत्स्याः स्युः कुपरीक्षका हि मणयो यैरर्घतः पातिताः॥ 11॥

शब्दार्थ—(शास्त्र+उपस्कृत+शब्द+सुन्दर+गिरः) सकल शास्त्रों के अनुशीलन से सुशोभित और अलंकृत वाणी को बोलनेवाले तथा (शिष्य+प्रदेय+आगमाः) शिष्यों को शास्त्रों का उपदेश देनेवाले (विख्याताः कवयः) प्रसिद्ध विद्वान् (यस्य) जिस (प्रभोः) राजा के (विषये) राज्य में (निर्धनाः) निर्धनता से दुःखी होकर (वसन्ति) बसते हैं (तत्) इससे (वसुधाधिपस्य) उस राजा की (जाड्यम्) मूर्खता ही सिद्ध होती है। (सुधियः) बुद्धिमान् लोग तो (अर्थ+विना+अपि) विना धन के भी (ईश्वराः) समर्थ हैं, विद्यारूपी भूषण से समलंकृत हैं। वे (कुपरीक्षकाः) मूर्ख परीक्षक (हि) ही (निन्दिताः स्युः) निन्दित होते हैं (यैः) जिनके द्वारा (मणयः) रत्न (अर्घतः) मूल्य से (पातिताः) गिराये जाते हैं, जो ठीक मूल्य नहीं आँकते।

भावार्थ—सकल शास्त्रों के वेत्ता, अलंकृत और मधुर वाणी को बोलनेवाले तथा शिष्यों को शास्त्रों का उपदेश देनेवाले प्रसिद्ध विद्वान् भी जिस राजा के राज्य में निर्धनता से दुःखी होकर निवास करते हों तो इससे राजा की मूर्खता ही सिद्ध होती है। कविगण तो धन के विना भी विद्यारूपी धन से समलंकृत हैं। यदि जौहरी मणि का ठीक मूल्य नहीं आँकता तो इसमें जौहरी की ही मूर्खता है, मणि की नहीं।

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा,
ह्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम्।
कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनं,
येषां तान्प्रति मानमुज्झत नृपाः कस्तैः सह स्पर्धते॥ 12॥

---

1. इस श्लोक से पूर्व अनेक प्रतियों में निम्न श्लोक उपलब्ध होता है—
वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह।
न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि॥
दुर्गम पर्वतों और जंगलों में जंगली लोगों के साथ अथवा पशु-पक्षियों के साथ घूमना अच्छा है, परन्तु मूर्खों के साथ इन्द्र के भवनों में रहना भी अच्छा नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—जो (हर्तुः) चुरानेवाले को (गोचरं न याति) दिखायी नहीं देता, (यत्) जो (सर्वदा) सदा (किम् अपि) कुछ ऐसी अनिर्वचनीय (शम्) सुख और शान्ति को (पुष्णाति) बढ़ाता रहता है, जो (अनिशम्) रात-दिन (अर्थिभ्यः) जिज्ञासुओं, विद्यार्थियों को (प्रतिपाद्यमानम् हि) दिये जाते रहने पर भी घटने के स्थान पर (परां वृद्धिम्) अत्यन्त अधिक वृद्धि को (प्राप्नोति) प्राप्त होता है, जो (कल्पान्तेषु अपि) प्रलयकाल में भी (निधनम् न प्रयाति) नष्ट नहीं होता—(येषाम्) जिनके पास ऐसा (विद्या-आख्यम्) विद्या नाम का (यत् अन्तःधनम्) जो गुप्त धन है (नृपाः) हे राजाओ! (तान् प्रति) उनके प्रति (मानम्) अभिमान को (उज्झत) छोड़ दो, क्योंकि (तैः सह) उनके साथ (कः स्पर्धते) कौन होड़ कर सकता है, कौन टिक सकता है।

भावार्थ—जो चुरानेवाले को दिखायी नहीं देता, जो सदा अनिर्वचनीय सुख और शान्ति को बढ़ानेवाला है, जो जिज्ञासुओं को नित्य देने पर भी घटने के स्थान में परम वृद्धि को प्राप्त होता है, जो प्रलयकाल में भी नष्ट नहीं होता—ऐसा विद्यारूपी गुप्त धन जिसके पास है, हे राजाओ! ऐसे विद्वानों के प्रति अभिमान छोड़कर व्यवहार करो, क्योंकि उनकी स्पर्धा [तुलना या प्रतियोगिता] करनेवाला कौन है!

[1]अधिगतपरमार्थान्पण्डितान्मावमंस्था-
स्तृणमिव लघु लक्ष्मीर्नैव तान्संरुणद्धि।
अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानाम्,
न भवति बिसतन्तुर्वारणं वारणानाम्॥ 13॥

शब्दार्थ—[हे राजन्!] (अधिगतपरमार्थान्) अध्यात्मतत्त्व को भली-भाँति समझे हुए (पण्डितान्) विद्वानों का (मा+अवमंस्थाः) तू अपमान मत कर, क्योंकि (तृणम् इव) तिनके की भाँति (लघु) तुच्छ (लक्ष्मीः) धन-वैभव (तान्) उन्हें (न एव संरुणद्धि) वैसे ही नहीं बाँध सकती, जैसे (अभिनव+मद+लेखा+श्याम+गण्डस्थलानाम्) एकदम नई मद की धारा से शोभायमान काले गण्डस्थल-[कनपटियों]-वाले (वारणानाम्) हाथियों को (बिस+तन्तुः) कमल की डण्डियों के सूत्र से (वारणम् न भवति) बाँधा नहीं जा सकता।

भावार्थ—[हे राजन्!] अध्यात्मतत्त्व को जाननेवाले विद्वानों का निरादर

1. पाठभेद—परिगत०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मत करो। तिनके के समान तुच्छ तुम्हारी लक्ष्मी उन्हें वैसे ही नहीं बाँध सकती जैसे नूतन मद की धारा से शोभायमान काले गण्डस्थलवाले हाथियों को कमल की डण्डियों के सूत्र से नहीं बाँधा जा सकता।

अम्भोजिनीवनविहारविलासमेव,
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता।
न त्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां,
वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः ॥ 14 ॥

शब्दार्थ—(कुपितः) क्रुद्ध होकर (विधाता) ब्रह्मा (हंसस्य) हंस के (अम्भोजिनी+वन+विहार+विलासम्) कमलिनियों के सरोवर में विचरने के आनन्द को (नितराम्) एकदम (एव) ही (हन्ति) समाप्त कर सकता है (तु) परन्तु (अस्य) उस [हंस] के (दुग्ध+जल+भेद+विधौ) नीर-क्षीर-विवेक [दूध और पानी को अलग करने की विधि] में (प्रसिद्धाम्) प्रसिद्ध (वैदग्ध्य+कीर्तिम्) निपुणतारूपी यश को (अपहर्तुम्) हनन करने, छीनने में (असौ) वह ब्रह्मा (न समर्थः) समर्थ नहीं है।

भावार्थ—क्रुद्ध होकर ब्रह्मा हंस को कमल-वन का आनन्द लूटने से तो एकदम रोक सकता है परन्तु उसके नीर-क्षीर-विवेक [दूध और पानी को पृथक् करने] के प्रसिद्ध चातुर्य को नष्ट करने में वह भी असमर्थ है।

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला,
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते,
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ॥ 15 ॥

शब्दार्थ—(पुरुषम्) मनुष्य को (केयूराणि) बाजूबन्द (न भूषयन्ति) नहीं सजाते (चन्द्र+उज्ज्वलाः) चन्द्रमा के समान प्रकाशमान (हाराः, न) हार भी मनुष्य को सुभूषित नहीं करते (न स्नानम्) न नहाने-धोने से (न विलेपनम्) न चन्दन अथवा सुगन्धि पोतने से (न कुसुमम्) न पुष्पमाला धारण करने से और (न, अलङ्कृताः मूर्धजाः) न बालों को सँवारने से ही मनुष्य की सुन्दरता बढ़ती है, अपितु (या) जो (संस्कृता) व्याकरण आदि से शुद्ध, सुमधुर वाणी (धार्यते) धारण की जाती है, वही (एका, वाणी) एकमात्र वाणी (पुरुषम्) मनुष्य को (सम्+अलङ्करोति) पूर्णरूप से सुभूषित कर देती है, (खलु) शेष सब (भूषणानि) आभूषण तो (क्षीयन्ते) घिस जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं (वाक् भूषणम्) वाणीरूपी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आभूषणं ही (सततम्) निरन्तर रहनेवाला (भूषणम्) आभूषण है।

भावार्थ—सुन्दर केयूर [बाजूबन्द] चन्द्रमा के समान चमकीले मोतियों के हार, स्नान करना, चन्दनादि का लेपन, पुष्प-शृङ्गार और सँवारे हुए बाल—ये सब मनुष्य को विभूषित नहीं कर सकते। व्याकरण आदि से शुद्ध एवं सुमधुर वाणी ही मनुष्य का सच्चा आभूषण है। अन्य आभूषण तो काल-क्रम से नष्ट हो जाते हैं, परन्तु वाणीरूपी आभूषण सदैव जगमगाता रहता है।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं,
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता,
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः॥ 16॥

शब्दार्थ—(विद्या, नाम) विद्या नामवाली वस्तु (नरस्य) मनुष्य का (अधिकम्) सब से बड़ा (रूपम्) सौन्दर्य है, विद्या ही मनुष्य का (प्रच्छन्न+गुप्तम्) अत्यन्त गुप्त (धनम्) धन है। (विद्या) विद्या (भोगकरी) शरीर और इन्द्रियों को सुखभोग देनेवाली है (यशः, सुखकरी) विद्या ही यश और सुख देनेवाली है (विद्या) विद्या (गुरूणाम् गुरुः) विद्या का बोध करानेवाले गुरुओं से भी बढ़कर है (विदेशगमने) विदेश में जाने पर (विद्या, बन्धुजनः) विद्या परिवार-जनों के समान सहायक होती है, (विद्या परा देवता) विद्या इष्टदेव के समान सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाली है, (राजसु) राजाओं के मध्य, राजसभाओं में (विद्या पूज्यते) विद्या की ही पूजा होती है (न हि धनम्) धन की नहीं, अतः (विद्याविहीनः) विद्या से रहित मनुष्य (पशुः) पशु के समान है।

भावार्थ—विद्या ही मनुष्य की शोभा है, विद्या ही मनुष्य का अत्यन्त गुप्त धन है। विद्या भोग्य-पदार्थ, यश और सुख देनेवाली है। विद्या गुरुओं का भी गुरु है अर्थात् उनसे भी अधिक पूज्य है। विदेश-यात्रा में विद्या कुटुम्बी-जनों के समान सहायक होती है। विद्या ही सब से बड़ा देवता है। राजाओं [राजसभाओं] में विद्या का आदर-सम्मान होता है, धन का नहीं, अतः विद्या-विहीन मनुष्य पशु के तुल्य है।

क्षान्तिश्चेत्कवचेन किं किमरिभिः क्रोधोऽस्ति चेद्देहिनां,
ज्ञातिश्चेदनलेन किं यदि सुहृद्दिव्यौषधैः किं फलम्।
किं सर्पैर्यदि दुर्जनाः किमु धनैर्विद्याऽनवद्या यदि,
व्रीडा चेत्किमु भूषणैः सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम्॥ 17॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—(देहिनाम्) शरीरधारी स्त्री या पुरुष के पास (चेत्) यदि (क्षान्तिः) सहनशक्ति हो तो (कवचेन किम्) कवच की क्या आवश्यकता ? यदि (क्रोधः अस्ति) मनुष्य के मन में क्रोध है, मनुष्य क्रोधी स्वभाव का है (चेत्) तो (अरिभिः) शत्रुओं से (किम्) क्या प्रयोजन ? जिसका (ज्ञातिः) भागीदार (अस्ति) है (चेत्) तो उसे (अनलेन, किम्) अग्नि से क्या काम ? (यदि) यदि मनुष्य के पास (सुहृत्) सच्चा मित्र (अस्ति) है (चेत्) तो उसे (दिव्य+औषधैः) दिव्य ओषधियों से (किम् फलम्) क्या प्रयोजन ? (यदि) यदि (दुर्जनाः सन्ति) दुर्जनों के साथ सम्पर्क है तो (सर्पैः किम्) साँप पालने की क्या आवश्यकता है ? (यदि) यदि (अनवद्या) निर्दोष, निष्कलंक (विद्या+अस्ति) विद्या है तो (धनैः किम्) धन से क्या काम ? (चेत्) यदि (व्रीडा) लज्जा है तो (आभूषणैः किम्) आभूषणों से क्या काम ? (चेत्) यदि (सुकविता, अस्ति) उत्तम कविता बनाने की योग्यता है काव्यात्मक क्षमता है तो (राज्येन, किम्) उसे राज्य से क्या काम ?

भावार्थ—मनुष्य के पास यदि क्षमता [सहनशीलता] हो तो उसे कवच की क्या आवश्यकता है ? जो क्रोधी है उसे शत्रुओं से क्या प्रयोजन ? जिसके भागीदार हैं उसे अग्नि से क्या प्रयोजन ? आपसी झगड़ों में ही सारी सम्पत्ति स्वाहा हो जाएगी। यदि हितैषी, सच्चे मित्र हैं तो अमोघ एवं दिव्य ओषधियों से क्या लाभ ? यदि दुर्जनों के साथ सम्पर्क है तो साँपों का क्या काम ? जिसके पास निर्दोष विद्या है, उसे धन से क्या सरोकार ? जो लज्जाशील है उसे अन्य आभूषणों की क्या आवश्यकता है ? जो सुन्दर कविता कर सकता है, उसके लिए राज्य क्या वस्तु है ?

दाक्षिण्यं स्वजने दया परिजने[1] शाठ्यं सदा दुर्जने,
प्रीतिः साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जनेष्वार्जवम्।
शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजनेऽधृष्टता[2],
ये चैवं पुरुषाः कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ॥ 18 ॥

---

1. किन्हीं पुस्तकों में 'परजने' पाठ है। ऐसा पाठ होने पर अर्थ होगा—दूसरों पर।
2. किन्हीं पुस्तकों में 'धूर्तता' पाठ भी उपलब्ध होता है। हमारे विचार में 'अधृष्टता' पाठ ही समीचीन है। अधृष्टता का अर्थ है—आदर का भाव 'माता निर्मात्री भवति' निर्माणकर्त्री नारी के साथ धूर्तता का व्यवहार करने से देश उन्नत नहीं होगा, अपितु रसातल को जाएगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—(स्वजने) अपनों के साथ (सदा) सदा (दाक्षिण्यम्) शिष्टता का व्यवहार करना (परिजने) नौकर-चाकरों के साथ (दया) सहानुभूति (दुर्जने) दुष्टों के साथ (शाठ्यम्) कठोरता (साधुजने) सज्जन पुरुषों के साथ (प्रीतिः) प्रेम (नृपजने) अधिकारियों के साथ (नयः) नीतियुक्त व्यवहार (विद्वज्जनेषु) विद्वानों के साथ (आर्जवम्) सरलता, निश्छलता (शत्रुजने) शत्रुओं के साथ (शौर्यम्) वीरता (गुरुजने) बड़ों के साथ (क्षमा) नम्रता (च) और (नारीजने) नारियों के प्रति (अधृष्टता) आदर (ये) जो (पुरुषाः) पुरुष (एवम्) ऐसी (कलासु) कलाओं में (कुशलाः) निपुण हैं (तेषु एव) उन पर ही (लोक+स्थितिः) लोक की स्थिति है, संसार टिका हुआ है।

भावार्थ—अपने बन्धु-बान्धवों के साथ सरलता एवम् उदारता से व्यवहार करना, सेवकों पर दया करना, दुष्टों के साथ कठोरता, श्रेष्ठ पुरुषों के साथ प्रेम, अधिकारियों के साथ नीतियुक्त व्यवहार, विद्वानों के साथ निश्छलता, शत्रुओं के साथ शूरवीरता, गुरुजनों के प्रति विनम्रता और नारियों के प्रति आदर—जो पुरुष इन सभी कलाओं में निपुण हैं, ऐसे व्यक्तियों के आधार पर ही संसार टिका हुआ है।

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं,
सत्सङ्गतिः कथय किन्न करोति पुंसाम्॥ 19॥

शब्दार्थ—(सत्सङ्गतिः) सन्तजनों का संग (धियः) बुद्धि की (जाड्यम्) जड़ता को (हरति) दूर करता है (वाचि) वाणी में (सत्यम्) सत्य को (सिञ्चति) सींचता है (मान+उन्नतिम्) मान-मर्यादा की वृद्धि को (दिशति) देता है (पापम्) पाप को (अपाकरोति) दूर करता है (चेतः) मन को (प्रसादयति) प्रसन्न रखता है (कीर्तिम्) यश को (दिशि) दिशाओं में (तनोति) फैलाता है। (कथय) बताओ तो, सत्सङ्ग (पुंसाम्) मनुष्यों का (किम्) कौन-सा उपकार (न करोति) नहीं करता! अर्थात् सब कुछ करता है।

भावार्थ—सत्सङ्गति बुद्धि की जड़ता को दूर करती है, वाणी में सत्य को सींचती है, सम्मान को बढ़ाती है, पाप को दूर करती है, चित्त को आह्लादित करती है और चहुँ दिशाओं में यश फैलाती है। बताओ, वह कौन-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सी भलाई है जो सज्जनों की सङ्गति से प्राप्त नहीं होती! सत्सङ्ग तो सभी कामनाओं का साधक है।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥ 20॥

शब्दार्थ—(रससिद्धाः) वीर आदि नव रसों पर अधिकार रखनेवाले और पारे आदि धातुओं को फूँककर उन्हें सिद्ध करनेवाले (सुकृतिनः) उत्तम ग्रन्थ रचनेवाले, श्रेष्ठ कर्म करनेवाले पुण्यवान् (ते) वे (कवीश्वराः) महाकवि और वैद्यराज [कविराज] (जयन्ति) सदा विराजमान रहते हैं, यशस्वी होते हैं, कभी मरते नहीं, क्योंकि (येषाम्) इनके (यशःकाये) यशरूपी शरीर को (जरा) बुढ़ापे, वृद्धावस्था और (मरणजम्) मृत्यु का (भयम्) भय (न+अस्ति) नहीं है।

भावार्थ—जो रसों को सिद्ध करनेवाले, उत्तम ग्रन्थ रचनेवाले पुण्यवान् कवीश्वर तथा विभिन्न औषध-रसों को सिद्ध करनेवाले कविराज हैं, वे इस संसार में सदा विराजमान रहेंगे, क्योंकि उनके यशरूपी शरीर को न वृद्धावस्था के आक्रमण का भय होता है और न मृत्यु का ही डर होता है।

मानशौर्यपद्धतिः

क्षुत्क्षामोऽपि जराकृशोऽपि शिथिलप्रायोऽपि कष्टां,
दशामापन्नोऽपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेषु नयत्स्वपि।
मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भपिशितग्रासैकबद्धस्पृहः,
किं जीर्णं तृणमत्ति मानमहतामग्रेसरः केसरी॥ 21॥

शब्दार्थ—(मत्त+इभेन्द्र+विभिन्न+कुम्भ+पिशित+ग्रास+एकबद्ध+स्पृहः) मदमस्त गजराज के फाड़े हुए मस्तक के मांस के एक ही कौर को खाने की इच्छा रखनेवाला (मान+महताम्, अग्रेसरः) अभिमानियों में अग्रगण्य (केसरी) सिंह (क्षुत्-क्षामः अपि) भूख के कारण दुबला होने पर भी (जरा) बुढ़ापे के कारण (कृशः अपि) दुबला होने पर भी व (शिथिल+प्रायः अपि) पराक्रम से हीन होने पर भी (कष्टाम्, दशाम्) शोचनीय अवस्था को (आपन्नः अपि) प्राप्त होने पर भी (विपन्न+दीधितिः अपि) तथा शारीरिक कान्ति और स्फूर्ति के नष्ट होने पर भी (प्राणेषु) प्राणों के (नश्यत्सु, अपि) मरणासन्न, प्राण निकलने को हों तब भी (किम्) क्या (जीर्णम्) गले-सड़े, सूखे (तृणम्) घास के तिनकों को (अत्ति) खा सकता है?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावार्थ—मदमस्त गजराज के फाड़े हुए मस्तक के मांस को ही खाने की इच्छा रखनेवाला, अभिमानियों में अग्रगण्य, भूख के कारण क्षीण, बुढ़ापे के कारण दुर्बल एवं दीन, पराक्रम से हीन, शोचनीय दशा को प्राप्त, नष्टतेज और मरणासन्न सिंह भी क्या कभी गली-सड़ी और सूखी घास को खा सकता है? कभी नहीं।

स्वल्पस्नायुवसावसेकमलिनं निर्मांसमप्यस्थिकं[1],
श्वा लब्ध्वा परितोषमेति न च तत्तस्य क्षुधाशान्तये।
सिंहो जम्बुकमङ्कमागतमपि त्यक्त्वा निहन्ति द्विपं,
सर्वः कृच्छ्रगतोऽपि वाञ्छति जनः सत्त्वानुरूपं फलम्॥ 22॥

शब्दार्थ—(श्वा) कुत्ता (स्वल्प+स्नायु+वसा+अवसेक+मलिनम्) नाममात्र को स्नायु और चर्बी से सनी हुई अत्यन्त गन्दी और (निर्मांसम्) मांसरहित (अस्थिकम्+अपि) हड्डी के एक छोटे-से टुकड़े को भी (लब्ध्वा) पाकर (परितोषम् एति) सन्तुष्ट हो जाता है (च) यद्यपि (तत्) वह हड्डी (तस्य) उस [कुत्ते] की (क्षुधा) भूख को (शान्तये न) मिटाने में समर्थ नहीं है, परन्तु (सिंहः) सिंह (अङ्कम्) गोद में (आगतम्, अपि) आये हुए भी (जम्बुकम्) गीदड़ को (त्यक्त्वा) छोड़कर (द्विपम्) हाथी को (निहन्ति) मारता है। ठीक है, (कृच्छ्र+गतः, अपि) कष्ट और संकट में पड़ जाने पर भी (सर्वः जनः) सब लोग, सब प्राणी (सत्त्व+अनुरूपम्) अपनी-अपनी शक्ति व सामर्थ्य के अनुसार (फलम् वाञ्छति) फल की इच्छा करते हैं।

भावार्थ—कुत्ता नाममात्र को स्नायु और चर्बी से युक्त, गन्दी और मांसरहित हड्डी के एक छोटे-से टुकड़े को पाकर भी सन्तुष्ट हो जाता है, यद्यपि उस टुकड़े से उसकी भूख नहीं मिटती, परन्तु सिंह अपनी गोद में आये हुए गीदड़ को छोड़कर हाथी पर आक्रमण कर उसका वध करता है। ठीक है, कष्ट में रहने पर भी सब प्राणी अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार ही फल चाहते हैं।

---

1. किन्हीं पुस्तकों में 'निर्मांसमप्यस्थि गौः'—ऐसा पाठ भी उपलब्ध होता है। हमारे विचार में ऊपर सन्निविष्ट पाठ ही समीचीन है। 'निर्मांसमप्यस्थि गौः' का अर्थ होता है मांसरहित बैल की हड्डी। 'निर्मांसमप्यस्थिकम्' में 'क' प्रत्यय है। 'क' प्रत्यय कुत्सित और अल्प अर्थ में प्रयुक्त होता है, अतः अर्थ होगा—गन्दी और छोटी-सी। इस अर्थ में जो स्वारस्य और गाम्भीर्य है, वह 'बैल की हड्डी'—इस अर्थ में कहाँ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लाङ्गूलचालनम् अधश्चरणावपातं,
भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनं च।
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुङ्गवस्तु,
धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च भुङ्क्ते ॥ 23 ॥

शब्दार्थ—(श्वा) कुत्ता (पिण्डदस्य) रोटी का टुकड़ा डालनेवाले के सामने (लाङ्गूल+चालनम्, कुरुते) पूँछ हिलाता है, (अधः) नीचे (चरण+अवपातम्, कुरुते) उसके पैरों पर गिरता, लोटता है (च) और (भूमौ) पृथिवी पर (निपत्य) गिरकर, लोटकर (वदन+उदर+दर्शनम्) मुख और पेट दिखाता है (तु) परन्तु (गजपुङ्गवः) गजराज [अपने अन्नदाता महावत] की ओर (धीरम् विलोकयति) गम्भीरता से देखता है (च) और (चाटुशतैः) सैकड़ों खुशामदों [पुचकारने आदि] के पश्चात् (भुङ्क्ते) खाता है।

भावार्थ—कुत्ता रोटी का टुकड़ा देनेवाले के सामने पूँछ हिलाता है, उसके पैरों पर गिरता है, फिर पृथिवी पर लेटकर मुख और पेट दिखाता है, परन्तु गजराज अपने अन्नदाता की ओर गम्भीरता से देखता और सैकड़ों खुशामदों के पश्चात् खाता है।

स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ॥ 24 ॥

शब्दार्थ—(परिवर्तिनि) परिवर्तनशील (संसारे) इस संसार में (जायते) उत्पन्न होने के पश्चात् (कः वा) कौन है जो (न मृतः) मरता नहीं, अर्थात् जन्म लेकर सभी मरते हैं। वस्तुतः (येन) जिसके (जातेन) उत्पन्न होने से, (वंशः) कुल (सम् उन्नतिम्) उन्नति, उच्च स्थिति को (याति) प्राप्त होता है (सः जातः) वही जन्मा है, उसी का जन्म सफल है।

भावार्थ—इस परिवर्तनशील संसार में प्रतिदिन अनेकों व्यक्ति जन्म लेते और मरते हैं। वस्तुतः जन्म लेना उसी मनुष्य का सफल और सार्थक है, जिसके जन्म लेने से सारा वंश [कुल] उन्नति को प्राप्त होता है।

कुसुमस्तबकस्येव द्वे वृत्ती तु मनस्विनः।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य विशीर्यते वनेऽथवा ॥ 25 ॥

शब्दार्थ—(कुसुम+स्तबकस्य, इव) पुष्पों के गुच्छों की भाँति (मनस्विनः) बुद्धिमान्, आत्मवान् मनुष्य की (द्वे) दो (तु) ही (वृत्ती)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृत्तियाँ होती हैं। वह (वा) या तो (सर्वलोकस्य) सब लोगों के (मूर्ध्नि) सिर पर रहता है (वा) अथवा (वने, एव) वन में ही (शीर्यति) मुरझा जाता है।

भावार्थ—पुष्पों के गुच्छे या तो मनुष्य के सिर पर चढ़ते हैं अथवा वन में ही मुरझा जाते हैं, इसी प्रकार दृढ़ विचारवाले महात्माओं की भी दो ही स्थितियाँ होती हैं। मनस्वीजन या तो सब के हृदयों को जीतकर उन पर शासन करता है अथवा एकाकी रहता हुआ शरीर-त्याग की अभिलाषा करता है।

सन्त्यन्येऽपि बृहस्पतिप्रभृतयः सम्भाविताः पञ्चषा-
स्तान्प्रत्येष विशेषविक्रमरुची राहुर्न वैरायते।
द्वावेव ग्रसते दिनेश्वरनिशाप्राणेश्वरौ भास्वरौ,
भ्रातः पर्वणि पश्य दानवपतिः शीर्षावशेषाकृतिः ॥ 26 ॥

शब्दार्थ—(भ्रातः) हे भाई! (पश्य) देखो, आकाश में (बृहस्पति+प्रभृतयः) बृहस्पति [गुरु] आदि (अन्ये, अपि) दूसरे भी (पञ्चषाः) पाँच-छह (सम्भाविताः) बड़े-बड़े प्रतिष्ठित ग्रह (सन्ति) हैं परन्तु (विशेष+विक्रम+रुचिः) विशेष पराक्रमियों से लोहा लेने की इच्छा रखनेवाला (दानवपतिः) राक्षसराज (एषः) यह (राहुः) राहु जिसका (शीर्ष+ अवशेष+आकृतिः) शिरामात्र शेष रह गया है (तान् प्रति) उनसे (न वैरायते) वैर नहीं करता, अपितु (भास्वरौ) तेजयुक्त (दिनेश्वर+निशा-प्राणेश्वरौ) दिनपति सूर्य और रात्रिपति चन्द्रमा (द्वौ एव) इन दोनों पर ही (पर्वणि) अमावस्या के दिन सूर्य और पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा को (ग्रसते) ग्रसता है, निगलता है।

भावार्थ—हे भाई! देखो, आकाश में बृहस्पति आदि अन्य भी पाँच-छह प्रतिष्ठित ग्रह हैं, परन्तु विशेष पराक्रमियों से लोहा लेने की इच्छा रखनेवाला दानवराज राहु, जिसका आकार सिर-भर रह गया है, इन से वैर नहीं करता, अपितु प्रकाशयुक्त सूर्य और चन्द्रमा इन दोनों पर ही पर्व के समय [अमावास्या और पूर्णिमा के दिन] आक्रमण करता है।

विशेष—सूर्य और चन्द्रग्रहण राहु और केतु के ग्रसने से नहीं होता; यह पौराणिक धारणा है, जो वेद और विज्ञान के प्रतिकूल है, अतः यह श्लोक अयुक्त है। वस्तुतः राहु और केतु दो आकाशमार्ग हैं जिन पर आने से क्रमशः सूर्य और चन्द्र का ग्रहण [अदृश्य स्थिति] हो जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वहति भुवनश्रेणीं शेषः फणाफलकस्थितां,
कमठपतिना मध्ये पृष्ठं सदा स च धार्यते।
तमपि कुरुते क्रोडाधीनं पयोधिरनादरा-
दहह महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः ॥ 27 ॥

शब्दार्थ—(शेषः) शेषनाग (फणा+फलक+स्थिताम्) अपने फणों की पाटियों पर धरे हुए (भुवन+श्रेणीम्) भूमण्डल की टोलियों को (वहति) ढो रहा है (सः च) वह शेष भी (कमठ+पतिना) कच्छपराज द्वारा (सदा) सदा (पृष्ठम्, मध्ये) अपनी पीठ के ऊपर (धार्यते) धारण किया जाता है (तम्+अपि) और उस कच्छपराज को भी (पयोधिः) समुद्र (अनादरात्) बेपरवाही से, अनायास (क्रोड+अधीनम्) अपनी गोद में (कुरुते) रखे रहता है (अहह) आश्चर्य है कि (महताम्) बड़ों के (चरित्र+विभूतयः) कार्यों की महानता (निःसीमानः) अपार है।

भावार्थ—शेषनाग ने अपने फणों पर पृथिवी आदि सारे भुवनों को धारण किया हुआ है, उस शेष को भी कच्छपराज सदा अपनी पीठ पर लिये रहता है। उस कच्छप को समुद्र अनायास अपनी गोद में रखे रहता है। अहो! महापुरुषों [कारनामों] की महिमा की कोई सीमा नहीं होती।

विशेष—यह भी पौराणिक गप्प ही है। लोकों को शेष नामक किसी नाग ने धारण नहीं किया है। ये लोक तो परमात्मा-प्रदत्त आकर्षणशक्ति के द्वारा एक-दूसरे को धारण कर रहे हैं। विज्ञान और प्रत्यक्ष के विरुद्ध होने से यह श्लोक भी अयुक्त ही है। वस्तुतः अनन्तलोकों का धारणकर्ता प्रभु ही शेष है, जो प्रलयान्तर भी शेष रहता है।

वरं प्राणोच्छेदः समदमघवन्मुक्तकुलिश-
प्रहारैरुद्गच्छद् बहुलदहनोद्गारगुरुभिः।
तुषाराद्रेः सूनोरहह पितरि क्लेशविवशे,
न चासौ सम्पातः पयसि पयसां पत्युरुचितः ॥ 28 ॥

शब्दार्थ—(अहह) अहो! (तुषार+अद्रेः) पर्वतराज हिमालय के (सूनोः) पुत्र मैनाक का (समद+मघवत्+मुक्तकुलिश+उद्गच्छत्) मद से गर्वित इन्द्र के द्वारा चलाये हुए वज्र से ऊपर उठती हुई (बहुल+दहन+उद्गार+गुरुभिः) तथा अत्यन्त प्रचण्ड ज्वाला उगलनेवाली दुस्सह (प्रहारैः) मार से (प्राण+उच्छेदः) प्राण छोड़ना (वरम्) उचित था किन्तु (पितरि)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पिता के (क्लेशविवशे) दुःख से अभिभूत होने पर (असौ) उस मैनाक का (पयसां पत्युः) जलनिधि समुद्र के (पयसि) जल में (सम्पातः) कूदना (न उचितः) उचित नहीं था।

भावार्थ—अहो! पर्वतराज हिमालय के पुत्र मैनाक का मद से गर्वित इन्द्र के चलाये हुए ज्वालामय वज्रप्रहारों से अपने प्राण त्यागना—अपनी पंखों को कटवा लेना उत्तम था, परन्तु अपने पिता के दुःखाभिभूत होने पर मैनाक का समुद्र के जल में कूदकर अपने प्राण बचाना उचित नहीं था।

विशेष—यह भी पौराणिक गप्प ही है। क्या पर्वतों के भी पक्षियों की भाँति पंख होते थे? ये पंख अब कहाँ चले गये? परमात्मा के कार्य अभ्रान्त [त्रुटिरहित] होते हैं। क्या मनुष्यों की भाँति पर्वतों के भी सन्तानें होती हैं?

पूर्वोक्त तीनों श्लोक [26 से 28[1]] तर्क-तुला पर खरे नहीं उतरते। ये इतिहास और विज्ञान के सर्वथा विरुद्ध हैं। अतः अयुक्त हैं।

यदचेतनोऽपि पादैः स्पृष्टः प्रज्वलति सवितुरिनकान्तः।
तत्तेजस्वी पुरुषः परकृतनिकृतिं कथं सहते॥ 29॥

शब्दार्थ—(यत्) जब (अचेतनः अपि) जड़ होने पर भी (इनकान्तः) सूर्यकान्तमणि (सवितुः, पादैः) सूर्य की किरणरूपी पैरों से (स्पृष्टः) छू जाने पर (प्रज्वलति) प्रज्वलित हो उठती है और अग्नि उगलने लगती है (तत्) तब (तेजस्वी, पुरुषः) चेतन, स्वाभिमानी व्यक्ति (परकृत+निकृतिम्) दूसरों द्वारा किये गये अपमान को (कथम्) कैसे (सहते) सह सकेगा अर्थात् कदापि नहीं सह सकेगा।

---

1. अनेक प्रतियों में इस श्लोक के पश्चात् निम्न श्लोक उपलब्ध होता है—

असन्तो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः,
प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यसुकरम्।
विपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महतां,
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधारा व्रतमिदम्॥

क्षुद्र अथवा दुर्जनों से याचना न करना, थोड़े धनवाले अथवा निर्धन मित्र से भी न माँगना, प्रिय एवं न्याययुक्त अजीविका का ही आश्रय लेना, प्राणों के संकट में पड़ने पर भी पापमार्ग में प्रवृत्त न होना, विपत्ति आने पर भी अपने श्रेष्ठ आचरण में ही स्थित रहना और सदा महापुरुषों के मार्ग का अनुसरण करना—इस तलवार की धार से भी तीक्ष्ण व्रत का उपदेश सज्जनों को किसने किया है? किसी ने नहीं [यह तो उनका स्वभाव ही है।]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावार्थ—जब जड़ सूर्यकान्तमणि सूर्य के किरणरूप पैर की ठोकर खाकर प्रज्वलित हो उठती है और अग्नि उगलने लगती है, तब चेतन, तेजस्वी पुरुष दूसरों के द्वारा किये हुए अपमान को कैसे सहन कर सकता है?

सिंहः शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु।
प्रकृतिरियं सत्त्ववतां न खलु वयस्तेजसां हेतुः॥ 30॥

शब्दार्थ—(सिंहः) सिंह (शिशुः, अपि) बच्चा होने पर भी (गजेषु) हाथियों के (मदमलिन+कपोल+भित्तिषु) मद से काले हुए गालोंवाले गण्डस्थलों पर (निपतति) आक्रमण करता है। ठीक ही है, शत्रुओं पर आक्रमण करना (सत्त्ववताम्) शक्तिशालियों का (इयम्) यह (प्रकृतिः) स्वभाव ही है (वयः) अवस्था (तेजसाम्) तेज का (हेतुः) कारण (न खलु) नहीं होता।

भावार्थ—सिंह बच्चा होने पर भी मद से काले गण्डस्थलवाले गजराजों पर ही आक्रमण करता है। ठीक ही है, शत्रुओं पर आक्रमण करना शक्तिशालियों का स्वभाव ही होता है, अवस्था तेजस्विता का कारण नहीं होती।

विशेष—'खलु' शब्द सौन्दर्य और पादपूर्ति के लिए है।

अर्थपद्धतिः

जातिर्यातु रसातलं गुणगणस्तस्याप्यधो गच्छतां,
शीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्यर्थोऽस्तु नः केवलं,
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता अमी[1]॥ 31॥

---

1. अनेक पुस्तकों में इस श्लोक के पश्चात् निम्न श्लोक उपलब्ध होता है—

तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव कर्म,
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव,
त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत्॥

मनुष्य के पास ठीक पहले जैसी ही इन्द्रियाँ रहती हैं, वही व्यवहार रहता है; वैसा ही अकुण्ठित [कुशाग्र] बुद्धि रहती है और वैसे ही ललित वचन रहते हैं, परन्तु आश्चर्य की बात है कि धन की गर्मी शान्त होने पर वह क्षण-भर में कुछ का कुछ हो जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—(जातिः) जाति, कुल चाहे (रसातलम्) पाताल में (यातु) चले जाएँ (गुण+गणः) सद्गुणों का समूह, सारे सद्गुण (तस्य, अपि) उससे भी (अधः) नीचे (गच्छताम्) चले जाएँ, (शीलम्) सदाचार (शैलतटात्) पर्वत के शिखर से (पततु) गिरकर नष्ट हो जाए, (अभिजनः) परिवार-जन चाहे (वैरिणि, शौर्ये) शत्रु बनी हुई वीरता पर चाहे (आशु) शीघ्र (वज्रम्) वज्र, बिजली (निपततु) गिर जाए, अर्थात् चाहे जो कुछ हो, (नः) हमें तो (केवलम्) केवल (अर्थः) धन (अस्तु) मिल जाए (येन) जिस (एकेन, विना) एक के विना, अकेले के न होने पर (इमे) ये (समस्ताः) सभी (गुणाः) सद्गुण (तृण+लव+प्रायाः) तिनके के टुकड़े के समान होते हैं।

भावार्थ—जाति चाहे रसातल को चली जाए, सद्गुणों का समूह कोई उससे भी नीचा स्थान हो तो वहाँ चला जाए, सदाचार पर्वत के शिखर से गिरकर नष्टभ्रष्ट हो जाए, परिवार चाहे अग्नि से दग्ध हो जाए, शूरवीरता पर चाहे बिजली गिर पड़े, इस प्रकार चाहे कुछ भी हो जाए, हमें तो केवल धन मिल जाए, क्योंकि एक धन के विना संसार के समस्त सद्गुण तिनके के समान तुच्छ हो जाते हैं।

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः,
स पण्डितः सः श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः,
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते॥ 32॥

शब्दार्थ—(यस्य) जिसके पास (वित्तम्) धन (अस्ति) है (सः, नरः) वही मनुष्य (कुलीनः) उच्चकुल का [खानदानी] है, (सः, पण्डितः) वही पण्डित है, विद्वान् है (सः, श्रुतवान्) वही शास्त्रों का जानकार है (सः, गुणज्ञः) वही गुणों का पारखी है (सः, एव वक्ता) वही उत्तम भाषण करनेवाला (च) और (सः दर्शनीय) वही दर्शन करने योग्य है, सुन्दर है (सर्वे गुणाः) सभी सद्गुण (काञ्चनम्) धन में (आश्रयन्ति) शरण लेते हैं, निवास करते हैं।

भावार्थ—जिस मनुष्य के पास धन है, वही कुलीन है, वही विद्वान् है, वही शास्त्रज्ञ है, वही गुणों का जानकार है, वही वक्ता-उत्तम भाषणकर्ता और वही दर्शनीय है। तात्पर्य यह है कि सारे गुण सुवर्ण [धन] में ही निवास करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतिः सङ्गात्सुतो लालना-
द्विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात्।
ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रयान्,
मैत्री चाप्रणयात्समृद्धिरनयात्त्यागात्प्रमादाद्धनम्॥ 33॥

शब्दार्थ—(नृपतिः) राजा (दौर्मन्त्र्यात्) खोटी मन्त्रणा, कुसम्मति से (विनश्यति) नष्ट हो जाता है (यतिः) संन्यासी, योगी (सङ्गात्) आसक्ति से नष्ट हो जाता है, (सुतः) पुत्र (लालनात्) अधिक लाड़-प्यार से बिगड़ जाता है, (विप्रः) ब्राह्मण, वेदपाठी (अनध्ययनात्) पठन-पाठन छोड़ने से नष्ट हो जाता है, (कुलम्) कुल (कुतनयात्) कुपूत से नष्ट हो जाता है। (शीलम्) सदाचार (खल+उपासनात्) दुष्टों के संग से नष्ट हो जाता है। (ह्रीः) लज्जा (मद्यात्) शराब पीने से नष्ट हो जाती है (कृषिः, अपि) खेती भी (अनवेक्षणात्) देखरेख न करने से नष्ट हो जाती है (स्नेह) प्रेम (प्रवास+आश्रयात्) विदेश में रहने या बस जाने से नष्ट हो जाता है (मैत्री) मित्रता (अप्रणयात्) स्नेह न होने से नष्ट हो जाती है (समृद्धिः) खुशहाली, ऐश्वर्य (अनयात्) अनीति से नष्ट हो जाता है (च) और (धनम्) धन (त्यागात्) अन्धाधुन्ध दान देने और (प्रमादात्) प्रमाद=लापरवाही से नष्ट हो जाता है।

भावार्थ—खोटी सम्मति मानने से राजा, अधिक मेल-जोल से योगी, लाड़-प्यार करने से पुत्र, अध्ययन न करने से ब्राह्मण, कुपुत्र से कुल, दुष्टों के सङ्ग से शील, मद्यपान से लज्जा, देख-भाल न करने से खेती, विदेश में बस जाने से प्रेम, स्नेह न होने से मित्रता, अनीति से समृद्धि और अन्धाधुन्ध देने और लापरवाही से व्यय करने से धन नष्ट हो जाता है।

दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥ 34॥

शब्दार्थ—(दानम्) शुभ कार्यों में दान देना (भोगः) मनमाने भोग-विलास में व्यय करना और (नाशः) नष्ट हो जाना—(वित्तस्य) धन के ये (तिस्त्रः) तीन ही (गतयः) मार्ग, रास्ते हैं। (यः) जो (न ददाति) न तो दूसरों को दान देता है (न भुङ्क्ते) न स्वयम् उसका उपभोग करता है (तस्य) उसके धन की (तृतीया गतिः) तीसरी गति (भवति) होती है, अर्थात् उसके धन का नाश हो जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावार्थ—धर्मकार्यों में दान देना, स्वयम् उपभोग करना और नष्ट हो जाना—धन की ये तीन गतियाँ हैं। जो न दान देता है और न उपभोग करता है, उसके धन की तीसरी गति होती है, अर्थात् उसका धन नष्ट हो जाता है।

मणिः शाणोल्लीढः समरविजयी हेतिनिहतो,
मदक्षीबो[1] नागः शरदि सरितः श्यानपुलिनाः।
कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता बालवनिता,
तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु जनाः॥ 35॥

शब्दार्थ—(शाण+उल्लीढः) शाण [सान, खराद] पर घिसा हुआ (मणिः) हीरा, (हेति+निहतः) शस्त्रों से घायल हुआ (समर+विजयी) संग्राम-विजेता, (मदक्षीबः) मदमस्त (नागः) हाथी, (शरदि) शरद् ऋतु में (श्यानपुलिनाः) कुछ-कुछ सूखे हुए किनारोंवाली (सरिताः) नदी (कला+शेषः) थोड़ी-सी कलावाला अर्थात् द्वितीया का (चन्द्रः) चन्द्रमा (सुरत+मृदिता) सम्भोग में दली-मली गई (बाल+वनिता) नवयौवना नारी (च) और (अर्थिषु) याचकों को दान देने के कारण (गलित+विभवाः) कङ्गाल हुए (नराः) मनुष्य—ये सभी (तनिम्ना) दुबलाने पर भी (शोभन्ते) सुशोभित होते हैं।

भावार्थ—खराद पर चढ़कर हीरा घिसता है, परन्तु निखर उठता है। वीर संग्राम में अस्त्र-शस्त्रों की मार खाकर भी विजयी होता है, मस्ती उतरा हुआ हाथी युद्ध में विजयी बनाता है। शरद् ऋतु में नदी के सूखने पर भी उसका बालू के बिछावन मन को मोहते हैं, शुक्लपक्ष की द्वितीया का क्षीण चन्द्रमा भी अति शोभायमान लगता है, बाला युवती रतिक्रीड़ा में निढाल होकर भी सुन्दर लगती है। धनी सर्वस्व देकर भी दानवीर कहलाता है—इन सब का हाल पतला हो जाता है परन्तु इनका बोलबाला होता है।

परिक्षीणः कश्चित्स्पृहयति यवानां प्रसृतये,
स पश्चात्सम्पूर्णो गणयति धरित्रीं तृणसमाम्।
अतश्चानैकान्त्याद् गुरुलघुतयाऽर्थेषु धनिना-
मवस्था वस्तूनि प्रथयति च सङ्कोचयति च॥ 36॥

1. प्रायः पुस्तकों में 'मदक्षीणो' पाठ है, परन्तु 'मदक्षीबः' में जो सौन्दर्य और स्वारस्य है वह 'मदक्षीणः' में कहाँ? मदक्षीण हाथी तो पहले ही कृश हो चुका है, अतः 'मदक्षीबः' पाठ ही उचित है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—(कश्चित्) कोई (परीक्षिणः) धनहीन, दरिद्र व्यक्ति (यवानाम्) जौ के (प्रसृतये) मुट्ठीभर दानों के लिए (स्पृहयति) तरसता है, परन्तु (पश्चात्) बाद में (सम्पूर्णः) सम्पदा पाकर (सः) वही व्यक्ति (धरित्रीम्) सम्पूर्ण पृथिवी को (तृणसमाम्) तिनके के समान तुच्छ (गणयति) गिनता, समझता है, (अतः च) इसीलिए (अर्थेषु) धन में (गुरु+लघुतया) बड़प्पन और छुटपन, अधिकता और न्यूनता (अनैकान्त्याद्) अलग-अलग होने के कारण (धनिनाम्) धनियों की (अवस्था) दशा (वस्तूनि) वस्तुओं को, वस्तुओं के मूल्य को (प्रथयति च) विस्तृत करती है और (सङ्कोचयति च) निश्चय ही घटाती भी है।

भावार्थ—दरिद्र व्यक्ति एक मुट्ठीभर जौ की इच्छा करता है, परन्तु सम्पन्न होने पर वही व्यक्ति सारे संसार को तिनके के समान तुच्छ समझता है। इसलिए संसार में वस्तुओं का मूल्य भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए भिन्न-भिन्न होता है। लघुता और गुरुता निश्चित नहीं है। ये दोनों अवस्थाएँ ही मनुष्य को छोटा-बड़ा बनाती हैं और वस्तुओं को संकुचित और विस्तृत करती हैं।

राजन् दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेनां,
तेनाद्य वत्समिव लोकमिमं पुषाण।
तस्मिंश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे,
नानाफलं फलति कल्पलतेव भूमिः ॥ 37 ॥

शब्दार्थ—(राजन्) हे राजन्! (यदि) यदि (एनाम्) इस (क्षितिधेनुम्) पृथिवीरूपी गौ को (दुधुक्षसि) दुहने की इच्छा है तो (तेन) उसके लिए (अद्य) शीघ्र ही (इमम्, लोकम्) इन लोगों, प्रजासमूह का (वत्सम्, इव) बछड़े की भाँति (पुषाण) पोषण करो। (च) इस प्रकार (तस्मिन्) उस प्रजावर्ग के (अनिशम्) दिन-रात, सदा, (सम्यक्) भली-भाँति (परिपोष्यमाणे) पालन करने पर (भूमिः) पृथिवी (कल्पलता इव) कल्पलता की भाँति (नानाफलम्) अनेक प्रकार के फल (फलति) फलती, देती है।

भावार्थ—हे राजन्! यदि इस पृथिवीरूपी गौ को दुहने की इच्छा है तो बछड़ेरूपी प्रजा का भली-भाँति पोषण करो। प्रजावर्ग का रात-दिन सम्यक् पालन करने पर ही पृथिवी कल्पलता की भाँति अनेक प्रकार के फल प्रदान करती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्याऽनृता च परुषा प्रियवादिनी च,
हिंस्त्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या।
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च,
वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा॥ 38॥

शब्दार्थ—(सत्या च अनृता) कभी सच्ची और कभी झूठी (परुषा च प्रियवादिनी) कभी कठोर वचन बोलनेवाली और कभी मधुर वचन बोलनेवाली (हिंस्त्रा, दयालुः अपि) कहीं मारनेवाली और कहीं दया करनेवाली भी (अर्थपरा च वदान्या) कहीं लोभ से भरी हुई और कभी दान देने में दक्ष (नित्य प्रचुर+व्यया च नित्य+धनागमा) कहीं प्रचुर धन व्यय करनेवाली और कहीं बहुत सा संग्रह करनेवाली—इस प्रकार (वाराङ्गना इव) वेश्या की भाँति (नृपनीतिः) राजनीति भी (अनेकरूपा) बहुरूपियों की भाँति अनेक प्रकार के रूप धारण करनेवाली है।

भावार्थ—कहीं सच, कहीं झूठ; कभी गरम, कभी नरम; किसी पर अत्याचार और किसी पर दया; कहीं लूटना और कहीं दिल खोलकर लुटाना; कहीं खूब धन व्यय करनेवाली और कहीं प्रभूत संग्रह करनेवाली—इस प्रकार वेश्या की भाँति राजनीति भी बहुरूपियों की भाँति अनेक रूप धारण करनेवाली होती है।

आज्ञा[1] कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां,
दानं भोगो मित्रसंरक्षणं च।
येषाम् एते षड्गुणा न प्रवृत्ताः,
कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण॥ 39॥

शब्दार्थ—(येषाम्) जिन [राजाओं] में (आज्ञा) शासन करना, (कीर्तिः) यश का विस्तार, (पालनम्) प्रजा का पालन (ब्राह्मणानाम्, दानम्) ब्राह्मणों को दान देना (भोगः) ऐश्वर्य का उपभोग करना (च) और (मित्र+संरक्षणम्) मित्रों की रक्षा करना—(एते षड्गुणाः) ये छह गुण (न प्रवृत्ताः) न हों (तेषाम्, पार्थिव+उपाश्रेण) उन राजाओं का आश्रय लेने से (कः अर्थः) क्या लाभ?

1. कहीं पुस्तकों में 'विद्या' पाठ है। 'विद्या' पाठ होने पर अर्थ होगा—विद्या की प्राप्ति। समीचीन पाठ आज्ञा ही है, क्यों शासन करना, राजतन्त्र को चलाना राजाओं का प्रमुख धर्म और कर्तव्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावार्थ—जिन राजाओं में शासन करने की योग्यता, यश-विस्तार की इच्छा, प्रजापालन में दक्षता, सुपात्रों को दान देना, स्वयम् ऐश्वर्य का उपभोग करना और मित्रों के सुख-दुःख का ध्यान रखना—ये छह गुण न हों उनकी शरण में रहना व्यर्थ है।

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा धनं,
तत्प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितरां मेरौ ततो नाधिकम्।
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथाः,
कूपे पश्य पयोनिधावपि घटो गृह्णाति तुल्यं जलम्॥ 40॥[1]

शब्दार्थ—(धात्रा) संसार-रचयिता ब्रह्मा द्वारा (स्तोकम् वा महत्) थोड़ा अथवा अधिक (यत् धनम्) जो धन (निज+भाल+पट्ट+लिखितम्) हमारे मस्तक की पट्टी, ललाट पर लिख दिया है (तत्) वह (मरुस्थले, अपि) मरुभूमि, ऊसर में भी (नितराम्) निश्चय ही (प्राप्नोति) प्राप्त हो जाता है (च) और (मेरौ) सुमेरु पर्वत पर भी (ततः अधिकम् न) उससे बढ़कर नहीं मिलता, इसलिए (धीरो भव) धैर्य धारण करो (वित्तवत्सु) धनियों के पास जाकर (वृथा) बेकार (कृपणाम्) दीन-हीन (वृत्तिम्) व्यवहार (मा) मत (कृथाः) करो। (पश्य) देख, (घटः) घड़ा (कूपे)

---

1. इस श्लोक के पश्चात् अनेक प्रतियों में निम्न दो श्लोक प्राप्त होते हैं—

त्वमेव चातकाधारोऽसीति केषां न गोचरः।
किमम्भोदवरास्माकं कार्पण्योक्तीः प्रतीक्ष्यसे॥ 1॥

हे मेघश्रेष्ठ! यह कौन नहीं जानता कि चातकों के एकमात्र प्राणाधार तुम्हीं हो, फिर हमारे दीन वचनों की प्रतीक्षा क्यों कर रहे हो? भाव यह है कि धनिकों को आश्रित की इच्छापूर्ति विना याचना के ही कर देनी चाहिए।

रे रे चातक सावधानमनसा मित्र क्षणं श्रूयताम्,
अम्भोदा बहवो हि सन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशाः।
केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद् वृथा,
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः॥ 2॥

हे मित्र पपीहे! सावधानचित्त होकर तनिक मेरी बात सुनो। आकाश में बादल तो बहुत से हैं परन्तु सारे ही ऐसे दयालु नहीं हैं जो बरसकर तुम्हें तृप्त कर सकें। इनमें से कुछ तो घनघोर वृष्टि से सारी पृथिवी को सींच देते हैं और कुछ व्यर्थ ही गर्जते रहते हैं। इसलिए जिस किसी को देखकर प्रत्येक के समक्ष दीनता के वचन मत बोलो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुएँ में से (पयोनिधौ अपि) और सागर में से भी (तुल्यम्) समान (जलम्) जल ही (गृह्णाति) ग्रहण करता है, भर सकता है।

भावार्थ—परमात्मा ने मनुष्य के भाग्य में कम या अधिक जो भी लिख दिया है वह उसे अवश्य मिलेगा। मनुष्य चाहे मरुस्थल में पड़ा रहे तब भी उसमें कमी नहीं आएगी और स्वर्ण-पर्वत सुमेरु पर जा बैठे तब भी उसमें वृद्धि नहीं होगी, अतः धैर्य धारण करो, धनियों के दरवाजे पर जाकर मत गिड़गिड़ाओ। देखो, घड़े को चाहे छोटे कुएँ में से भरें या बड़े सागर में से, पानी उसमें उतना ही भरेगा जितना समा सकता है।

दुर्जनपद्धतिः

अकरुणत्वमकारणविग्रहः,
परधने परयोषिति च स्पृहा।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता,
प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम्॥ 41॥

भावार्थ—(अकरुणत्वम्) निर्दयता (अकारण+विग्रहः) विना कारण लड़ाई-झगड़ा करना (परधने) दूसरे के धन पर (च) और (परयोषिति) परायी स्त्री पर (स्पृहा) लालायित होना, (सुजन+बन्धुजनेषु) सज्जनों और सगे-सम्बन्धियों के साथ (असहिष्णुता) ईर्ष्या करना—(दुरात्मनाम्) दुर्जनों में (इदम्) यह, ये लक्षण (प्रकृति सिद्धम् हि) स्वाभाविक ही हैं।

भावार्थ—निर्दयता—दया का अभाव, विना कारण के लड़ाई-झगड़ा करना, दूसरे के धन और स्त्री को पाने की इच्छा करना, सज्जनों और सगे-सम्बन्धियों के साथ डाह रखना—ये लक्षण दुर्जनों में स्वभाव से ही पाये जाते हैं।

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलङ्कृतोऽपि सन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः॥ 42॥

शब्दार्थ—(विद्यया+अलङ्कृतः) विद्या के भूषण से भूषित (सन् अपि) होने पर भी (दुर्जनः) दुष्ट (परिहर्तव्यः) त्यागने योग्य ही है क्योंकि (मणिना भूषितः) मणि से अलंकृत होने पर भी (असौ, सर्पः) यह साँप (किम्) क्या (न भयङ्करः) भयंकर नहीं होता ?

भावार्थ—विद्या के भूषण से सुभूषित होने पर भी दुष्ट मनुष्य त्याज्य ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है क्योंकि मणि से अलंकृत होने पर भी क्या सर्प भयंकर नहीं होता?—अवश्य होता है।

जाड्यं ह्रीमति गण्यते व्रतरुचौ दम्भः शुचौ कैतवं,
शूरे निर्घृणता मुनौ विमतिता दैन्यं प्रियालापिनि।
तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तर्यशक्तिः स्थिरे,
तत्को नाम गुणो भवेत्स गुणिनां यो दुर्जनैर्नाङ्कितः ॥ 43 ॥

शब्दार्थ—(दुर्जनैः) दुष्टों द्वारा (ह्रीमति) लज्जाशील व्यक्ति में (जाड्यम्) मूढ़ता का आरोप किया जाता है, (व्रतरुचौ) व्रत में रुचि, निष्ठा रखनेवाले को (दम्भः) दम्भी, (शुचौ) सदाचारी पुरुष को (कैतवम्) कपटी, (शूरे) शूरवीर को (निर्घृणता) निर्दयी, (मुनौ) मुनि को (विमतिता) पागल, (प्रियालापिनि) मधुरभाषी को (दैन्यम्) दीन, (तेजस्विनि) तेजस्वी को (अवलिप्तता) घमण्डी, (वक्तरि) सुवक्ता को (मुखरता) बड़ हाँकनेवाला, बकवासी, (स्थिरे) धीर-गम्भीर शान्त पुरुष को (अशक्तिः) असमर्थ कहा जाता है (तत्) तब (गुणिनाम्) सज्जनों का (कः नाम) कौन-से नामवाला (गुणः) गुण (भवेत्) हो सकता है (यः) जो (दुर्जनैः) दुर्जनों द्वारा (न, अङ्कितः) कलङ्कित नहीं किया गया।

भावार्थ—दुष्ट लोग लज्जाशील को जड़, व्रत में निष्ठावान् को दम्भी, सदाचारी को कपटी, शूरवीर को दयाहीन, मुनि को पागल, मधुरभाषी को दान, तेजस्वी को घमण्डी, सुवक्ता को बकवासी और धीर-गम्भीर शान्त पुरुष को असमर्थ कहते हैं। गुणियों का ऐसा कौन सा गुण है, जिसको दुष्टों ने कलंकित न किया हो।

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुना यद्यस्ति किं पातकैः,
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचिमनो यद्यस्ति तीर्थेन किम्।
सौजन्यं यदि किं निजैः सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः,
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥ 44 ॥

शब्दार्थ—(चेत्) यदि (लोभः) लालच हो तो (अगुणेन किम्) अन्य किसी दुर्गुण की क्या आवश्यकता है? अर्थात् लालच ही सब से बड़ा दुर्गुण है। (यदि) यदि (पिशुनता) चुगलखोरी का स्वभाव (अस्ति) है तो (पातकैः किम्) पातकों और पापों का क्या काम? चुगलखोरी ही सब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से बड़ा पाप है। (सत्यम् चेत्) यदि जीवन में सत्य है (च) तो (तपसा किम्) अन्य किसी तप की क्या आवश्यकता ? अर्थात् सत्य सब से बड़ी तपस्या है। (यदि) यदि (शुचिमनः) पवित्र मन (अस्ति) हो तो (तीर्थेन किम्) इधर-उधर तीर्थों में घूमने से क्या प्रयोजन ? अर्थात् शुद्ध मन ही सब से बड़ा तीर्थ है। (यदि) यदि (सौजन्यम्) सज्जनता है तो (निजैः किम्) अपने आत्मीयों से क्या ? अर्थात् सज्जन व्यक्ति के सभी अपने, आत्मीय बन जाते हैं। (यदि, सुमहिमा, अस्ति) यदि संसार में यश फैल रहा है तो (मण्डनैः किम्) अन्य आभूषणों से क्या प्रयोजन ? अर्थात् यश ही सब से बड़ा आभूषण है। (यदि, सत्, विद्या, अस्ति) यदि उत्तम विद्या है तो फिर (धनैः किम्) धन से क्या काम ? अर्थात् विद्या ही सब से बड़ा धन है (यदि) यदि (अपयशः) अपयश [बदनामी] (अस्ति) है तो (मृत्युना किम्) मौत की क्या आवश्यकता ? अर्थात् वह तो जीते-जी मरा हुआ है।

भावार्थ—लोभ सब से बड़ा दुर्गुण है। यदि और कोई दुर्गुण न हो तब भी इस एक ही दुर्गुण से मनुष्य का पतन निश्चित है। चुगलखोरी सब से बड़ा पाप है। यदि मनुष्य और कोई भी पाप न करे तब भी वह इसी एक पाप से नरकगामी होता है। मनुष्य के जीवन में यदि सत्य हो तो उसे और किसी तपस्या की आवश्यकता नहीं है, केवल सत्य से ही वह तर जाएगा। यदि मनुष्य का मन शुद्ध है तो उसे इधर-उधर तीर्थों में भटकने की आवश्यकता नहीं है; पवित्र मन ही सब से बड़ा तीर्थ है—मन चंगा तो कठौती में गङ्गा। यदि सौजन्य है तो सभी अपने हैं, आत्मीय हैं। सज्जन के सभी निश्छल स्नेही बन जाते हैं। जिसका यश फैल रहा है, उसे अन्य आभूषणों से क्या काम ? यश ही सब से बड़ा आभूषण है। विद्या ही सर्वोत्तम धन है, ज्ञानी को और किसी धन की आवश्यकता नहीं। अपयश मृत्यु से भी बढ़कर है, माथे पर कलंक का टीका लगाकर जीना मरने के समान है।

शशी दिवसधूसरो गलितयौवना कामिनी,
सरो विगतवारिजं मुखमनक्षरं स्वाकृतेः।
प्रभुर्धनपरायणः सततदुर्गतः सज्जनो,
नृपाङ्गणगतः खलो मनसि सप्त शल्यानि मे॥ 45॥

शब्दार्थ—(दिवस+धूसरः) दिन के समय कान्तिहीन (शशी) चन्द्रमा (गलित+यौवना) ढली जवानी की (कामिनी) स्त्री (विगत+वारिजम्) कमलरहित (सरः) सरोवर (सु-आकृतेः) रूपवान्, सुन्दर पुरुष का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(अनक्षरम्, मुखम्) विद्या-रहित मुख (धन+परायणः) धन का लोभी (प्रभुः) राजा (सतत+दुर्गतः) सदा बुरी अवस्था में पड़ा हुआ (सज्जनः) श्रेष्ठ पुरुष (नृप+आङ्गण+गतः) राजा के आँगन में पहुँचा हुआ (खलः) दुर्जन—ये (सप्त) सात (मे) मेरे (मनसि) मन में (शल्यानि) काँटे की भाँति चुभते रहते हैं।

भावार्थ—दिन के समय कान्तिहीन चन्द्रमा, यौवन ढली हुई नारी, कमल-पुष्पों से रहित सरोवर, विना पढ़ा-लिखा रूपवान् पुरुष, धन-लोलुप राजा, सदा दुर्दशा में पड़ा हुआ सत्पुरुष और राजसभा में सम्मानित दुर्जन—ये सात मेरे मन में काँटे की भाँति चुभते रहते हैं।

न कश्चिच्चण्डकोपानामात्मीयो नाम भूभुजाम्।
होतारमपि जुह्वानं स्पृष्टो दहति पावकः ॥ 46 ॥

शब्दार्थ—(चण्ड+कोपानाम्) अत्यन्त क्रोधी (भूभुजाम्) राजाओं का (कश्चित्) कोई (आत्मीयः) अपना (न नाम) नाममात्र को भी नहीं होता, जैसे (पावकः) अग्नि (स्पृष्टः) छू जाने पर (जुह्वानम्) घी आदि की आहुति देनेवाले (होतारम्) अग्निहोत्र करनेवाले मनुष्य को (अपि) भी (दहति) जला डालती है।

भावार्थ—प्रचण्ड क्रोधी राजाओं का कोई अपना नहीं होता। जैसे छू जाने पर अग्नि हवन करनेवाले को भी जला डालती है, ऐसे ही क्रुद्ध होने पर राजा लोग अपने मित्रों को भी नहीं छोड़ते।

मौनान्मूकः प्रवचनपटुर्वाचको जल्पको वा,
धृष्टः पार्श्वे भवति च वसन्दूरतोऽप्यप्रगल्भः।
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः,
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥ 47 ॥

शब्दार्थ— सेवक (मौनात्) चुप रहे तो (मूकः) गूँगा (भवति) कहलाता है (प्रवचनपटुः) बातचीत करने में निपुण हो तो (वाचकः) बातूनी (वा) अथवा (जल्पकः) बकवासी कहलाता है (पार्श्वे) बगल में, पास (वसन्) रहने पर (धृष्टः) ढीठ और (दूरतः, अपि) दूर रहने पर भी (अप्रगल्भः) बुद्धिहीन कहलाता है (क्षान्त्या) सहनशीलता से (भीरुः) डरपोक कहलाता है (यदि) और यदि (न सहते) सहन न करने पर, असहिष्णु होने पर (प्रायशः) प्रायः (न+अभिजातः) अकुलीन, नीच कहलाता है। इस प्रकार (सेवाधर्मः) सेवा का कार्य (परम+गहनः) अत्यन्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गम्भीर है, कठिन है (योगिनाम्) योगियों की (अपि) भी (अगम्यः) समझ-बूझ से बाहर है।

भावार्थ—सेवक मौन रहने पर गूँगा, बातचीत करने में पटु हो तो बातूनी या बकवासी, पास रहने पर ढीठ, दूर रहने पर बुद्धिहीन, सहनशील होने पर डरपोक और असहिष्णु होने पर बुद्धिहीन, सहनशील होने पर डरपोक और असहिष्णु होने पर प्रायः नीच कहलाता है, इस प्रकार सेवाधर्म बहुत कठिन है, योगियों के लिए भी इसका निभाना और समझना कठिन है।

उद्भासिताखिलखलस्य विशृङ्खलस्य,
प्राग्जातविस्तृतनिजाधमकर्मवृत्तेः ।
दैवाद् अवाप्तविभवस्य गुणद्विषोऽस्य,
नीचस्य गोचरगतेः सुखमाप्यते कैः ॥ 48 ॥

शब्दार्थ—(उद्भासित+अखिल+खलस्य) सब दुष्टों को उभारनेवाले, (विशृङ्खलस्य) स्वेच्छाचारी, मनमानी करनेवाले (प्राक्, जात+विस्तृत+निज+अधम+कर्म+वृत्तेः) पूर्वजन्म में किये हुए अपने नीच कर्मों को क्रमशः विस्तृत रूप में करने की प्रवृत्तिवाले, (दैवात्) भाग्यवश (अवाप्त+विभवस्य) जिसे धन भी प्राप्त हो गया है, धन-वैभव-वाले (गुणद्विषः) सद्गुणों से अत्यन्त द्वेष रखनेवाले (अस्य नीचस्य) ऐसे नीच मनुष्य के (गोचरगतेः) सामने पड़कर, पास रहकर (कैः) किनके द्वारा (सुखम्) सुख (अवाप्यते) पाया जा सकता है, अर्थात् कौन सुखी हो सकता है।

भावार्थ—दुष्टों को उच्च पदवियों पर बैठानेवाले, अपनी मनमानी करनेवाले, पूर्वजन्म में किये हुए अपने नीच कर्मों को क्रमशः विस्तृत रूप में करने की प्रवृत्तिवाले, भाग्य से जिसे धन भी प्राप्त हो गया है ऐसे सद्गुणों से द्वेष रखनेवाले नीच पुरुष के पास रहकर कौन सुख पा सकता है।

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण,
लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना,
छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् ॥ 49 ॥

शब्दार्थ—(दिनस्य) दिन के (पूर्व+अर्द्ध+छाया, इव) पहले आधे भाग, दोपहर पहले की छाया की भाँति (खलानाम्) दुर्जनों की (मैत्री) मित्रता (आरम्भ+गुर्वी) आरम्भ में प्रगाढ़, घनिष्ठ परन्तु (क्रमेण क्षयिणी)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धीरे-धीरे घटनेवाली होती है। इसके विपरीत (सज्जनानाम्) श्रेष्ठ पुरुषों की (मैत्री) मित्रता (दिनस्य) दिन के (पर+अर्द्ध+भिन्ना) अगले भाग, दोपहर के पश्चात् की उलटी (छाया इव) छाया के समान (पुरा) पहले (लघ्वी) छोटी (च) और (पश्चात्) बाद में (वृद्धिमती) लम्बी हो जाती है।

भावार्थ—जैसे दिन के पहले भाग की छाया पहले लम्बी और फिर क्रमशः घटती चली जाती है, वैसे ही दुष्टों की मित्रता भी पहले अत्यन्त घनिष्ठ प्रतीत होती है परन्तु धीरे-धीरे कम होती जाती है। इसके विपरीत सज्जनों की मित्रता आरम्भ में स्वल्प-सी होती है परन्तु बाद में मध्याह्नोत्तर की छाया के समान उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है।

मृगमीनसज्जनानां तृणजलसन्तोषविहितवृत्तीनाम्।
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणमेव वैरिणो जगति॥ 50॥

शब्दार्थ—(तृण+जल+सन्तोष+विहित+वृत्तीनाम्) तिनके=घास, जल और सन्तोष पर ही जीवन निर्वाह करनेवाले (मृग+मीन+सज्जनानाम्) हिरन आदि जन्तुओं, मछलियों और सज्जनों के (जगति) संसार में क्रमशः (लुब्धक+धीवर+पिशुनाः) शिकारी धीवर=मछेरे और चुगलखोर (निः कारणम् एव) विना कारण के ही (वैरिणः) वैरी बन जाते हैं।

भावार्थ—हिरन, मछली और सज्जन—ये तीनों विना किसी को सताये घास, जल और सन्तोष से अपना जीवन-निर्वाह करते हैं, परन्तु शिकारी, धीवर और चुगलखोर विना कारण ही इनके शत्रु बने हुए हैं।

सुजनपद्धतिः

वाञ्छा सज्जनसङ्गमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता,
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद् भयम्।
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले,
एते येषु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः॥ 51॥

शब्दार्थ—(सज्जनसङ्गमे वाञ्छा) सत्पुरुष के साथ रहने, उठने-बैठने की इच्छा (परगुणे प्रीतिः) दूसरों, शत्रुओं के भी सद्गुणों में अनुराग होना (गुरौ नम्रता) गुरुजनों, बड़ों, वृद्धों के प्रति विनम्रता (विद्यायां व्यसनम्) विद्या पढ़ने-पढ़ाने में आसक्ति होना (स्व+योषिति रतिः) अपनी ही स्त्री से प्रेम, रमण करना (लोक+अपवादात् भयम्) लोगों में बदनाम होने का भय (शूलिनि, भक्तिः) शिव=कल्याणकारी परमात्मा की भक्ति (आत्मदमने शक्तिः) मन और इन्द्रियों को वश में रखने की शक्ति (खले संसर्गमुक्तिः)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुष्टों की संगति से दूर रहना (एते) ये (निर्मल+गुणाः) पवित्र गुण (येषु) जिन मनुष्यों में (वसन्ति) रहते हैं (तेभ्यः) उन (नरेभ्यः) महापुरुषों को (नमः) हमारा प्रणाम है।

भावार्थ—सज्जनों के सङ्ग की इच्छा, दूसरों या शत्रु के भी गुणों में अनुराग, गुरुजनों के प्रति विनम्रता, विद्या का व्यसन, अपनी ही स्त्री से रतिक्रीड़ा, लोक में बदनामी से भय, परमात्मा की भक्ति, मन और इन्द्रियों को वश में रखने की शक्ति और दुष्टों के संसर्ग का त्याग—ये निर्मल गुण जिन मनुष्यों में रहते हैं, ऐसे महापुरुषों को हमारा प्रणाम है।

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ,
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥ 52॥

शब्दार्थ—(विपदि) विपत्ति, कष्ट-काल में (धैर्यम्) धैर्य, हिम्मत न हारना, (अथ) और (अभ्युदये) समृद्धि, सम्पत्काल में (क्षमा) सहनशीलता (सदसि) सभा में (वाक्पटुता) बोलने की चतुरता (युधि) युद्ध में (विक्रमः) पराक्रम प्रकट करना (यशसि) यश-प्राप्ति की (अभिरुचिः) अभिलाषा (च) और (श्रुतौ) वेदादि शास्त्रों के अध्ययन के व्यसन में (महात्मनाम्) महापुरुषों में (प्रकृतिसिद्धम्) स्वभाव से ही होते हैं।

भावार्थ—विपत्ति में धैर्य, समृद्धि में क्षमाशीलता, सभा में वचनचातुर्य, युद्ध में पराक्रम, यश-प्राप्ति की अभिलाषा और वेदादि शास्त्रों के अध्ययन का व्यसन—ये छह बातें महापुरुषों में स्वभाव से ही होती हैं।

करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणयिता,
मुखे सत्या वाणी विजयि भुजयोः वीर्यमतुलम्।
हृदि स्वच्छा वृत्तिः श्रुतमधिगतं च श्रवणयो-
र्विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम्॥ 53॥

शब्दार्थ—(करे) हाथों में (श्लाघ्यः) प्रशंसनीय (त्यागः) सुपात्रों को दान देने की प्रवृत्ति [हाथों की शोभा है], (शिरसि) सिर पर (गुरुपाद+प्रणयिता) गुरु के चरणों में प्रणति [झुकना ही सच्चा आभूषण है], (मुखे) मुख में (सत्या वाणी) सत्य-भाषण [ही मुख की शोभा है] (भुजयोः) भुजदण्डों में (विजयि) विजयकारक (अतुलम्) अनुपम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धीरे-धीरे घटनेवाली होती है। इसके विपरीत (सज्जनानाम्) श्रेष्ठ पुरुषों की (मैत्री) मित्रता (दिनस्य) दिन के (पर+अर्द्ध+भिन्ना) अगले भाग, दोपहर के पश्चात् की उलटी (छाया इव) छाया के समान (पुरा) पहले (लघ्वी) छोटी (च) और (पश्चात्) बाद में (वृद्धिमती) लम्बी हो जाती है।

भावार्थ—जैसे दिन के पहले भाग की छाया पहले लम्बी और फिर क्रमशः घटती चली जाती है, वैसे ही दुष्टों की मित्रता भी पहले अत्यन्त घनिष्ठ प्रतीत होती है परन्तु धीरे-धीरे कम होती जाती है। इसके विपरीत सज्जनों की मित्रता आरम्भ में स्वल्प-सी होती है परन्तु बाद में मध्याह्नोत्तर की छाया के समान उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है।

मृगमीनसज्जनानां तृणजलसन्तोषविहितवृत्तीनाम्।
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणमेव वैरिणो जगति॥ 50॥

शब्दार्थ—(तृण+जल+सन्तोष+विहित+वृत्तीनाम्) तिनके=घास, जल और सन्तोष पर ही जीवन निर्वाह करनेवाले (मृग+मीन+सज्जनानाम्) हिरन आदि जन्तुओं, मछलियों और सज्जनों के (जगति) संसार में क्रमशः (लुब्धक+धीवर+पिशुनाः) शिकारी धीवर=मछेरे और चुगलखोर (निः कारणम् एव) विना कारण के ही (वैरिणः) वैरी बन जाते हैं।

भावार्थ—हिरन, मछली और सज्जन—ये तीनों विना किसी को सताये घास, जल और सन्तोष से अपना जीवन-निर्वाह करते हैं, परन्तु शिकारी, धीवर और चुगलखोर विना कारण ही इनके शत्रु बने हुए हैं।

सुजनपद्धतिः

वाञ्छा सज्जनसङ्गमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता,
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद् भयम्।
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले,
एते येषु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः॥ 51॥

शब्दार्थ—(सज्जनसङ्गमे वाञ्छा) सत्पुरुष के साथ रहने, उठने-बैठने की इच्छा (परगुणे प्रीतिः) दूसरों, शत्रुओं के भी सद्गुणों में अनुराग होना (गुरौ नम्रता) गुरुजनों, बड़ों, वृद्धों के प्रति विनम्रता (विद्यायां व्यसनम्) विद्या पढ़ने-पढ़ाने में आसक्ति होना (स्व+योषिति रतिः) अपनी ही स्त्री से प्रेम, रमण करना (लोक+अपवादात् भयम्) लोगों में बदनाम होने का भय (शूलिनि, भक्तिः) शिव=कल्याणकारी परमात्मा की भक्ति (आत्मदमने शक्तिः) मन और इन्द्रियों को वश में रखने की शक्ति (खले संसर्गमुक्तिः)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुष्टों की संगति से दूर रहना (एते) ये (निर्मल+गुणाः) पवित्र गुण (येषु) जिन मनुष्यों में (वसन्ति) रहते हैं (तेभ्यः) उन (नरेभ्यः) महापुरुषों को (नमः) हमारा प्रणाम है।

भावार्थ—सज्जनों के सङ्ग की इच्छा, दूसरों या शत्रु के भी गुणों में अनुराग, गुरुजनों के प्रति विनम्रता, विद्या का व्यसन, अपनी ही स्त्री से रतिक्रीड़ा, लोक में बदनामी से भय, परमात्मा की भक्ति, मन और इन्द्रियों को वश में रखने की शक्ति और दुष्टों के संसर्ग का त्याग—ये निर्मल गुण जिन मनुष्यों में रहते हैं, ऐसे महापुरुषों को हमारा प्रणाम है।

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ,
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥ 52॥

शब्दार्थ—(विपदि) विपत्ति, कष्ट-काल में (धैर्यम्) धैर्य, हिम्मत न हारना, (अथ) और (अभ्युदये) समृद्धि, सम्पत्काल में (क्षमा) सहनशीलता (सदसि) सभा में (वाक्पटुता) बोलने की चतुरता (युधि) युद्ध में (विक्रमः) पराक्रम प्रकट करना (यशसि) यश-प्राप्ति की (अभिरुचिः) अभिलाषा (च) और (श्रुतौ) वेदादि शास्त्रों के अध्ययन के व्यसन में (महात्मनाम्) महापुरुषों में (प्रकृतिसिद्धम्) स्वभाव से ही होते हैं।

भावार्थ—विपत्ति में धैर्य, समृद्धि में क्षमाशीलता, सभा में वचनचातुर्य, युद्ध में पराक्रम, यश-प्राप्ति की अभिलाषा और वेदादि शास्त्रों के अध्ययन का व्यसन—ये छह बातें महापुरुषों में स्वभाव से ही होती हैं।

करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणयिता,
मुखे सत्या वाणी विजयि भुजयोः वीर्यमतुलम्।
हृदि स्वच्छा वृत्तिः श्रुतमधिगतं च श्रवणयो-
र्विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम्॥ 53॥

शब्दार्थ—(करे) हाथों में (श्लाघ्यः) प्रशंसनीय (त्यागः) सुपात्रों को दान देने की प्रवृत्ति [हाथों की शोभा है], (शिरसि) सिर पर (गुरुपाद+प्रणयिता) गुरु के चरणों में प्रणति [झुकना ही सच्चा आभूषण है], (मुखे) मुख में (सत्या वाणी) सत्य-भाषण [ही मुख की शोभा है] (भुजयोः) भुजदण्डों में (विजयि) विजयकारक (अतुलम्) अनुपम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(बलम्) बल [ही वास्तविक आभूषण है], (हृदि) हृदय में (स्वच्छा) पवित्र (वृत्तिः) विचारधारा [ही सच्चा अलंकार है], (च) और (श्रवणयोः) कानों में (अधिगत+श्रुतम्) अच्छी प्रकार से प्राप्त किया हुआ शास्त्रों का ज्ञान [ही वास्तविक अलंकरण है], (प्रकृतिमहताम्) स्वभाव से ही महान् पुरुषों के लिए (ऐश्वर्येण विना अपि) ऐश्वर्य के विना भी (मण्डनम् इदम्) ये दिव्य आभूषण हैं।

भावार्थ—सुपात्रों को दान देने से हाथ की शोभा है, गुरु के चरणों में झुकनेवाला सिर प्रशंसनीय है, सत्य-भाषण मुख की शोभा है, भुजदण्डों की शोभा विजयकारक अतुल बल से है, हृदय की शोभा पवित्र भावों और कानों की शोभा शास्त्र-श्रवण से है। ऐश्वर्य के विना भी महापुरुषों के ये दिव्य आभूषण हैं।

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः सत्यवाक्यं,
काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभावः परेषाम्।
तृष्णास्त्रोतोविभङ्गो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा,
सामान्यं सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेष पन्थाः ॥ 54 ॥

शब्दार्थ—(प्राण+आघातात्) जीव-हिंसा से (निवृत्तिः) मन को हटाना (परधन+हरणे) दूसरे के धन को हड़पने में (संयमः) अपने को रोकना (सत्यवाक्यम्) सत्य बोलना (काले) समय पर (शक्त्या) अपनी शक्ति के अनुसार (प्रदानम्) सुपात्रों को दान देना (परेषाम्) दूसरों की (युवति+जन+कथा) स्त्रियों की चर्चा में (मूकभावः) चुप हो जाना (तृष्णा+स्त्रोतः+विभङ्गः) लोभ-लालच के झरने को तोड़ देना, बन्द कर देना (गुरुषु विनयः) माता-पिता, आचार्य आदि गुरुजनों के प्रति नम्रता दिखाना (सर्वभूत+अनुकम्पा) सभी प्राणियों पर दयाभाव रखना—(सर्वशास्त्रेषु) सब शास्त्रों में (एषः) इस (अनुपहत+विधिः) विना हिचकवाले व्यवहार को (सामान्यः) जनसाधारण के लिए (श्रेयसाम्) कल्याण, परमार्थ का (पन्थाः) मार्ग बताया गया है।

भावार्थ—जीव-हिंसा न करना, दूसरे के धन को हड़पने से मन को रोकना, सत्य बोलना, समय पड़ने पर सुपात्रों को यथाशक्ति दान देना, परस्त्री-विषयक चर्चा में मौन रहना, तृष्णा के वेग को रोकना, गुरुओं के प्रति नम्रता का व्यवहार करना, सब प्राणियों पर दयाभाव रखना—सब शास्त्रों में इसी व्यवहार को सर्वसाधारण के कल्याण का मार्ग बताया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्पत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम्।
आपत्सु च महाशैलशिलासङ्घातकर्कशम्॥ 55॥

शब्दार्थ—(महताम्) महापुरुषों का (चित्तम्) चित्त (सम्पत्सु) समृद्धि में (उत्पल+कोमलम्) कमल के समान कोमल (भवति) हो जाता है (च) और (आपत्सु) विपत्ति पड़ने पर (महाशैल+शिला+सङ्घात+कर्कशम्) बड़े पर्वत की चट्टानों के समूह के समान अत्यन्त कठोर हो जाता है।

भावार्थ—महात्माओं का चित्त समृद्धि [खुशहाली] में कमल के समान कोमल हो जाता है परन्तु विपत्ति आने पर वही मन बड़े पर्वत की चट्टानों के समूह की भाँति अत्यन्त कठोर हो जाता है।

[1]असन्तो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः,
प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यसुकरम्।
विपद्युच्चैः स्थैर्यं पदमनुविधेयं च महतां,
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधारा व्रतमिदम्॥ 56॥

शब्दार्थ—(असन्तः) क्षुद्र अथवा दुर्जनों से (न+अभ्यर्थ्याः) याचना न करना (कृशधनः) थोड़े धनवाले अथवा निर्धन (सुहृद्, अपि) मित्र से भी (न याच्यः) नहीं माँगना (प्रिया) प्रिय और (न्याय्या, वृत्तिः) न्याययुक्त आजीविका का ही आश्रय लेना (असुभङ्गे, अपि) प्राणों के संकट में पड़ने पर भी (मलिनम्) पाप-मार्ग में (असुकरम्) प्रवृत्त नहीं होना, (विपदि) विपत्ति आने पर भी (उच्चैः) अपने श्रेष्ठ आचरण में ही (स्थैर्यम्) स्थित रहना (च) और (महताम्) महापुरुषों के (पदम्) पद का (अनुविधेयम्) अनुसरण करना—(इदम्) यह, इस (विषमम्) अत्यन्त कठोर (असिधारा+व्रतम्) तलवार की धार पर चलने के व्रत का (सताम्) श्रेष्ठ पुरुषों के लिए (केन) किसने (उद्दिष्टम्) उपदेश दिया है ? किसी ने नहीं।

भावार्थ—क्षुद्र अथवा दुर्जनों से याचना न करना, थोड़े धनवाले अथवा निर्धन मित्र से भी न माँगना, प्रिय एवं न्याययुक्त आजीविका का ही आश्रय लेना, प्राणों के संकट में पड़ने पर भी पाप-मार्ग में प्रवृत्त न होना, विपत्ति आने पर भी अपने श्रेष्ठाचरण में ही स्थित रहना और सदा महापुरुषों के मार्ग का

1. कुछ प्रतियों में यह श्लोक 'प्रिया न्याय्या' से आरम्भ होता है। पहला चरण वहाँ दूसरा चरण है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुसरण करना—इस तलवार की धार से भी तीक्ष्ण व्रत का उपदेश सज्जनों को किसने दिया है ? किसी ने नहीं, यह तो उनका स्वभाव है।

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः,
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः।
अनुत्सेको लक्ष्म्यां निरभिभवसाराः परकथाः,
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधारा व्रतमिदम्॥ 57॥

शब्दार्थ—(प्रच्छन्नम्) गुप्त (प्रदानम्) दान देना, (गृहम् आगते) घर पर आये हुए अतिथि की (सम्भ्रम+विधिः) प्रसन्नतापूर्वक सेवा करना, (प्रियम्, कृत्वा) किसी का भला करके (मौनम्) चुप रहना, किसी से न कहना, (अपि च) और (उपकृतेः) दूसरों द्वारा उपकार किये जाने पर (सदसि कथनम्) उसका सभा में वर्णन करना (लक्ष्म्याम्) धन-सम्पत्ति होने पर (अन्+उत्सेकः) अभिमान न करना (निः, अभिभवसाराः) विना निन्दा-तिरस्कार के, विना बढ़ाये-चढ़ाये (परकथाः) दूसरों के सम्बन्ध में कहना—(इदम्) यह (विषमम्) कठोर (असिधाराव्रतम्) तलवार की धार पर चलने का व्रत (सताम्) सत्पुरुषों को (केन) किसने (उद्दिष्टम्) सिखाया ? किसी ने नहीं।

भावार्थ—प्रकट न करके चुपचाप दान देना, घर पर आये हुए अतिथि के साथ आदर का व्यवहार करना, उपकार करके मौन रहना, अपने ऊपर दूसरों द्वारा किये हुए उपकार का सभा में वर्णन करना, लक्ष्मी पाकर घमण्ड न करना और विना निन्दा-तिरस्कार का मिर्च-मसाला लगाये दूसरों के सम्बन्ध में कहना—इस प्रकार के कठोर तलवार की धार पर चलने के व्रत का उपदेश सज्जनों को किसने दिया है ? किसी ने नहीं, ये उनके स्वभावसिद्ध गुण हैं।

सन्तप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न श्रूयते,
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपात्रस्थितं राजते।
स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते,
प्रायेणाधममध्यमोत्तमजुषामेवंविधा वृत्तयः॥ 58॥

शब्दार्थ—(सन्तप्त+अयसि) खूब तपाये हुए लोहे पर (संस्थितस्य) पड़ने पर (पयसः) पानी का (नाम+अपि) नाम भी (न श्रूयते) नहीं सुनाई देता, नाम-निशान भी नहीं रहता, (तत् एव) वह पानी (नलिनी+पत्र+स्थितम्) कमल के पत्ते पर स्थित होकर (शुक्ता+आकारतया) मोती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के रूप में (राजते) चमकता है (तत्) वही जल की बूँद (स्वात्याम्) स्वाति नक्षत्र में (सागर+शुक्ति+मध्य+पतितम्) सागर की सीप के पेट में पड़कर (मौक्तिकम्) मोती (जायते) बन जाती है, अतः यह सिद्ध हुआ कि (प्रायेण) प्रायः (अधम+मध्यम+उत्तम+ जुषाम्) अधम, मध्यम और उत्तम संगति पानेवाले के (एवंविधा) इसी प्रकार के (वृत्तयः) स्वभाव बन जाते हैं।

भावार्थ—गर्म लोहे पर पड़ी हुई पानी की बूँद का नाम-निशान भी नहीं रहता, वही बूँद कमल के पत्ते पर गिरकर मोती के समान चमकने लगती है, फिर वही बूँद स्वाति-नक्षत्र में समुद्र की सीप के पेट में पड़कर मोती बन जाती है, अतः यह सिद्ध हुआ कि अधम, मध्यम और उत्तम गुण मनुष्य में सत्सङ्ग से ही उत्पन्न होते हैं।

यः प्रीणयेत्सुचरितैः पितरं स पुत्रो,
यद् भर्तुरेव हितमिच्छति तत्कलत्रम्।
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं य-
देतत्त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते॥ 59॥[1]

शब्दार्थ—(यः) जो (सुचरितैः) अपने उत्तम चाल-चलन से (पितरम्) अपने माता-पिता को (प्रीणयेत्) प्रसन्न करता है (सः) वही (पुत्रः) सच्चा पुत्र है (यत्) जो स्त्री (भर्तुः, एव) पति का ही (हितम्) कल्याण, भलाई (इच्छति) चाहती है (तत्) वही (कलत्रम्) स्त्री, पत्नी है (यत्) जो (आपदि च सुखे) आपत्ति और सुख में (समक्रियम्) समान व्यवहार करता है, बराबर सहायक रहता है (तत् मित्रम्) वही सच्चा मित्र है—(जगति) संसार में (एतत्, त्रयम्) ये तीनों (पुण्यकृतः) पुण्य करनेवाले, भाग्यशालियों को ही (लभन्ते) प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—जो अपने आचरणों [श्रेष्ठकर्मों और व्यवहारों] से अपने

---

1. कुछ प्रतियों [संस्करणों] में इस श्लोक के पश्चात् निम्न श्लोक उपलब्ध होता है।

एको देवः केशवो वा शिवो वा एकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा।
एको वासः पत्तने वा वने वा एका नारी सुन्दरी वा दरी वा॥

मनुष्यों को एक ही देव में भक्ति रखनी चाहिए वह विष्णु हो या शिव, एक ही मित्र बनाना चाहिए चाहे वह राजा हो अथवा योगी, एक ही स्थान पर रहना चाहिए चाहे वह नगर हो या वन, और एक ही पत्नी होनी चाहिए चाहे वह सुन्दरी स्त्री हो अथवा पर्वत की कन्दरा [गुफा]।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माता-पिता को प्रसन्न करता है, वही सच्चा पुत्र है, जो सदा अपने पति की ही भलाई चाहती है वही स्त्री है, जो सुख और दुःख दोनों में समान रूप से सहायक रहे वही सच्चा मित्र है—संसार में ये तीनों भाग्यशालियों को ही प्राप्त होते हैं।

नम्रत्वेनोन्नमन्तः परगुणकथनैः स्वान्गुणान्ख्यापयन्तः,
स्वार्थान्सम्पादयन्तो विततपृथुतरारम्भयत्नाः परार्थे।
क्षान्त्यैवाक्षेपरूक्षाक्षरमुखरमुखान्दुर्जनान्दुःखयन्तः,
सन्तः साश्चर्यचर्या जगति बहुमयाः कस्य नाभ्यर्चनीयाः ॥ 60 ॥

शब्दार्थ—(नम्रत्वेन) विनम्रता से (उत्+नमन्तः) उन्नति करनेवाले, (पर+गुणकथनैः) दूसरों के गुणों का बखान करते हुए (स्वान्, गुणान्, ख्यापयन्तः) अपने गुणों को प्रकट करनेवाले (परार्थे) दूसरों के कार्यों में (विततं+पृथुतर+आरम्भ+यत्नाः) विस्तृत तथा महान् प्रयत्न करके (स्व+अर्थात्) अपने कार्यों को (सम्पादयन्तः) सिद्ध करनेवाले (आक्षेप+रूक्ष+अक्षर+मुखर+मुखान् दुर्जनान्) अपने मुखों से निन्दायुक्त, कठोर शब्दों का प्रयोग करनेवाले दुष्टों को (क्षान्त्या एव) क्षमा-गुण से ही (दुःखयन्तः) दुःखी करने, दूषित करने—[अपराधी ठहराने] वाले (सा+आश्चर्य+चर्या) ऐसे आश्चर्ययुक्त आचरणवाले (सन्तः) सन्तजन (जगति) संसार में (बहुमताः) सम्मानीय बनकर (कस्य) किसके (न+अभ्यर्चनीयाः) पूजनीय नहीं होते ? सभी के पूजनीय होते हैं।

भावार्थ—नम्रता से उन्नति करनेवाले, दूसरों के गुणों के वर्णन द्वारा अपने गुणों को प्रकट करनेवाले, परोपकार करते हुए अपने लिए सद्भावना का सम्पादन करनेवाले, कठोर वाक्यों का प्रयोग करनेवाले, निन्दक और कुटिल लोगों को क्षमागुण से ही दूषित करने [अपराधी ठहरानेवाले]—ऐसे आश्चर्ययुक्त शुभाचरण करनेवाले माननीय पुण्यात्मा लोग संसार में किसके पूज्य नहीं होते ? सभी के पूज्य होते हैं।

परोपकारपद्धतिः

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै-
र्नवाम्बुभिर्भूमिविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः,
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥ 61 ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—(फल+उद्गमैः) फल आने पर (तरवः) वृक्ष (नम्राः भवन्ति) झुक जाते हैं, (घनाः) मेघ, बादल (नव+अम्बुभिः) नये जलों से भरकर (भूमि+विलम्बिनः) भूमि पर दूर-दूर तक फैल जाते हैं, इसी प्रकार (सत्पुरुषाः) सज्जन लोग (समृद्धिभिः) सम्पदाओं से सम्पन्न हो जाने पर भी (अनुद्धताः) गर्वरहित, विनीत बने रहते हैं, (परोपकारिणाम्) परोपकारियों के लिए (एषः) यह (स्वभावः, एव) स्वाभाविक ही है।

भावार्थ—फल आने पर वृक्ष झुक जाते हैं, नवीन जल से पूरित मेघ=बादल झुक-झुककर पृथिवी पर जलवर्षा करने लगते हैं। इसी प्रकार सज्जन भी ऐश्वर्य-सम्पन्न होने पर विनम्र हो जाते हैं, क्योंकि सदा विनम्र बने रहना परोपकारियों का स्वभाव ही है।

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन।
विभाति कायः करुणामयानां परोपकारेण न चन्दनेन॥ 62॥

शब्दार्थ—(करुणामयानाम्) दयालु पुरुषों के (श्रोत्रम्) कान (श्रुतेन) शास्त्र-श्रवण से (एव) ही (विभाति) सुशोभित होते हैं (कुण्डलेन, न) कानों में कुण्डल पहनने से नहीं, (पाणिः) उनके हाथ (दानेन) दान से शोभित होते हैं (कङ्कणेन तु न) हाथों में कंगन पहनने से नहीं (कायः) उनका शरीर (पर+उपकारेण) परोपकार, दूसरों की भलाई करने से सुशोभित होता है (चन्दनेन न) शरीर पर चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्य पोतने से नहीं।

भावार्थ—दयालु पुरुषों के कानों की शोभा शास्त्र-श्रवण से होती है, कानों में कुण्डल धारण करने से नहीं, हाथों की शोभा सुपात्रों को दान देने से होती है, हाथों के सुवर्ण-आभूषण पहनने से नहीं और उनका शरीर परोपकार से सुशोभित होता है, चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों के लेप से नहीं।

पद्माकरं दिनकरो विकचं करोति,
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति,
सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः॥ 63॥

शब्दार्थ—(दिनकरः) सूर्य (न+अभ्यर्थितः) विना याचना किये ही (पद्माकरम्) कमल-समूह को (विकचम्) विकसित (करोति) कर देता है (चन्द्रः) चन्द्रमा भी विना किसी प्रार्थना के (कैरवचक्रवालम्) कुमुदों को (विकासयति) प्रफुल्लित कर देता है (जलधरः, अपि)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेघ-बादल भी विना माँगे ही (जलम्) जल (ददाति) देता, बरसाता है, इसी प्रकार (सन्तः) सन्तजन (स्वयम्) आप ही (परहितेषु) दूसरों की भलाई में (कृत+अभियोगाः) संकल्प किये रहते हैं, दूसरों की भलाई करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

भावार्थ—सूर्य विना याचना किये ही कमल-समूह को विकसित करता है, चन्द्रमा भी विना प्रार्थना के स्वयं ही कुमुदों को प्रफुल्लित करता है, बादल भी विना माँगे ही जल बरसाता है, इसी प्रकार सज्जन भी अपने-आप ही दूसरों की भलाई करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थान्परित्यज्य ये,
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये,
ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे॥ 64॥

शब्दार्थ—(ये) जो व्यक्ति (स्वार्थान्) अपने लाभों को (परित्यज्य) छोड़कर (पर+अर्थ+घटकाः) दूसरों की भलाई में यत्नशील रहते हैं (एके) ऐसे लोग (सत्पुरुषाः) सत्पुरुष, उत्तम पुरुष हैं, (ये) जो (स्वार्थ+अवरोधेन) अपने लाभ को जोखिम में न डालते हुए, अपने लाभ को हानि न पहुँचाते हुए (पर+अर्थम्) दूसरों के लाभ के लिए (उद्यमभृतः) यत्नशील रहते हैं (ते तु सामान्याः) वे मध्यम कोटि के लोग हैं, (ये) जो (स्वार्थाय) अपनी स्वार्थसिद्धि, अपने लाभ के लिए (परहितम्) दूसरों के हितों को (निघ्नन्ति) नष्ट करते हैं, हानि पहुँचाते हैं, (ते अमी) ऐसे लोग (मानुष+राक्षसाः) मनुष्य के रूप में राक्षस हैं, (ये तु) किन्तु जो (निरर्थकम्) अकारण, व्यर्थ ही (परहितम्) दूसरों के हितों को (निघ्नन्ति) हनन करते हैं (ते के) वे कौन हैं, उन्हें किस नाम से पुकारा जाए (न जानीमहे) यह हम नहीं जानते।

भावार्थ—संसार में वे लोग सत्पुरुष हैं जो अपने स्वार्थ को तिलाञ्जलि देकर दूसरों की भलाई करते हैं, वे सामान्य जन हैं जो अपने काम को न बिगाड़ते हुए दूसरों की भलाई करते हैं, वे राक्षस हैं जो अपना कार्य सिद्ध करने के लिए दूसरों के बने-बनाये काम को बिगाड़ देते हैं, परन्तु जो लोग विना किसी स्वार्थ के व्यर्थ ही दूसरों के हित की हानि करते हैं, उन्हें किस नाम से पुकारा जाए यह हम नहीं जानते [वे राक्षसों से भी गये-बीते महानीच हैं]।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यं निगूहति गुणान्प्रकटी करोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले,
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥ 65 ॥

शब्दार्थ—(सन्तः) सत्पुरुष (सत्+मित्र+लक्षणम्) श्रेष्ठ मित्र के लक्षण (इदम्) यह (वदन्ति) बताते हैं—श्रेष्ठ मित्र अपने मित्र को (पापात्) पापाचरण, बुरे कर्मों से (निवारयति) बचाता, रोकता है और (हिताय) कल्याणकारी, पुण्य कार्यों में (योजयते) लगाता है, (गुह्यम्) अपने मित्र की छिपाने योग्य बुरी बातों को (निगूहति) छिपाता है, किसी के समक्ष प्रकट नहीं करता (गुणान्) मित्र के गुणों को (प्रकटी करोति) प्रकट करता है (आपद्गतम्) विपत्ति में पड़े हुए मित्र को (न जहाति) छोड़ता नहीं है (च) और (काले) समय पड़ने पर (ददाति) धनादि द्वारा सहायता करता है।

भावार्थ—महात्मा लोग श्रेष्ठ मित्र के ये लक्षण बताते हैं—श्रेष्ठ मित्र अपने मित्र को पाप करने से रोकता है, पुण्यकर्मों को करने की प्रेरणा करता है, गुप्त रखने योग्य बातों को गुप्त रखता है और गुणों को प्रकट करता है, विपत्ति पड़ने पर भी साथ नहीं छोड़ता और समय पड़ने पर धनादि से भी सहायता करता है।

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः,
क्षीरोत्तापमवेक्ष्य तेन पयसा स्वात्मा कृशानौ हुतः।
गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवद् दृष्ट्वा तु मित्रापदं,
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥ 66 ॥

शब्दार्थ—(क्षीरेण) दूध के द्वारा (आत्मगतः) अपने में मिले हुए (उदकाय) अपने जलरूपी मित्र को (पुरा) पहले (ते, अखिलाः, गुणाः) अपने सभी गुण [श्वेत रंग और मीठा स्वाद] (दत्ता हि) दिये ही गये और इस प्रकार उसे अपने जैसा बना लिया। तब (क्षीर+उत्तापम्) दूध को खौलते (अवेक्ष्य) देखकर (तेन, पयसा) उस पानी द्वारा, उस पानी ने (स्व+आत्मा) अपनी आत्मा, अपने-आपको (कृशानौ) अग्नि में (हुतः) जला डाला, अपनी आहुति दे दी (तत्, तु) वह दूध भी (मित्र+आपदम्) मित्र की विपत्ति को (दृष्ट्वा) देखकर (पावकम्) अग्नि में (गन्तुम्)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाने के लिए (उन्मनः) उत्सुक (अभवत्) हुआ [दूध में उबाल आ गया], (तु) परन्तु (तेन जलेन) उसी जल से (युक्तम्) युक्त होने पर, जल के छींटे देने पर (पुनः) फिर, (शाम्यति) शान्त हो जाता है, उफान बैठ जाता है, ठीक ही है (सताम्) सज्जनों की (मैत्री) मित्रता (ईदृशी) ऐसी ही [उच्च कोटि की] होती है।

भावार्थ—दूध ने अपने में मिले हुए अपने जलरूपी मित्र को अपने सभी गुण देकर उसे अपने जैसा बना लिया। उस उपकार के बदले में [जब दूध को गरम करने के लिए अग्नि पर रखा गया तब] दूध को जलता देखकर पानी ने अपने-आपको अग्नि को समर्पित कर दिया, अपने को जला दिया। अपने मित्र का नाश देखकर दूध उफनकर अग्नि में जाने के लिए व्याकुल हो उठा, परन्तु जल की छींटों के रूप में अपने मित्र को पुनः प्राप्त हुआ समझकर वह शान्त हो गया। ठीक है, सज्जनों की मित्रता ऐसी ही [उच्चकोटि की] होती है।

इतः स्वपिति केशवः कुलमितस्तदीयद्विषा-
मितश्च शरणार्थिनां शिखरिणां गणाः शेरते।
इतोऽपि वडवानलः सह समस्तसंवर्तकै-
रहो विततमूर्जितं भरसहं च सिन्धोर्वपुः ॥ 67 ॥[1]

शब्दार्थ—(अहो) कैसा आश्चर्य है! (सिन्धोः) समुद्र का (वपुः)

---

1. इस श्लोक के पश्चात् कुछ संस्करणों में निम्न प्रक्षिप्त श्लोक उपलब्ध होता है—

जातः कूर्मः स एकः पृथुभुवनभारायार्पितं येन पृष्ठं,
श्लाघ्यं जन्म ध्रुवस्य भ्रमति नियमितं यत्र तेजस्विचक्रम्।
संजातव्यर्थपक्षाः परहितकरणे नोपरिष्टान्न चाधो,
ब्रह्माण्डोदुम्बरान्तर्मशकवदपरे जन्तवो जातनष्टाः॥

बड़े भारी पृथिवी आदि लोकों का भार सहन करने के लिए जिसके द्वारा अपनी पीठ दी गई, एकमात्र वह कच्छप [अवतार] अकेला ही सुजन्मा है, उसी का जन्म सार्थक है, जिसके चारों ओर जगमगाता तारा-मण्डल नियमानुसार चक्कर काटता है उस ध्रुव का जन्म भी प्रशंसनीय है, किन्तु अन्य सभी प्राणी परोपकार के लिए उत्पन्न होकर भी व्यर्थ ही जीते हैं, क्योंकि वे ध्रुव की भाँति न ऊपर हैं न कच्छप की भाँति नीचे हैं अपितु ब्रह्माण्डरूपी गूलर के फल के भीतरवाले मच्छर, कीड़ों-भुनगों की भाँति व्यर्थ ही जन्मते और मरते हैं।

अवतारवाद की कल्पना अवैदिक है, अतः यह श्लोक भी प्रक्षिप्त है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शरीर कितना (विततम्) विस्तृत, विशाल (ऊर्जितम्) बलिष्ठ (च) और (भरसहम्) भार सहन करनेवाला है। (इतः) यहाँ इसमें [एक ओर तो] (केशवः) विष्णु भगवान् (स्वपिति) सोते हैं तो (इतः) यहाँ दूसरी ओर (तदीय) उसके, उनके (द्विषाम्) शत्रुओं [दानवों] का (कुलम्) समूह, निवास करता है। (इतः) इधर (शरणार्थिनाम्, शिखराणाम्) शरण लिये हुए पर्वतों की (गणाः) मालाएँ (शेरते) सिर छिपाये पड़ी हैं (इतः, अपि) इधर भी, किसी अन्य ओर (समस्त+संवर्तकैः सह) समस्त प्रलयकारी घटनाओं के साथ (वडवानलः) वडवाग्नि (वसति) वास किये हुए है। इतने पर भी समुद्र अचल और अडिग है।

भावार्थ—अहो! समुद्र का शरीर कैसा विस्तृत, बलिष्ठ और भार सहनेवाला है। इसमें एक ओर तो भगवान् विष्णु शयन कर रहे हैं, दूसरी ओर उनके शत्रुओं [दानवों] का समूह निवास कर रहा है। इधर शरणागत पर्वतमालाएँ पड़ी हुई हैं तो इधर प्रलयंकर अग्नियों को धारण किये हुए वडवानल धधक रहा है। इतने पर भी समुद्र अचल और अडिग है।

विशेष—सृष्टि-क्रम और विज्ञानविरुद्ध होने के कारण यह श्लोक अनर्गल अतः प्रक्षिप्त है। समुद्र में विष्णु का सोना पौराणिक गप्प है। नीति के प्रसङ्ग में इस श्लोक की क्या उपयोगिता है?

तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः,
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम्।
मान्यान्मानय विद्विषोऽप्यनुनय [1]प्रच्छादय स्वान् गुणान्,
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत्सतां लक्षणम्॥ 68॥

शब्दार्थ—(तृष्णाम् छिन्धि) लालच को काट फेंक, (क्षमाम् भज) सहनशीलता को धारण करो, (मदम् जहि) गर्व को नष्ट करो, (पापे) पापकर्मों में (रतिः) प्रीति (मा कृथाः) मत करो, (सत्यम् ब्रूहि) सत्य बोलो, (साधुपदवीम्) सज्जनों के मार्ग का (अनुयाहि) अनुसरण करो, (विद्वज्जनम्) विद्वानों की (सेवस्व) सेवा करो, (मान्यान् मानय) पूज्य पुरुषों का आदर करो, (विद्विषः अपि) शत्रुओं का भी (अनुनय) मान रखो, (स्वान् गुणान् प्रच्छादय) अपने गुणों का विस्तार करो, (कीर्तिम् पालय) अपनी ख्याति की, यश की रक्षा करो, (दुःखिते दयाम् कुरु)

1. किन्हीं संस्करणों में 'प्रख्यापय प्रश्रयम्' पाठ भी है। यह पाठ होने पर अर्थ होगा—नम्रता दिखाओ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दीन-दुःखी जनों पर दया करो—(**एतत्**) ये सब (**सताम्**) श्रेष्ठ पुरुषों के (**लक्षणम्**) लक्षण हैं।

भावार्थ—तृष्णा का त्याग करो, क्षमा को धारण करो, अभिमान को त्यागो, पाप में प्रीति मत करो, सत्य बोलो, सज्जनों के मार्ग का अनुसरण करो, विद्वानों की सेवा करो, पूजनीय व्यक्तियों का आदर करो, शत्रुओं से भी नम्रता का व्यवहार करो, अपने गुणों का विस्तार करो, अपने यश की रक्षा करो, दुःखियों पर दया दिखाओ—ये सब सत्पुरुषों के लक्षण हैं।

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥ 69 ॥

शब्दार्थ—जो (**मनसि**) मन में (**वचसि**) वचन में (**काये**) शरीर में (**पुण्य+पीयूष+पूर्णाः**) सत्यकर्मरूपी अमृत से पूर्ण होकर (**त्रिभुवनम्**) तीनों लोकों को (**उपकार+श्रेणिभिः**) उपकारों के समूह से, भलाई ही भलाई से (**प्रीणयन्तः**) प्रसन्न करनेवाले और (**पर+गुण+परमाणून्**) दूसरे के गुणों के छोटे से छोटे अंश को भी (**पर्वतीकृत्य**) पर्वत के समान बढ़ा-चढ़ाकर बखान करते हुए (**नित्यम्**) सदा (**निज+हृदि**) अपने हृदय में (**विकसन्तः**) प्रसन्न होनेवाले (**सन्तः**) महात्मा (**कियन्तः सन्ति**) कितने हैं ? विरले ही हैं।

भावार्थ—मन, वचन और शरीर में सत्यकर्मरूपी अमृत से परिपूर्ण होकर तीनों लोकों को अपने उपकारों से तृप्त करनेवाले तथा दूसरों के परमाणु के समान छोटे से गुण को पर्वत के समान मानकर अपने हृदय में प्रसन्न होनेवाले महात्मा संसार में कितने हैं ? बहुत ही कम हैं।

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा,
यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव।
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण,
कङ्कोलनिम्बकुटजा अपि चन्दनाः स्युः ॥ 70 ॥

शब्दार्थ—(**तेन**) उस (**हेम+गिरिणा**) सुवर्ण-पर्वत सुमेरु (**वा**) अथवा (**रजत+अद्रिणा**) चाँदी के पर्वत कैलास से (**किम्**) क्या लाभ (**यत्र**) जहाँ, जिन पर (**आश्रिताः**) खड़े हुए (**ते तरवः**) वे वृक्ष (**तरवः**

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

च एव) वृक्ष ही रह गये, सुवर्ण और चाँदी के नहीं बने। (मलयम् एव) मलय पर्वत को ही (मन्यामहे) हम तो उत्तम मानते हैं (यत् आश्रयेण) जिसके आश्रय से (कङ्कोल+निम्ब+कुटजाः) शीतलचीनी, नीम और कुटज=पत्थर-फूल के वृक्ष (अपि) भी (चन्दनाः) चन्दन-वृक्ष (स्युः) हो जाते हैं।

भावार्थ—उस सुवर्ण-पर्वत सुमेरु अथवा चाँदी के पर्वत कैलास का क्या लाभ जिनपर खड़े हुए वृक्ष वैसे के वैसे ही रह जाते हैं। हमारी दृष्टि में तो मलय पर्वत की ही महिमा है जिसका आश्रय लेने से कङ्कोल=शीतलचीनी, नीम तथा कुटज=पत्थर-फूल के वृक्ष भी चन्दन बन जाते हैं।

धैर्यपद्धतिः

रत्नैर्महाब्धेस्तुतुषुर्न देवा न भेजिरे भीमविषेण भीतिम्।
सुधां विना न प्रययुर्विरामं न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः ॥ 71 ॥

शब्दार्थ—(देवाः) देवगणों ने (महा+अब्धेः) महासागर से (रत्नैः) बहुमूल्य रत्नों को पाकर (न तुतुषुः) सन्तोष नहीं किया (भीम+विषेण) भयंकर विष से (भीतिम्) भय को (न भेजिरे) प्राप्त नहीं हुए, डरे नहीं, अपितु (सुधाम् विना) अमृत को पाये विना (विरामम्) विश्राम (न प्रययुः) नहीं लिया, सच है (धीराः) धीरजन (निश्चित+अर्थात्) ठाने हुए उद्देश्य को प्राप्त करके ही दम लेते हैं।

भावार्थ—देवजनों ने महासागर से बहुमूल्य रत्नों को प्राप्त करके सन्तोष नहीं किया और भयंकर विष प्राप्त करके भी वे भयभीत नहीं हुए। उन्होंने तब तक विश्राम नहीं लिया जब तक उन्हें अभीष्ट अमृत की प्राप्ति नहीं हुई। ठीक ही है, धीर लोग अभीष्ट वस्तु को प्राप्त किये विना विश्राम नहीं करते।

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः,
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति ॥ 72 ॥

शब्दार्थ—(नीचैः) अधम श्रेणी अथवा निकम्मे लोगों द्वारा (विघ्न+भयेन) कठिनाइयों के डर से [कोई नया कार्य] (न खलु प्रारभ्यते) आरम्भ ही नहीं किया जाता, (मध्याः) मध्यम श्रेणी के लोग (प्रारभ्य) कार्य को आरम्भ करके (विघ्नविहताः) विघ्नों से घबराकर (विरमन्ति)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बीच में छोड़ देते हैं (**च**) परन्तु (**उत्तमजनाः**) उत्तम श्रेणी के महामानव (**विघ्नैः**) बाधाओं से (**पुनः पुनः**) बार-बार (**प्रतिहन्यमानाः, अपि**) प्रताड़ित किये जाने पर भी (**प्रारभ्य**) आरम्भ किये हुए कार्य को (**न परित्यजन्ति**) पूरा किये विना नहीं छोड़ते।

भावार्थ—नीच=अधम श्रेणी के पुरुष विघ्नों के भय से किसी नये कार्य को आरम्भ ही नहीं करते। मध्यम श्रेणी के लोग कार्य को आरम्भ तो कर देते हैं परन्तु विघ्नों से विचलित होकर बीच में ही छोड़ देते हैं; परन्तु उत्तम श्रेणी के वीर पुङ्गव विघ्नों द्वारा बार-बार प्रताड़ित किये जाने पर भी प्रारम्भ किये हुए कार्य को पूर्ण किये विना नहीं छोड़ते।

विशेष—श्रेष्ठ पुरुषों की तो यह घोषणा होती है—

चोट पड़ने पै सीने उभर जाएँगे।

क्वचिद् भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनं,
क्वचिच्छाकाहारी क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः।
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो,
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्॥ 73॥

शब्दार्थ—(**क्वचित्**) कहीं (**भूमौ**) भूमि पर (**शय्या**) बिछौना है (**च**) और (**क्वचित्**) कहीं (**पर्यङ्क+शयनम् अपि**) पलंग पर भी शयन हो जाता है (**क्वचित् अपि**) कहीं तो, कभी तो (**शाकाहारी**) शाकपात खाकर निर्वाह होता है (**च**) और (**क्वचित्**) कभी (**शालि+ओदन+रुचिः**) शाली चावल के भात का आनन्द लूटते हैं (**क्वचित् अपि**) कभी तो (**कन्थाधारी**) गुदड़ी से शरीर ढक लेते हैं (**च**) और (**क्वचित्**) कभी (**दिव्य+अम्बरधरः**) मूल्यवान् सुन्दर वस्त्र धारण करते हैं, इस प्रकार (**कार्य+अर्थी**) कार्यसिद्धि पर दृष्टि रखनेवाले (**मनस्वी**) विचारशील मनुष्य (**न सुखम् गणयति**) न तो सुख की परवाह करते हैं और (**न दुःखम्**) न दुःख की।

भावार्थ—कार्य-सिद्धि पर दृष्टि रखनेवाले विचारशील एवं विवेकीजन सुख-दुःख की परवाह नहीं करते। वे अवसर-अनुसार कभी भूमि पर पड़ रहते हैं तो कभी सुन्दर शय्याओं पर शयन करते हैं, कभी शाकपात खाकर निर्वाह कर लेते हैं तो कभी शाली चावल के भात का आनन्द लूटते हैं, कभी गुदड़ी से शरीर को ढक लेते हैं तो कभी सुन्दर वस्त्र धारण करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ 74 ॥

शब्दार्थ—(**नीतिनिपुणाः**) नीति में निपुण लोग (**यदि**) चाहे (**निन्दन्तु**) निन्दा करें (**वा**) अथवा (**स्तुवन्तु**) स्तुति [प्रशंसा] करें (**लक्ष्मीः**) धन-ऐश्वर्य (**समाविशतु**) प्रभूत मात्रा में प्राप्त हो जाए (**वा**) अथवा (**यथा+इष्टम्**) जिधर इच्छा हो (**गच्छतु**) चला जाए (**वा**) अथवा (**अद्य+एव**) आज ही (**मरणम्**) मरण हो जाए (**वा**) अथवा (**युगान्तरे**) किसी दूसरे युग में हो, दीर्घकाल तक जीते रहें, किन्तु (**धीराः**) धीर पुरुष (**न्याय्यात्**) न्याय के (**पथः**) मार्ग से (**पदम्**) पग (**न प्रविचलन्ति**) कदापि पीछे नहीं हटाते।

भावार्थ—नीति में निपुण लोग चाहे निन्दा करें अथवा प्रशंसा, इच्छानुसार धन-ऐश्वर्य चाहे अपने पास आये अथवा अपने पास से चला जाए, आज ही मृत्यु हो जाए चाहे दीर्घकाल तक जीवित रहें किन्तु धीर पुरुष न्यायसङ्गत मार्ग से एक पग भी इधर-उधर नहीं हटते।

कान्ताकटाक्षविशिखा न दहन्ति यस्य,
चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुपातः।
कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशै-
र्लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः ॥ 75 ॥

शब्दार्थ—(**यस्य**) जिसके (**चित्तम्**) मन को (**कान्ता+कटाक्ष+विशिखा**) सुन्दरी रमणी के कटाक्षरूपी विषबुझे बाण (**न दहन्ति**) नहीं जलाते और (**कोप+कृशानु+तापः**) क्रोधरूपी आग की लपट [जिसके हृदय को] (**न निर्दहति**) नहीं जलाती (**च**) तथा (**भूरि+विषयाः**) रूप-रसादि नाना विषय (**लोभ+पाशैः**) कामना के फन्दों से जिसे (**न कर्षन्ति**) अपनी ओर आकर्षित नहीं करते—(**सः धीरः**) ऐसा धीर पुरुष (**इदम्**) इस (**कृत्स्नम्**) सम्पूर्ण (**लोकत्रयम्**) त्रिलोकी को (**जयति**) जीत लेता है।

भावार्थ—जिस पुरुष के चित्त [मन] को सुन्दरी रमणियों के कटाक्षों के विषबुझे बाण घायल नहीं करते और जिसके हृदय को क्रोधरूपी अग्नि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं जलाती, इन्द्रियों के रूप-रस आदि आकर्षक विषय जिसे अपनी ओर नहीं खींचते, ऐसा धीर पुरुष अकेला ही तीनों लोकों को जीत लेता है।

कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्तेर्न शक्यते धैर्यगुणाः प्रमार्ष्टुम्।
अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्नेर्नाधः शिखा याति कदाचिदेव ॥ 76 ॥

शब्दार्थ—(**कदर्थितस्य, अपि**) अपमानित किये जाने, आपत्तियों और विपत्तियों में फँसने पर भी (**धैर्यवृत्तेः**) धीर वृत्तिवाले पुरुष के (**धैर्यगुणाः**) धैर्यरूपी गुण को (**प्रमार्ष्टुम्**) हटाना, दूर करना (**हि**) निश्चित रूप से (**न शक्यते**) सम्भव नहीं है, जैसे (**वह्नेः**) अग्नि की (**शिखाः**) ज्वाला (**अधोमुखस्य**) नीचे की ओर (**कृतस्य, अपि**) किये जाने पर भी (**कदाचित्, एव**) कभी भी (**अधः**) नीचे की ओर (**न याति**) नहीं जाती [ऊपर को हो उठती है]।

भावार्थ—धीर पुरुष चाहे कैसा ही अपमानित किया जाए, चाहे आपत्ति और विपत्तियों में फँस जाए परन्तु वह अपने धैर्य को नहीं छोड़ता, जैसे जलती हुई अग्नि की ज्वाला को नीचे की ओर लटका देने पर भी वह सदा ऊपर की ओर ही जाती है।

वरं तुङ्गाच्छृङ्गाद् गुरुशिखरिणः क्वापि विषमे,
पतित्वायं कायः कठिनदृषदन्तर्विदलितः।
वरं न्यस्तो हस्तः फणिपतिमुखे तीक्ष्णदशने,
वरं वह्नौ पातस्तदपि न कृतः शीलविलयः ॥ 77 ॥

शब्दार्थ—(**अयम्**) यह (**कायः**) शरीर (**गुरुशिखरिणः**) बड़े पर्वत की (**तुङ्गात्**) ऊँची (**शृङ्गात्**) चोटी से (**क्वापि**) कहीं (**विषमे**) ऊबड़-खाबड़ (**कठिन+दृषत्**) कठोर पत्थर, कठोर चट्टान के (**अन्तः**) समीप (**पतित्वा**) गिरकर (**विदलितः**) चकनाचूर हो जाए (**वरम्**) यह अच्छा है (**फणिपति+मुखे**) नागराज के मुख में (**तीक्ष्णदशने**) तीखे दाँतों के बीच में (**हस्तः, न्यस्तः**) हाथ रख देना (**वरम्**) उत्तम है (**वह्नौ**) अग्नि में (**पातः**) कूद पड़ना (**वरम्**) श्रेष्ठ है (**तद्+अपि**) परन्तु (**शीलविलयः**) सुशील व्यवहार, सदाचार का त्याग (**कृतः**) किया जाना (**न**) अच्छा नहीं है।

भावार्थ—पर्वत के ऊँचे शिखर से किसी ऊबड़-खाबड़ चट्टान पर गिरकर शरीर को चकनाचूर कर देना उत्तम है, विषधर सर्प के मुख में हाथ डाल देना पड़े तो भी कोई बात नहीं, दहकती हुई अग्नि में कूद जाना बहुत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अच्छा है, परन्तु शील [मधुर व्यवहार] का त्याग करना अच्छा नहीं है अर्थात् शरीर भङ्ग हो जाए तो कोई बात नहीं, शील भङ्ग नहीं होना चाहिए।

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणान्,
मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते।
व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते,
यस्याङ्गेऽखिललोकवल्लभतमं शीलं समुन्मीलति॥ 78॥

शब्दार्थ—(**यस्य**) जिस मनुष्य के (**अङ्गे**) शरीर में (**अखिल+लोक+वल्लभतमम्**) सारे मनुष्यों का अभीष्टतम (**शीलम्**) शील=सदाचार (**सम्+उन्मीलति**) पूर्ण रूप से प्रकाशता है (**तस्य**) उसके लिए (**वह्निः**) धधकती हुई अग्नि (**जलायते**) जल के समान शीतल हो जाती है (**जलनिधिः**) समुद्र (**कुल्यायते**) एक छोटी सी बावड़ी बन जाता है (**मेरुः**) सब से ऊँचा मेरु पर्वत (**तत्क्षणात्**) उसी क्षण, एकदम (**स्वल्प**) छोटा सा (**शिलायते**) पत्थर बन जाता है (**मृगपतिः**) सिंह (**सद्यः**) तुरन्त (**कुरङ्गायते**) पालतू हिरण जैसा बन जाता है (**व्यालः**) सर्प (**माल्य-गुणायते**) पुष्पमाला का डोरा बन जाता है और (**विषरसः**) विष का रस (**पीयूषवर्षायते**) अमृत बरसाता है।

भावार्थ—सारे मनुष्यों का अभीष्टतम [प्रियतम] शील=स्वभाव में माधुर्य जिस पुरुष के जीवन में विद्यमान है उसके लिए धधकती हुई अग्नि जल के समान शीतल हो जाती है, समुद्र एक छोटी-सी बावड़ी के रूप में परिणत हो जाता है, सुमेरु पर्वत तत्काल एक छोटे-से पत्थर के टुकड़े के समान बन जाता है, सिंह उसके समक्ष एक पालतू हिरन जैसा बन जाता है, भयंकर साँप पुष्पहार की डोरी के सदृश बन जाता है और विषय अमृत हो जाता है।

छिन्नोऽपि रोहति तरुः क्षीणोप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः।
इति विमृशन्तः सन्तः सन्तप्यन्ते न दुःखेषु॥ 79॥[1]

1. इस श्लोक के पश्चात् अनेक संस्करणों में निम्न श्लोक भी उपलब्ध होता है—

पतितोऽपि कराघातैरुत्पतत्येव कन्दुकः।
प्रायेण साधुवृत्तानामस्थायिन्यो विपत्तयः॥

हाथों के आघात से ताड़ित होकर पृथिवी पर गिरा हुआ गेंद ऊपर को उठता ही है, इसी प्रकार साधुजनों=श्रेष्ठ पुरुषों की विपत्तियाँ भी सदा समान नहीं रहतीं, वे भी आपत्तियों से जूझकर ऊपर उठते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—(**तरुः**) वृक्ष (**छिन्नः, अपि**) कट जाने पर भी (**पुनः**) फिर से (**रोहति**) अंकुरित हो जाता है, फूट जाता है (**चन्द्रः**) चन्द्रमा (**क्षीणः, अपि**) घटने पर भी (**पुनः**) फिर (**उपचीयते**) बढ़ जाता है (**इति**) ऐसा (**विमृशन्तः**) विचार करनेवाले (**सन्तः**) सत्पुरुष (**लोके**) संसार में (**दुःखेषु**) दुःखों में, दुःख आ पड़ने पर (**न सन्तप्यन्ते**) दुःखी नहीं होते।

भावार्थ—कट जाने पर भी वृक्ष समय पाकर फिर अंकुरित होता है, क्षीण होने पर भी चन्द्रमा पुनः बढ़ता है, इसी प्रकार विचारशील सज्जन विपत्ति पड़ने पर दुःखी नहीं होते।

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो,
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः।
अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता,
सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम्॥ 80॥

शब्दार्थ—(**ऐश्वर्यस्य**) समृद्धि=खुशहाली की (**विभूषणम्**) शोभा (**सुजनता**) सज्जनता है (**शौर्यस्य**) शूरवीरता की शोभा (**वाक्संयमः**) वाणी का संयम [कम बोलना, डींग न हाँकना] है, (**ज्ञानस्य**) ज्ञान की शोभा (**उपशमः**) शान्ति है, (**श्रुतस्य**) पाण्डित्य, ज्ञान, विद्या की शोभा (**विनयः**) नम्रता है (**वित्तस्य**) धन की शोभा (**पात्रे**) सुपात्र पर (**व्ययः**) खर्च करने, दान देने में है (**तपसः**) तप की शोभा (**अक्रोधः**) क्रोध न करना है (**प्रभवितुः**) सामर्थ्य की, प्रभुता की शोभा (**क्षमा**) क्षमा प्रदान में है (**धर्मस्य**) धर्म की शोभा (**निर्व्याजता**) निश्छल व्यवहार में है परन्तु (**सर्वकारणम्**) इन सब का मूल (**इदम् शीलम्**) यह स्वभाव का माधुर्य (**सर्वेषाम्, अपि**) इन सब से भी (**परम्, भूषणम्**) उत्तम आभूषण है।

भावार्थ—समृद्धि=खुशहाली की शोभा सज्जनता, शूरवीरता की शोभा वाक्संयम [बढ़-चढ़कर बातें न करना], ज्ञान की शोभा शान्ति, विद्या की शोभा नम्रता, धन की शोभा सुपात्र में दान, तप की शोभा क्रोध न करना, प्रभुता की शोभा क्षमाशीलता और धर्म का भूषण निश्छल व्यवहार है परन्तु इन सब का कारणरूप शील=मधुर स्वभाव सर्वश्रेष्ठ आभूषण है।

दैवपद्धतिः

नेता यस्य बृहस्पतिः प्रहरणं वज्रं सुराः सैनिकाः,
स्वर्गो दुर्गमनुग्रहः खलु हरेरैरावतो वाहनम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इत्यैश्वर्यबलान्वितोऽपि बलभिद् भग्नः परैः सङ्गरे,
तद् व्यक्तं ननु दैवमेव शरणं धिग्धिग्वृथा पौरुषम्॥ 81॥

शब्दार्थ—(**बृहस्पतिः**) देवगुरु बृहस्पति (**यस्य**) जिसका (**नेता**) मार्गदर्शक है, (**वज्रम्**) वज्र जिसका (**प्रहरणम्**) हथियार, अस्त्र है, (**सुराः**) अमर देवगण (**सैनिकाः**) जिसके सैनिक हैं (**स्वर्गलोकः**) स्वर्गलोक जिसका (**दुर्गः**) दुर्ग=किला है (**हरेः खलु**) भगवान् विष्णु का जिस पर पूर्ण (**अनुग्रहः**) कृपा है, (**वाहनम्**) जिस का वाहन=सवारी (**ऐरावतः**) ऐरावत हाथी है (**इति**) इतने (**ऐश्वर्य+बलान्वितः**) ऐश्वर्य और बल से युक्त (**अपि**) भी (**बलभित्**) इन्द्र (**सङ्गरे**) युद्ध में (**परैः**) शत्रुओं, दानवों द्वारा (**भग्नः**) पराजित हो गया, (**तत् व्यक्तम्**) इससे यह स्पष्ट है कि (**दैवम् एव**) भाग्य का ही (**शरणम्**) आश्रय सहारा उत्तम है (**पौरुषम्**) पुरुषार्थ (**वृथा**) व्यर्थ है और उसे (**धिक् धिक्**) बारम्बार धिक्कार है!

भावार्थ—स्वयं देवगुरु बृहस्पति जिसके पथ-प्रदर्शक अथवा मन्त्री हैं, वज्र जिसका अस्त्र है, देवगण जिसके सैनिक हैं, स्वर्गलोक जिसका दुर्ग=किला है, विष्णु का जिस पर अनुग्रह है, सवारी के लिए ऐरावत हाथी है, जिसका इतना ऐश्वर्य और बल था वह इन्द्र भी युद्ध में शत्रुओं से परास्त हो गया। इससे यह स्पष्ट है कि भाग्य का सहारा ही उत्तम है, पुरुषार्थ व्यर्थ है और उसे बार-बार धिक्कार है।

विशेष—यह श्लोक चिन्त्य है, क्योंकि ये विचार युक्तिसंगत नहीं हैं। पुरुषार्थ के फल का नाम ही भाग्य है। पुरुषार्थ ही उत्तम है। इस विषय में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने कितना सुन्दर लिखा है—

"पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा इसलिए है कि जिससे सञ्चित प्रारब्ध बनते, जिसके सुधारने से सब सुधरते और जिसके बिगाड़ने से सब बिगड़ते हैं, इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है।" —स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश

भग्नाशस्य करण्डपीडिततनोर्म्लानेन्द्रियस्य क्षुधा,
कृत्वाऽऽखुर्विवरं स्वयं निपतितो नक्तं मुखे भोगिनः।
तृप्तस्तत्पिशितेन सत्वरमसौ तेनैव यातः पथा,
स्वस्थास्तिष्ठत दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम्॥ 82॥

शब्दार्थ—(**करण्ड+पीडित+तनोः**) टोकरी=पिटारे में बन्द होने के कारण दुःखी शरीरवाले, (**क्षुधा**) भूख के मारे (**म्लान+इन्द्रियस्य**) मुरझाये हुए अङ्ग-प्रत्यङ्गवाले, (**भग्न+आशस्य**) आस छूटे हुए, जीवन से निराश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(भोगिनः) साँप के (मुखे) मुँह में (नक्तम्) रात्रि में (आखुः) चूहा (विवरम्) छेद (कृत्वा) करके (स्वयमेव) अपने-आप (निपतितः) जा पड़ा (असौ) वह भूखा साँप (तत् पिशितेन) उसी चूहे के मांस से (तृप्तः) पेट भरकर (तेन, एव) उसी मार्ग से (सत्वरम्) तुरन्त (यातः) बाहर निकल गया, अतः हे मनुष्यो! (स्वस्थाः तिष्ठत) स्वस्थ बैठे रहो, निश्चित रहो, (हि) क्योंकि (दैवम् एव) भाग्य ही (नृणाम्) मनुष्यों की (वृद्धौ) उन्नति में (क्षये) अवनति में (कारणम्) प्रधान कारण है।

भावार्थ—टोकरी में बन्द होने के कारण दुःखी, भूख से व्याकुल और जीवन से निराश साँप के पिटारे में रात को चूहा छेद करके घुस गया। भूखा साँप उसके मांस से तृप्त होकर उसी मार्ग से बाहर निकल गया। हे मनुष्यो! निश्चिन्त रहो, भाग्य ही मनुष्यों की उन्नति और अवनति का कारण है।

अयममृतनिधानं नायकोऽप्योषधीनां,
शतभिषगनुयातः शम्भुमूर्ध्नोऽवतंसः।
विरहयति न चैनं राजयक्ष्मा शशाङ्कम्,
हतविधिपरिपाकः केन वा लङ्घनीयः॥ 83॥

शब्दार्थ—(अयम्) यह [चन्द्रमा] (अमृतनिधानम्) अमृत की खान है (ओषधीनाम्, अपि नायकः) संजीवनी आदि ओषधियों का भी अधिपति है (शतभिषक्+अनुयातः) सैकड़ों वैद्यराज इसके साथ चलते हैं (शम्भु+मूर्ध्नः) शिव जी के माथे पर (अवतंसः) आभूषणरूप है (एनम् च शशाङ्कम्) ऐसे महान् चन्द्रमा को भी (राजयक्ष्मा) क्षयरोग (न विरहयति) नहीं छोड़ता है (वा) अथवा, ठीक है (हत+विधि+परिपाकः) नष्टभाग्य, दुर्विधाता ब्रह्मा के पक्के किये, लिखे हुए भाग्य को (केन लङ्घनीयः) क्या किसी से टाला जा सकता है?

भावार्थ—चन्द्रमा अमृत का भण्डार है, अनेक प्रकार की ओषधियों का स्वामी है। तारों के रूप में सैकड़ों—अरबों-खरबों वैद्यराज इसके साथ चलते हैं। शिव जी के मस्तक का यह आभूषण है। ऐसा चन्द्रमा भी सदा क्षय रोग से पीड़ित रहता है। ठीक ही है, दुर्विधाता ब्रह्मा ने जो भाग्य में लिख रखा है, उसे कौन टाल सकता है!

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः सन्तापिते मस्तके,
वाञ्छन्देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः,
प्रायो गच्छति यत्र दैवहतकस्तत्रैव यान्त्यापदः ॥ 84 ॥

शब्दार्थ—(**खल्वाटः**) कोई गंजा (**दिवस+ईश्वरस्य**) दिन के स्वामी सूर्य की (**किरणैः**) किरणों से (**मस्तके सन्तापिते**) मस्तक के तपने पर (**अन्+आतपम्**) धूपरहित, छायावाले (**देशम्**) स्थान को (**वाञ्छन्**) चाहता हुआ (**विधिवशात्**) भाग्यवश (**तालस्य**) ताल वृक्ष के (**मूलम्**) तने के नीचे (**गतः**) पहुँचा। (**तत्र+अपि**) वहाँ भी (**पतता**) ऊपर से गिरते हुए (**महाफलेन**) भारी फल से (**अस्य**) इस गंजे का (**शिरः**) सिर (**सशब्दम्**) जोर की आवाज से, तड़ाक से (**भग्नम्**) फट गया। ठीक है (**दैवहतकः**) भाग्य का मारा मनुष्य (**यत्र गच्छति**) जहाँ जाता है (**तत्र**) वहीं (**आपदः, एव**) विपत्तियाँ भी (**प्रायः**) प्रायः, अक्सर (**यान्ति**) पहुँच जाती हैं।

भावार्थ—सिर पर पड़नेवाली सूर्य की किरणों से सन्तप्त होकर कोई गंजा व्यक्ति छाया का स्थान खोजता हुआ भाग्यवश ताड़ के वृक्ष के नीचे जा पहुँचा। वहाँ भी एक बहुत बड़ा फल धड़ाम से उसके सिर के ऊपर गिर पड़ा और उसका सिर फट गया। ठीक है, प्रायः भाग्यहीन मनुष्य जहाँ भी जाता है, विपत्तियाँ भी वहीं पहुँच जाती हैं।

[1]गज भुजङ्ग-विहङ्गम-बन्धनं,
शशि-दिवाकरयोर्ग्रह-पीडनम्।
मतिमतां च विलोक्य दरिद्रतां,
विधिरहो बलवानिति मे मतिः ॥ 85 ॥

शब्दार्थ—(**गज+भुजङ्ग+विहङ्गम+बन्धनम्**) हाथी, नागराज [सर्प] और पक्षियों को बन्धन में पड़ा देखकर (**शशि+दिवाकरयोः**) चन्द्रमा और सूर्य को (**ग्रहपीडनम्**) राहु और केतु ग्रहों से ग्रसित देखकर (**च**) और (**मतिमताम्**) बुद्धिमानों की (**दरिद्रताम्**) दरिद्रता को (**विलोक्य**) देखकर (**मे**) मेरी (**इति मतिः**) यही राय बनती है कि (**अहो**) अहो! (**विधिः**) भाग्य ही (**बलवान्**) बलवान् है।

भावार्थ—महाबलशाली गजराजों, विषधर सर्पों और उन्मुक्त पक्षियों

---

1. कुछ प्रतियों में यह द्वितीय चरण है। वहाँ श्लोक का आरम्भ 'शशिदि०' इस चरण से होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को बन्धन में पड़ा देखकर, चन्द्रमा और सूर्य को राहु और केतु द्वारा ग्रसा हुआ देखकर तथा बुद्धिमानों की दरिद्रता को देखकर मेरा यही विचार होता है कि भाग्य ही बलवान् है।

सृजति तावद् अशेषगुणाकरं,
पुरुषरत्नम् अलङ्करणं भुवः।
तदपि तत्क्षणभङ्गि करोति चेत्,
अहह कष्टमपण्डितता विधेः ॥ 86 ॥[1]

शब्दार्थ—(**अहह**) अहो! (**कष्टम्**) बड़े दुःख की बात है (**विधेः**) जगत्स्रष्टा ब्रह्मा की (**अपण्डितता चेत्**) कैसी मूर्खता है कि (**तावत्**) यद्यपि वह (**अशेष+गुण+आकरम्**) सम्पूर्ण गुणों के समूह और (**भुवः**) पृथिवी के (**अलङ्करणम्**) आभूषण (**पुरुषरत्नम्**) श्रेष्ठ मानव को (**सृजति**) रचता है (**तद्+अपि**) फिर भी (**क्षणभङ्गि**) क्षणभंगुर, क्षणभर में नष्ट होनेवाला (**करोति**) बनाता है।

भावार्थ—अहो! बड़े दुःख की बात है। यह जगत्-स्रष्टा की कैसी मूर्खता है कि वह मनुष्य को सर्वगुणसम्पन्न और सारे संसार का आभूषण बनाता है परन्तु उसके जीवन को स्थायी न बनाकर क्षण-भंगुर बनाता है।

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किम्,
नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्।
धारा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणं,
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ॥ 87 ॥

शब्दार्थ—(**यदा**) जब, यदि (**करीर+विटपे**) करीर के वृक्ष पर (**पत्रम्**) पत्ते (**न, एव**) नहीं [उगते तो इसमें] (**वसन्तस्य**) वसन्तऋतु का (**कः दोषः**) क्या दोष है, (**यदि**) यदि (**दिवा**) दिन में (**अपि**) भी (**उलूकः**) उल्लू (**न, अवलोकते**) नहीं देखता, नहीं देख पाता तो इसमें

---

1. कुछ संस्करणों में इस श्लोक के पश्चात् निम्न श्लोक भी उपलब्ध होता है—

येनैवाम्बरखण्डेन संवीतो निशि चन्द्रमाः।
तेनैव च दिवा भानुरहो दौर्गत्यमेतयोः ॥

जिस एक आकाशरूपी वस्त्र को ओढ़कर चन्द्रमा रात्रि व्यतीत करता है, उसी वस्त्र को धारण कर भगवान् भास्कर दिन काटते हैं। अहो! बेचारे ये सूर्य और चन्द्रमा कैसी घोर दरिद्रता के शिकार बने हुए हैं!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(सूर्यस्य) सूर्य का (किम् दूषणम्) क्या अपराध, यदि (चातक+मुखे) चातक=पपीहा के मुख में (धाराः) वर्षा की बूँदें (न, एव, पतन्ति) नहीं गिरतीं तो इसमें (मेघस्य) बादल का (किम् दूषणम्) क्या दोष ? (विधिना) जगत्स्रष्टा ब्रह्मा ने (पूर्वम्) पूर्व से ही (यत्) जो कुछ (ललाट+लिखितम्) भाग्य में लिख दिया है, (तत्) उसे (मार्जितुम्) मिटाने में (कः क्षमः) कौन समर्थ है कोई भी नहीं।

भावार्थ—यदि वसन्तऋतु आने पर भी करीर के वृक्ष पर पत्ते नहीं फूटते तो इसमें वसन्तऋतु का क्या दोष ? यदि उल्लू को दिन में दिखाई नहीं देता तो इसमें सूर्य का क्या अपराध ? यदि चातक के मुख में वर्षा की बूँदें नहीं पड़तीं तो इसमें बादल का क्या दोष ? जगन्निर्माता ब्रह्मा ने जिसके भाग्य में जो लिख दिया है, उसे कौन मिटा सकता है !

प्रियसखे विपद्दण्डाघातप्रपातपरम्परा-
परिचयबले चिन्ताचक्रे निधाय विधिः खलः।
मृदमिव बलात्पिण्डीकृत्य प्रगल्भकुलालवद्,
भ्रमयति मनो नो जानीमः किमत्र विधास्यति॥ 88॥

शब्दार्थ—(प्रियसखे) हे प्रिय मित्र! (खलः विधिः) दुष्ट दैव (प्रगल्भ+कुलालवत्) निपुण कुम्हार की भाँति (मनः) हमारे मन को (मृदम् इव) मिट्टी की भाँति (बलात्) जबरदस्ती, पूरी शक्ति से (पिण्डीकृत्य) दलमलकर उसका लौंदा बनाकर (विपत्+दण्ड+आघात+प्रपात+परम्परा+परिचयबले) विपत्ति के डण्डों की मार से लगातार प्रहार करते हुए अभ्यस्त हाथों से (चिन्ता+चक्रे निधाय) चिन्तारूपी चाक पर धरकर (भ्रमयति) घुमा रहा है, (अत्र) इसमें, इसका (किम्) क्या (विधास्यति) बनाएगा (न जानीमः) हमें पता नहीं।

भावार्थ—हे प्रिय मित्र! कुम्हार जिस प्रकार गीली मिट्टी के लौंदे को चाक पर चढ़ाकर चाक को डण्डे से बार-बार घुमाता है और उससे अपनी इच्छानुसार बर्तन बनाता है, इसी प्रकार दुष्ट दैव=भाग्य हमारे चित्त को चिन्ता के चाक पर चढ़ाकर, चाक को विपत्तियों के डण्डे से बार-बार लगातार घुमाता हुआ हमारा क्या करना चाहता है—यह हमारी समझ में नहीं आता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विरम विरमायासादस्माद् दुरध्यवसायतो,
विपदि महतां धैर्यध्वंसं यदीक्षितुमीहसे।
अयि जडविधे कल्पापाये व्यपेतनिजक्रमाः,
कुलशिखरिणः क्षुद्रा चैते न वा जलराशयः ॥ 89 ॥

शब्दार्थ—(अयि जडविधेः) हे मूर्ख दैव! (यदि) यदि तू (विपदि) विपत्ति में (महताम्) महापुरुषों के (धैर्यध्वंसम्) धैर्य को टूटा हुआ (ईक्षितुम् ईहसे) देखना चाहता है तो (अस्मात्) अपनी इस (दुः, अध्यवसायतः) बुरी नियति के (आयासात्) प्रयास से (विरम, विरम) बाज़ आ, रुक जा। (एते) ये महापुरुष (कल्पापाये) कल्पान्त, प्रलयकाल में (व्यपेत+निजक्रमाः) अपने नियत क्रम को छोड़ देनेवाले (क्षुद्रा) तुच्छ (कुलशिखरिणः) कुलपर्वत (वा) अथवा (जलराशयः) समुद्र (न) नहीं हैं।

भावार्थ—अरे मूर्ख दैव! महापुरुष कुलपर्वत या सप्त समुद्रों के समान तुच्छ नहीं हैं जो तेरे प्रलय मचाने पर डोल या सूख जाते हैं। विपदाएँ ढाकर तू इन महात्माओं को उनके लक्ष्य से डिगाने के दुस्साहस से बाज़ आ जा। उन्हें अपने लक्ष्य से विचलित करना असम्भव है।

दैवेन प्रभुणा स्वयं जगति यद्यस्य प्रमाणीकृतं,
तत्तस्योपनमेन्मनागपि महान्नैवाश्रयः कारणम्।
सर्वाशापरिपूरके जलधरे वर्षत्यपि प्रत्यहं,
सूक्ष्मा एव पतन्ति चातकमुखे द्वित्राः पयोविन्दवः ॥ 90 ॥

शब्दार्थ—(प्रभुणा, दैवेन) सर्वशक्तिमान् भगवान् द्वारा (जगति) संसार में (यत्) जो, जितना (यस्य) जिसके लिए (प्रमाणीकृतम्) निर्धारित कर दिया (तत्) वह (तस्य) उसे (स्वयम्) अपने-आप (उपनमेत्) प्राप्त हो जाएगा, उसके लिए (महान् आश्रयः) किसी बड़ी सहायता, सिफारिश की (मनाक्+अपि) थोड़ी-सी भी (कारणम् न एव) आवश्यकता नहीं है, क्योंकि (सर्व+आशा+परिपूरके) सभी दिशाओं में भरे हुए (जलधरे) बादल के (प्रति+अहम्) प्रतिदिन (वर्षति अपि) बरसने पर भी (चातक+मुखे) चातक के मुख में (सूक्ष्माः) अत्यन्त सूक्ष्म (द्वित्राः) दो-तीन (पयः, विन्दवः) पानी की बूँदें ही (पतन्ति) पड़ती हैं।

भावार्थ—सर्वशक्तिमान् परमात्मा ने सब का भाग्य पहले ही बना रखा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है और जो जिसके भाग्य में लिखा है, वह उसे अवश्य मिलेगा। उसके लिए किसी बड़ी सिफारिश की आवश्यकता नहीं है। उदाहरण के रूप में चातक पक्षी को देखिए। घनघोर वर्षा के बीच दिन-रात मुँह खोले हुए बैठे रहने पर भी उसके मुख में वर्षा की छोटी-छोटी दो चार बूँदें ही पड़ पाती हैं।

कर्मपद्धतिः

नमस्यामो देवान्ननु हतविधेस्तेऽपि वशगा,
विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः।
फलं कर्मायत्तं किममरगणैः किञ्च विधिना,
नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति॥ 91॥

शब्दार्थ—हम (**देवान्**) देवों को (**नमस्यामः**) नमस्कार करते हैं (**ननु**) परन्तु (**ते अपि**) वे भी तो (**हतविधेः**) दुष्ट दैव के (**वशगाः**) वश में हैं (**विधिः वन्द्यः**) दैव वन्दनीय है, हम उसे नमस्कार करते हैं परन्तु (**सः अपि**) वह दैव भी तो (**प्रतिनियत+कर्म+एक+फलदः**) निर्धारित कर्म ही का फल देनेवाला है, (**फलम्**) फल, भाग्य (**कर्म+आयत्तम्**) कर्म के अधीन है, अतः (**अमरगणैः**) देवताओं से (**च विधिना**) और ब्रह्मा से (**किम्**) क्या प्रयोजन ? (**विधिः, अपि**) ब्रह्मा भी (**येभ्यः**) जिन कर्मों से (**न, प्रभवति**) प्रभावित हुए विना नहीं रहता (**तत्**) उन (**कर्मभ्यः**) कर्म को (**नमः**) प्रणाम है।

भावार्थ—हम बड़ा समझकर देवों को नमस्कार करते हैं परन्तु वे देव भी तो दुष्ट विधाता के वश में हैं। अच्छा तो फिर हम उस विधाता की वन्दना करते हैं परन्तु वह भी तो कर्मानुसार ही फल देनेवाला है। जब फल कर्मानुसार ही मिलना है तब देवों और विधाता से क्या प्रयोजन ? फिर तो कर्मों को ही नमस्कार है, जिन पर विधि का भी वश नहीं चलता।

विशेष—जो लोग पापों के फल को शमन करने की दृष्टि से भगवान् का नाम लेते हैं या उसकी उपासना करते हैं, वे भूल में हैं। कर्मों का फल तो भोगना ही पड़ेगा। उपासना से कर्मफल का क्षय नहीं होता; उसका फल तो कुछ और ही है।

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे,
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः,
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे॥ 92॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—(**येन**) जिस [कर्म] ने (**ब्रह्मा**) ब्रह्मा को (**ब्रह्माण्ड+भाण्ड+उदरे**) ब्रह्माण्डरूपी घड़े के पेट के भीतर (**कुलालवत्**) कुम्हार की भाँति (**नियमितः**) [जगत् रचने के लिए] नियुक्त कर दिया, (**येन**) जिस कर्म-व्यवस्था ने (**विष्णुः**) विष्णु को (**दश+अवतार+गहने**) अत्यन्त दुःखदायक [मत्स्य, कच्छपादि] दस अवतार धारणरूपी (**महासङ्कटे**) घोर कष्ट में (**क्षिप्तः**) फेंक दिया, (**येन**) जिसके कारण (**रुद्रः**) महादेव शिव (**कपाल+पाणि+पुटके**) खोपड़ी का खप्पर हाथ में लेकर (**भिक्षा+अटनम्, कारितः**) भीख माँगता फिरता है और (**सूर्यः**) सूर्य (**नित्यम् एव**) सदा ही (**गगने**) आकाश में (**भ्राम्यति**) चक्कर काटता है (**तस्मै कर्मणे**) उस कर्म को (**नमः**) नमस्कार है।

भावार्थ—कर्म ने ब्रह्मा को ब्रह्माण्ड के भीतर जगत् रचने के लिए कुम्हार बनाकर बैठा रखा है, कर्म ने ही विष्णु भगवान् को [मत्स्य-कूर्मादि] दस अवतारों का जन्म लेने के घोर संकट में फँसा रखा है, कर्म ही शिव जी को कपाल=खोपड़ी का खप्पर हाथ में दे कर दिन-रात आकाश में चक्कर कटा रहा है। उस कर्म के लिए हमारा नमस्कार है।

विशेष—यह श्लोक पौराणिक कल्पनाओं से पूरित है। अवतारवाद वेदविरुद्ध है। शिव जी का भीख माँगना भी गपोड़ा है।

ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—ये सब एक ही परमात्मा के नाम हैं। सृष्टि उत्पत्ति करने के कारण वह ब्रह्मा है, सृष्टि का पालन करने के कारण वह विष्णु है और सृष्टि का संहार करने के कारण वह रुद्र है। अवतारवाद की कल्पना अवैदिक है। ईश्वर अवतार कभी नहीं लेता। अवतार का अर्थ है उतरना। जो कभी चढ़ा ही नहीं उसका अवतरण कैसा? जो सर्वव्यापक है वह सिमटकर छोटे-से गर्भाशय में कैसे आ सकता है!

या साधूँश्च खलान्करोति विदुषो मूर्खान्हितान्द्वेषिणः,
प्रत्यक्षं कुरुते परोक्षममृतं हालाहलं तत्क्षणात्।
तामाराधय सत्क्रियां भगवतीं भोक्तुं फलं वाञ्छितं,
हे साधो व्यसनैर्गुणेषु विपुलेष्वास्थां वृथा मा कृथाः ॥ 93 ॥

शब्दार्थ—(**हे साधो**) हे सज्जन! यदि (**वाञ्छितम्**) मनोवाञ्छित (**फलम्**) फल को (**भोक्तुम्**) भोगने के लिए (**भगवतीम्**) सब के द्वारा सम्मानित (**ताम्**) उस (**सत्+क्रियाम्**) सत्कर्मरूपी देवी की (**आराधय**) पूजा करो जो (**तत्क्षणात्**) तुरन्त (**खलान्**) दुष्टों को (**साधून्**) सज्जन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(**करोति**) बना देती है (**मूर्खान्**) मूर्खों को (**विदुषः**) विद्वान् (**च**) और (**द्वेषिणः**) शत्रुओं को (**हितान्**) मित्र बना देती है, जो (**परोक्षम्**) दृष्टि से ओझल, समझ से बाहर को (**प्रत्यक्षम्**) प्रत्यक्ष, सामने, स्पष्ट (**कुरुते**) कर देती है और (**हालाहलम्**) कालकूट विष को (**अमृतम्**) अमृत में परिवर्तित कर देती है, अतः तू (**विपुलेषु**) बहुत सारे (**गुणेषु**) गुणों के उपार्जनरूपी (**व्यसनैः**) व्यर्थ उद्योग में (**वृथा**) व्यर्थ (**आस्थाम्**) आसक्ति (**मा कृथाः**) मत कर।

भावार्थ—हे सज्जन! यदि तुझे मनोवाञ्छित फल भोगने की इच्छा है तो सब के द्वारा सम्मानित उस सत्कर्म का अनुष्ठान करो जो दुष्टों को सज्जन, मूर्खों को विद्वान्, शत्रुओं को मित्र, गुप्त वस्तुओं को प्रकट और विष को तत्काल अमृत बना देता है। बहुत से गुणों के उपार्जन का व्यर्थ उद्योग न करके तुम केवल सुकर्म ही करो।

शुभ्रं सद्म सविभ्रमा युवतयः श्वेतातपपत्रोज्ज्वला,
लक्ष्मीरित्यनुभूयते स्थिरमनुसूयते शुभे कर्मणि।
विच्छिन्ने नितरामनङ्गकलहक्रीडात्रुटत्तन्तुकं,
मुक्ताजालमिव प्रयाति झटिति भ्रश्यद्दिशोऽदृश्यताम्॥ 94॥

शब्दार्थ—(**स्थिरम्**) स्थिर रहकर, विना डगमगाये (**शुभे कर्मणि**) शुभ कर्मों के (**अनुसूयते**) अनुसरण, अनुष्ठान करने पर (**शुभ्रम्, सद्म**) सफेद भवन, अत्यन्त शोभायमान राजप्रासाद, (**सविभ्रमाः युवतयः**) लुभावनी चितवनवाली सुन्दरी स्त्रियाँ (**श्वेत+आतपपत्र-**) सफेद छत्र (**उज्ज्वला लक्ष्मीः**) प्रकाशमान लक्ष्मी—(**इति, अनुभूयते**) ये सब भोगे जाते हैं, परन्तु (**विच्छिन्ने**) शुभ कर्मों का ताँता टूटने पर [ये सारे राग-रंग ऐसे तितर-बितर हो जाते हैं] (**इव**) जैसे (**नितराम्**) निरन्तर चलनेवाली (**अनङ्ग+कलह+क्रीडा+त्रुटत्**) कामभोग की क्रीड़ा में टूटे हुए (**तन्तुकम्**) धागेवाली (**मुक्ता+जालम्**) मोतियों की झालर (**झटिति**) झट से (**दिशः**) चारों ओर (**भ्रश्यत्**) बिखरकर (**अदृश्यताम्, प्रयाति**) ओझल हो जाती है।

भावार्थ—सदा धर्म में स्थिर रहकर शुभकर्मों का आचरण करते रहने पर ही मनुष्य भव्य राजप्रासाद, लुभावनी चितवनवाली स्त्रियों, राजछत्र और वैभवपूर्ण राजलक्ष्मी का उपभोग कर सकता है। जहाँ सत्कर्मों का ताँता टूटा वहीं ये सारे वैभव ऐसे तितर-बितर हो जाते हैं जैसे उद्रेकपूर्ण सम्भोग के अवसर पर प्रेयसी के गले की माला के धागे के टूटने पर सारे मोती इधर-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उधर बिखर जाते हैं।

गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ,
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ॥ 95 ॥

शब्दार्थ—(**कार्यम् कुर्वता**) किसी कार्य को करनेवाले (**पण्डितेन**) बुद्धिमान् द्वारा (**आदौ**) कार्य आरम्भ करने से पहले ही उसके (**गुणवत्**) भले और (**अगुणवत्**) बुरे (**परिणतिः**) परिणाम पर (**यत्नतः**) यत्नपूर्वक (**अव+धार्या**) विचार कर लेना चाहिए, क्योंकि (**अतिरभस+कृतानाम्**) घबराहट में, शीघ्रता से किये हुए (**कर्मणाम्**) बुरे कर्मों का (**विपाकः**) निकृष्ट फल (**आविपत्तेः**) जीवनभर, मरने के (**हृदयदाही**) दिल दुःखानेवाला और (**शल्य+तुल्यः**) काँटे के समान चुभनेवाला (**भवति**) होता है।

भावार्थ—बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि अच्छा या बुरा कोई भी कार्य करने से पूर्व उसके परिणाम पर विचार करे, क्योंकि विना विचारे शीघ्रता से किये हुए बुरे कार्यों का निकृष्ट फल जीवनभर हृदय को जलाता और काँटे की भाँति चुभता रहता है।

स्थाल्यां वैदूर्यमय्यां पचति च लशुनं चान्दनैरिन्धनाद्यैः,
सौवर्णैर्लाङ्गलाग्रैर्विलिखति वसुधामर्कतूलस्य हेतोः।
छित्त्वा कर्पूरखण्डान्वृतिरिह कुरुते कोद्रवाणां समन्तात्,
प्राप्येमां कर्मभूमिं न चरति मनुजो यस्तपो मन्दभाग्यः ॥ 96 ॥

शब्दार्थ—(**यः**) जो (**मनुजः**) मनुष्य (**इमाम्**) इस (**कर्मभूमिम्**) मानवशरीर अथवा मृत्युलोक को (**प्राप्य**) प्राप्त होकर (**तपः**) तपस्या (**न चरति**) नहीं करता ऐसा (**मन्दभाग्यः**) अभागा मनुष्य (**इह**) इस संसार में (**वैदूर्यमय्याम्**) हीरे-जवाहरातों से जड़ी (**स्थाल्याम्**) बटलोई, पतीली, देगची में (**चान्दनैः इन्धन+आद्यैः**) चन्दन आदि की लकड़ियों से (**लशुनम्**) लहसुन (**च**) मांस, मछली आदि (**पचति**) पकाता है, (**सौवर्णैः, लाङ्गल+अग्रैः**) सोने के बने हल की नोक [फाल] से (**अर्क+तूलस्य हेतोः**) मदार की रुई की प्राप्ति के लिए (**वसुधाम्**) धरती को (**विलिखति**) जोतता है और (**कर्पूरखण्डान्**) कपूर के पेड़ों के तनों को (**छित्त्वा**) काट-काटकर (**कोद्रवाणाम्**) कोदों के खेत के (**समन्तात्**) चारों ओर (**वृतिः**)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाड़ (कुरुते) करता, लगाता है।

भावार्थ—जो मनुष्य इस कर्मभूमि [मनुष्य-शरीर अथवा सत्कर्म करने योग्य संसार में] जन्म लेकर भी तप आदि पुण्यकर्म नहीं करता वह उस महामूढ़ के समान है जो चन्दन के ईंधन से हीरे-जवाहरात से जड़ी बटलोई में लहसुन, मांस और मछली पकाता है अथवा मदार की रुई उगाने के लिए सोने के बने हुए हल के अग्रभाग [फाल] से भूमि को जोतता है अथवा कपूर के पेड़ों के तनों को काट-काटकर उनसे कोदों के खेतों की बाड़ लगाता है।

नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलं,
विद्याऽपि नैव न च यत्नकृताऽपि सेवा।
भाग्यानि पूर्वतपसा खलु सञ्चितानि,
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः ॥ 97 ॥

शब्दार्थ—(न एव) न ही (पुरुषस्य) मनुष्य का (आकृतिः) रङ्ग-रूप (फलति) फलता, काम देता है (कुलम्, एव) कुल, जाति भी (न फलति) फल नहीं देती (शीलम् न) सदाचार भी नहीं फलता (न एव) न ही (विद्या, अपि) विद्या भी फलती है (च) और (यत्नकृता) परिश्रमपूर्वक की हुई (सेवा अपि) सेवा भी (न) नहीं फलती (खलु) केवल (पूर्व+तपसा) पिछली तपस्या से (सञ्चितानि) संचित, संगृहीत (पुरुषस्य) मनुष्य के (भाग्यानि) भाग्य [पूर्वजन्मकृत कर्मों का फल] ही, (यथा) जैसे (वृक्षाः) वृक्ष (काले फलन्ति) समय आने पर फल देते हैं (इव) वैसे ही मनुष्य का भाग्य भी फलता है।

भावार्थ—मनुष्य को न तो सुन्दर आकृति [रंग-रूप] फल देती है, न उत्तम कुल-गोत्र, न शील [आचार-विचार], न विद्या [कला-कौशल] और न यत्नपूर्वक की गई सेवा-शुश्रूषा ही कोई फल प्रदान करती है। केवल पूर्व-जन्मकृत तप के द्वारा सञ्चित भाग्य ही समय पर वृक्ष की भाँति फल देता है।

मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रूञ्जयत्वाहवे,
वाणिज्यं कृषिसेवनं च सकला विद्याः कलाः शिक्षताम्।
आकाशं विपुलं प्रयातु खगवत्कृत्वा प्रयत्नं परं,
नाभाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाशः कुतः ॥ 98 ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—चाहे कोई व्यक्ति (**अम्भसि**) मोतियों के लिए समुद्र में (**मज्जतु**) गोता लगाये, (**मेरुशिखरम्**) सुवर्ण-प्राप्ति के लिए चाहे मेरु पर्वत पर (**यातु**) पहुँच जाए, (**आहवे**) युद्ध में (**शत्रून्**) शत्रुओं को (**जयतु**) जीत ले, चाहे (**वाणिज्यम्**) व्यापार (**कृषि+सेवनम्**) खेती और नौकरी करे [या कृषिसेवनम्=खेती का धन्धा करे], (**सकलाः विद्याः**) सारी विद्याओं (**च**) और (**कलाः**) सारी कलाओं को (**शिक्षताम्**) सीख ले, चाहे (**परम्**) महान् (**प्रयत्नम्**) प्रयत्न (**कृत्वा**) करके (**खगवत्**) पक्षी की भाँति (**आकाशम्, प्रयातु**) आकाश में उड़ता फिरे, तो भी (**इह**) इस संसार में (**कर्मवशतः**) कर्म के प्रताप से (**अभाव्यम्**) अनहोनी (**न भवति**) कभी नहीं होती और (**भाव्यस्य**) होनहार का (**नाशः**) नाश (**कुतः**) कहाँ है ? अर्थात् वह होकर रहेगा।

भावार्थ—चाहे मनुष्य मोतियों के लिए समुद्र में गोता लगाए, चाहे सुवर्णप्राप्ति के लिए सुमेरु पर्वत पर जा चढ़े, चाहे समर में शत्रुओं को जीत ले, चाहे व्यापार, कृषि, नौकरी आदि चौदह विद्याओं और चौंसठ कलाओं को सीख ले, चाहे महान् प्रयत्न करके पक्षी की भाँति आकाश में उड़ता फिरे, फिर भी संसार में कर्म के प्रताप से अनहोनी नहीं होती और जो होनहार है वह कभी टल नहीं सकती। भाव यह है कि कर्म करने के पश्चात् फल-प्राप्ति में परिवर्तन असम्भव है।

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥ 99 ॥

शब्दार्थ—(**वने**) वन में (**रणे**) युद्ध में (**शत्रु+जल+अग्नि+मध्ये**) शत्रुओं से घिरने पर, जल में, अग्नि में (**महा+अर्णवे**) विशाल समुद्र में (**वा**) अथवा (**पर्वत+मस्तके**) पहाड़ की चोटी पर (**सुप्तम्**) सोया हुआ हो, (**प्रमत्तम्**) असावधानी या पागलपन की दशा में (**वा विषम+स्थितम्**) अथवा विपरीत परिस्थितियों में घिरा हो—इन सभी स्थितियों में मनुष्य के (**पूर्वकृतानि**) पहले जन्म में किये हुए (**पुण्यानि**) पुण्यफल (**रक्षन्ति**) उसकी रक्षा करते हैं।

भावार्थ—वन में, युद्ध में, शत्रुओं से घिरने पर, जल में, अग्नि में, महासमुद्र में, पर्वत की चोटी पर, सुप्त अवस्था में, असावधानी की दशा में तथा संकट पड़ने पर मनुष्य के पूर्वजन्मकृत कर्म ही उसकी रक्षा करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं,
सर्वो जनः स्वजनतामुपयाति तस्य।
कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा,
यस्यास्ति पूर्वसुकृतं विपुलं नरस्य॥ 100॥

शब्दार्थ—(**यस्य**) जिस (**नरस्य**) मनुष्य के (**पूर्वसुकृतम्**) पूर्वजन्मकृत शुभ कर्मों का पुण्यफल (**विपुलम्**) प्रबल है (**तस्य**) उसके लिए (**भीमम्**) भयङ्कर (**वनम्**) वन (**प्रधानम्**) प्रमुख (**पुरम्**) नगर (**भवति**) बन जाता है (**सर्वः**) सब (**जनः**) मनुष्य (**तस्य**) उसके (**स्वजनताम्**) अपने आदमी (**उपयाति**) हो जाते हैं (**च**) और (**कृत्स्ना**) सारी (**भूः**) भूमि (**सत्+निधि+रत्न+पूर्णा**) उत्तम निधियों और रत्नों से परिपूर्ण (**भवति**) हो जाती है।

भावार्थ—जिस मनुष्य के पूर्वजन्म में किये शुभकर्मों का पुण्यफल प्रबल है, उसके लिए भयङ्कर वन भी श्रेष्ठ नगर बन जाता है, सब लोग उसके मित्र बन जाते हैं और सारी पृथिवी उसके लिए उत्तम निधियों और रत्नों से परिपूर्ण हो जाती है।

परिशिष्टम्

अनेक प्रतियों में नीतिशतक में सौ से अधिक श्लोक उपलब्ध होते हैं। यहाँ कुछ श्लोकों को भावार्थसाहित दिया जा रहा है—

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुर्यं कृत्वा नावसीदति॥ 1॥

आलस्य मनुष्य के शरीर में ही रहनेवाला उसका सब से बड़ा शत्रु है। उद्यम=पुरुषार्थ के समान मनुष्य का कोई दूसरा मित्र नहीं है। उद्योगी मनुष्य कभी दुःखी नहीं होता।

कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी।
तथाऽपि सुधिया भाव्यं सुविचार्यैव कुर्वता॥ 2॥

यद्यपि मनुष्य को अपने पूर्वजन्म में किये हुए कर्मों के अनुसार ही फल मिलता है—सुख-दुःख की प्राप्ति होती है और बुद्धि भी कर्मानुसार ही मिलती है, फिर भी बुद्धिमान् मनुष्य को विचारपूर्वक ही कर्म करने चाहिएँ।

अप्रियवचनदरिद्रैः प्रवचनाढ्यैः स्वदारपरितुष्टैः।
परपरिवादनिवृत्तैः क्वचित्क्वचिन्मण्डिता वसुधा॥ 3॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अप्रिय और कठोर वचन बोलने में दरिद्र, प्रिय एवं मधुर वचनों के धनी, अपनी पत्नी से ही सदा सन्तुष्ट रहनेवाले और दूसरों की निन्दा से विमुख सज्जनों द्वारा पृथिवी किसी-किसी स्थान पर ही अलंकृत है, सर्वत्र नहीं, अर्थात् ऐसे महापुरुष संसार में विरले ही होते हैं।

को लाभो गुणिसङ्गमः किमसुखं प्राज्ञेतरैः सङ्गतिः,
का हानिः समयच्युतिर्निपुणता का धर्मतत्त्वे रतिः।
कः शूरो विजितेन्द्रियः प्रियतमा काऽनुव्रता किं धनं,
विद्या किं सुखमप्रवासगमनं राज्यं किमाज्ञाफलम्॥ 4॥

लाभ क्या है ?—श्रेष्ठ पुरुषों का सङ्ग [सत्सङ्गति, सन्तसमागम]। दुःख क्या है ?—मूर्खों का सङ्ग [कुसङ्गति]। हानि क्या है ?—समय की बर्बादी अथवा समय पर चूक जाना। चतुराई क्या है ?—धर्म के रहस्यों को जानने में अनुराग। वीर कौन है ?—इन्द्रियों का विजेता। उत्तम स्त्री कौन सी है ?—पति की आज्ञा के अनुकूल चलनेवाली। धन क्या है ?—विद्या। सुख क्या है—परदेश में न रहना। राज्य क्या है ?—आज्ञा की सफलता।

एकेनाऽपि हि शूरेण पादाक्रान्तं महीतलम्।
क्रियते भास्करेणेव परिस्फुरिततेजसा॥ 5॥

जैसे सूर्य अपने प्रखर प्रकाश से सारी पृथिवी को व्याप्त कर देता है, उसी प्रकार शूरवीर अकेला ही अपने प्रबल पराक्रम से सारे संसार को पादाक्रान्त कर लेता है।

लज्जागुणौघजननीं जननीमिव स्वा-
मत्यन्तशुद्धहृदयाम् अनुवर्तमानाम् ।
तेजस्विनः सुखमसूनपि सन्त्यजन्ति,
सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम्॥ 6॥

सत्यपालन में लगे हुए तेजस्वी पुरुष प्राणों को भी सुखपूर्वक त्याग देते हैं, परन्तु लज्जा आदि गुणों को उत्पन्न करनेवाली, अपनी माता के समान निर्मल हृदय और भाववाली तथा सदा स्वाधीन रहनेवाली प्रतिज्ञा को कभी नहीं छोड़ते।

इति परिशिष्टम्।

इति नीतिशतकं समाप्तम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शृङ्गारशतकम्

मङ्गलाचरणम्

शम्भुस्वयम्भुहरयो हरिणेक्षणानां,
येनाक्रियन्त सततं गृहकर्मदासाः ।
वाचाम् अगोचरित्रविचित्रताय,
तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय[1] ॥ 1 ॥

शब्दार्थ—(येन) जिसने (शम्भु+स्वयम्भु+हरयः) शंकर, ब्रह्मा और विष्णु को (हरिण+ईक्षणानाम्) हिरन के समान आँखोंवाली रमणियों के (गृह+कर्म+दासाः) घर पर काम करनेवाले सेवक, घरेलू नौकर (सततम्) निरन्तर (अक्रियन्त) बना रखा है, (तस्मै) उस (वाचाम्+अगोचर+चरित्र+विचित्रताय) वाणी के द्वारा अवर्णनीय, विचित्र आचरणों से युक्त (कुसुमायुधाय) कुसुमों के हथियारवाले (भगवते) भगवान् कामदेव को (नमः) प्रणाम है।

भावार्थ—जिसने ब्रह्मा, विष्णु और शिव को मृग के समान नयनोंवाली रमणियों के घर पर पानी भरने के लिए सतत दास बना रखा है, जिसका वर्णन करने में वाणी असमर्थ है, ऐसे विचित्र आचरणों से युक्त उस भगवान् कुसुमायुध [कामदेव] को बारम्बार नमस्कार है।

स्त्री-प्रशंसा

स्मितेन भावेन च लज्जया भिया,
पराङ्मुखैरर्द्धकटाक्षवीक्षणैः ।
वचोभिरीर्ष्याकलहेन लीलया,
समस्तभावैः खलु बन्धनं स्त्रियः ॥ 2 ॥

शब्दार्थ—(स्मितेन) मुस्कान से, (भावेन) हाव-भाव से (च) और (लज्जया) लज्जा से, (भिया) भय से (पराङ्मुखैः) मुख फेरकर (अर्द्ध+कटाक्ष+वीक्षणैः) अधखुली कनखियों के नज़र से, (वचोभिः) बातों से (ईर्ष्या+कलहेन) ईर्ष्या के कारण रूठने से (लीलया) लीला-विलास

1. पाठभेद—मकरध्वजाय, अर्थ में कोई अन्तर नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से, प्रसन्नता से—इस प्रकार (**समस्त+भावैः**) सम्पूर्ण भावों से (**स्त्रियः**) नारियाँ (**खलु**) निश्चय ही (**बन्धनम्**) पुरुषों के लिए बन्धन का ही कारण हैं।

भावार्थ—मन्द मुस्कराहट से, हाव-भावों [चटक-मटक] से, लज्जा से, आकस्मिक भय से, कभी मुँह फेरकर और कभी कनखियों से ताककर, कभी प्यारभरी बातचीत से, कभी ईर्ष्या के कारण रूठने से और कभी लीलाविलास से—इस प्रकार सम्पूर्ण भावों से स्त्रियाँ पुरुषों के संसार-बन्धन का कारण हैं।

भ्रूचातुर्यात्कुञ्चिताक्षाः कटाक्षाः,
स्निग्धा वाचो लज्जितान्ताश्च हासाः।
लीलामन्दं प्रस्थितं च स्थितं च,
स्त्रीणामेतद् भूषणं चायुधं च॥3॥

शब्दार्थ—(**भ्रू+चातुर्यात्**) भौंहों के उतार-चढ़ाव की चतुराई से (**कुञ्चित+अक्षाः**) आधी खुली हुई आँखों के (**कटाक्षः**) कटाक्ष, (**स्निग्धा वाचः**) अत्यधिक स्निग्ध एवं मधुर वाणी (**लज्जित+अन्ताः**) लज्जापूर्ण सुकोमल मन (**च**) और (**हासाः**) मधुर मुस्कानें (**लीला, मन्दम्, प्रस्थितम्**) लुभावनी चाल से मन्द-मन्द चलना (**च**) और (**स्थितम्**) चलते-चलते रुक जाना—(**एतत्**) ये सब (**स्त्रीणाम्**) नारियों के (**भूषणम्**) आभूषण भी हैं (**च च**) और (**आयुधम्**) हथियार भी हैं।

भावार्थ—चतुराई से भौंहों का नचाना, पलकें झपकाकर तिरछी नजरों से ताकना, चिकनी-चुपड़ी बातें करना, लज्जापूर्वक मुस्कराना, लुभावनी चाल से मन्द-मन्द चलना और चलते-चलते रुक जाना—ये सब स्त्रियों के आभूषण भी हैं और आयुध [हथियार] भी। इनके द्वारा वे सब को अपने वश में कर लेती हैं।

क्वचित्सुभ्रूभङ्गैः क्वचिदपि च लज्जापरिगतैः,
क्वचिद् भीतित्रस्तैः क्वचिदपि च लीलाविलसितैः।
नवोढानाम् एतैर्मदनसुभगैर्नेत्रचलितैः,
स्फुरन्नीलाब्जानां प्रकरपरिपूर्णा इव दिशः॥4॥

शब्दार्थ—(**क्वचित्**) कहीं (**सुभ्रूभङ्गैः**) भौंहों के मनोहर कटाक्षों से (**अपि च**) और (**क्वचित्**) कहीं (**लज्जापरिगतैः**) लज्जामय चञ्चल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हाव-भावों से (**क्वचित्**) कहीं (**भीति+त्रस्तैः**) घबराकर भयभीत होने से (**अपि च**) और (**क्वचित्**) कहीं (**लीला+विलसितैः**) लीलापूर्ण कोमल हास से (**एतैः**) इन (**मदन+सुभगैः**) काम के उद्रेक से सुन्दरतम (**नवोढाम्**) नवविवाहित तरुणियों के (**नेत्र+चलितैः**) आँख मटकाने से (**इव**) ऐसा प्रतीत होता है मानो (**दिशः**) सभी दिशाएँ (**स्फुरत्+नील+अब्जानाम्**) खिले हुए नीलकमलों के (**प्रकर+परिपूर्णा**) समूह से परिपूर्ण हो रही हैं।

भावार्थ—नवविवाहित युवतियाँ कहीं तो बिगड़कर भौंहें तरेरती हैं और कहीं लज्जा के कारण आँखें नीची कर लेती हैं। कहीं वे घबराई हुई डर-डरकर ताकती हैं और कहीं सरल बनकर कोमल हास से आँखें मटकाती हैं। कामोद्रेक से सुन्दरतम बनकर जब ये नव-यौवनाएँ अपने नयनों से भाँति-भाँति के कटाक्ष करती हैं तब ऐसा प्रतीत होता है मानो सम्पूर्ण दिशाओं में नीले कमल खिल रहे हैं।

वक्त्रं चन्द्रविकासि पङ्कजपरिहासक्षमे लोचने,
वर्णः स्वर्णमपाकरिष्णुरलिनी जिष्णुः कचानाञ्चयः।
वक्षोजाविभकुम्भविभ्रमहरौ गुर्वी नितम्बस्थली,
वाचां हारि च मार्दवं युवतिषु स्वाभाविकं मण्डनम्॥ 5॥

शब्दार्थ—(**चन्द्र+विकासि**) पूर्ण चन्द्रमा के समान खिला हुआ (**वक्त्रम्**) मुख (**पङ्कज+परिहास+क्षमे**) कमलों को मात करने में समर्थ (**लोचने**) दो लोचन, (**स्वर्णम्**) सोने को (**अपाकरिष्णुः**) पछाड़ने वाला (**वर्णः**) शरीर का रुचिर रंग [अंग-कान्ति], (**अलिनी+जिष्णुः**) भौरों को जीतनेवाले अर्थात् उनसे भी अधिक काला (**कचानाम्**) केशों का (**चयः**) समूह, (**इभ+कुम्भ+विभ्रम+हरौ**) हाथी के गण्डस्थल [मस्तक] की शोभा को मात करनेवाले [पुष्ट और उन्नत] (**वक्षोजौ**) उरोज [दोनों स्तन, छातियाँ], (**गुर्वी**) भारी-भारी (**नितम्बस्थली**) उच्च नितम्ब, (**च**) और (**वाचाम्**) वाणी में (**हारि**) मनोहर (**मार्दवम्**) कोमलता—ये सब (**युवतिषु**) युवतियों में के (**स्वाभाविकम्**) जन्मजात (**मण्डनम्**) आभूषण हैं।

भावार्थ—चन्द्रमा की कान्ति को फीका करनेवाला मुख, कमलों को लजानेवाले दो नयन, स्वर्ण को पछाड़ने योग्य शरीर का रंग, भौंरों से अधिक काले कोमल केश, गजराज के मस्तक की शोभा हरने वाले पुष्ट और उन्नत उरोज (दोनों स्तन), भारी-भारी नितम्ब, मधुर और कोमल वाणी—ये सब स्त्रियों के जन्मसिद्ध आभूषण हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्मितं किञ्चिद्वक्त्रे सरलतरलो दृष्टिविभवः,
परिस्पन्दो वाचामभिनवविलासोक्तिसरसः।
गतानामारम्भः किसलयितलीलापरिकरः,
स्पृशन्त्यास्तारुण्यं किमिव न हि रम्यं मृगदृशः॥ 6॥

शब्दार्थ—(तारुण्यम्, स्पृशन्त्याः) यौवन की देहली पर पाँव रखते ही (मृगदृशः) मृगनयनियों का (किम् इव) क्या कुछ (रम्यम् न भवति) रमणीय [लुभावना] नहीं होता (हि) सब-कुछ ही तो लुभावना हो जाता है, जैसे—(वक्त्रे) मुख पर (किञ्चित्) कुछ-कुछ (स्मितम्) मुस्कान (सरल+तरलः) स्वाभाविक और चञ्चल (दृष्टि+विभवः) आँखों की अदाएँ, (परस्पन्दः) फूलों से केशों का शृंगार (वाचाम्) वाणी पर (अभिनव+विलास+उक्ति+सरसः) नये-नये, रसीले और मनों में मिठास घोलते बोल, (किसलयित+लीला+परिकरः) नवपल्लवों के फूटने की शोभा के समान (गतानाम् आरम्भः) क्रमिक कोमल पद-विन्यास—सभी कुछ सुन्दर होता है।

भावार्थ—यौवनावस्था में पदार्पण करनेवाली मृगनयनियों की कौन-सी वस्तु सुन्दर नहीं होती! उनका तो सभी कुछ सुन्दर होता है। जैसे—मुख पर मन्द हास अति रमणीय होता है। चञ्चल और रसीले नयनों से बार-बार ताकना, फूलों से केशों का शृंगार करना मन में मिठास घोलनेवाले माधुर्य से परिपूर्ण बोलियाँ कसना और ऐसी मन्द-मन्द चाल चलना जैसे टहनियों में कोमल पल्लव फूट-फूटकर झाँक रहे हों—उनकी ये सभी चेष्टाएँ मनोहारिणी होती हैं।

द्रष्टव्येषु किमुत्तमं मृगदृशः प्रेमप्रसन्नं मुखं,
घ्रातव्येष्वपि किं तदास्यपवनः श्राव्येषु किं तद्वचः।
किं स्वाद्येषु तदोष्ठपल्लवरसः स्पृश्येषु किं तद् वपुः,
ध्येयं किं नवयौवनं सहृदयैः सर्वत्र तद्विभ्रमाः॥ 7॥

शब्दार्थ—(सहृदयैः) रसिक हृदयों के लिए [इस संसार में] (द्रष्टव्येषु) दर्शनीय वस्तुओं में (किम्, उत्तमम्) सर्वोत्कृष्ट वस्तु क्या है?—(मृगदृशः) मृगनयनी का (प्रेम+प्रसन्नम्) प्रेम से पुलकित, प्रेम में सराबोर (मुखम्) मुखड़ा। (घ्रातव्येषु) सूँघने योग्य वस्तुओं में (किम्) कौन-सी वस्तु सर्वोत्तम है?—(तत्+आस्य+पवनः) उसके मुख का सुगन्धित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पवन सूँघने योग्य वस्तुओं में सर्वोत्तम है। (**श्राव्येषु**) सुनने योग्य वस्तुओं में (**किम्**) सब से उत्तम क्या है ?—(**तत्, वचः**) स्त्री के मीठे वचन ही उत्तम होते हैं। (**स्वाद्येषु**) स्वादिष्ठ वस्तुओं में (**किम्**) सर्वश्रेष्ठ वस्तु कौन सी है ?—(**तत्+ओष्ठपल्लवरसः**) पल्लव के समान स्त्री के अधर-ओष्ठ का मधुर रस, अधरामृत का पान। (**स्पृश्येषु**) स्पर्श करने योग्य वस्तुओं में, आलिंगन में (**किम्**) सर्वोत्तम वस्तु क्या है ?—(**तत् वपुः**) उसके शरीर का आलिंगन ही सब से अधिक सुखदायक होता है। (**ध्येयं किम्**) सदा स्मरण या ध्यान करने योग्य वस्तु कौन-सी है ?—(**सर्वत्र**) सदा (**विभ्रमाः**) विलासिनियों का (**तत् नवयौवनम्**) विकसित यौवन।

भावार्थ—इस संसार में सहृदय रसिकों के लिए कोई दर्शनीय वस्तु है तो वह केवल मृगनयनियों का प्रेम से पूर्ण मुखमण्डल ही है। इसी प्रकार सूँघने योग्य वस्तुओं में प्रेयसी का सुगन्धित मुख-पवन [श्वास] ही सर्वोत्तम है। सुनने योग्य बातों में उसके मृदु और मधुर वचन ही हैं। पान करने योग्य वस्तुओं में उसका अधरामृत ही सर्वश्रेष्ठ है। प्रेयसी के कुसुम-कोमल शरीर का आलिंगन सब से अधिक सुखदायक है और ध्यान करने योग्य वस्तुओं में उनका विकसित यौवन-विलास ही सब से अधिक आनन्ददायक है।

एताश्चलद्वलयसंहतिमेखलोत्थ-
झङ्कारनूपुरपराजितराजहंस्यः।
कुर्वन्ति कस्य न मनो विवशं तरुण्यो,
वित्रस्तमुग्धहरिणीसदृशैः कटाक्षैः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—(**चलत्+वलय+संहति+मेखला+उत्थ+झङ्कार+नूपुर+पराजित+राज+हंस्यः**) पद्गति की मनोहरता, ऊपर-नीचे हिलते हुए हाथ के कंगन, कमर की घुँघरूदार करधनी और नुपूरों [पाजेब या बिछुओं] से उठनेवाली झनझनाहट से राजहंसिनियों की चाल को भी मात करनेवाली (**एताः**) ये (**तरुण्यः**) सुन्दरियाँ (**वित्रस्त+मुग्ध+हरिणी+सदृशैः**) भयभीत और चकित हिरणियों के समान (**कटाक्षैः**) मनोहर नेत्र-कटाक्षों से (**कस्य**) किस पुरुष के (**मनः**) मन को (**विवशम्**) व्याकुल (**न कुर्वन्ति**) नहीं करतीं, अर्थात् सभी को व्याकुल कर देती हैं।

भावार्थ—जब तरुणियाँ हाथ हिलाती और कमर मटकाती हुई राजहंसिनी के समान मन्द गति से चलती हैं, तब उनके कंगन बजते हैं, कमर की करधनी और पैरों के पायल रुनझुन कर उठते हैं। ऐसी तरुणियाँ जब भयभीत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और चकित हिरणी के समान कनखियों से ताकने लगती हैं, तब किसका मन व्याकुल और आकर्षित नहीं होता अर्थात् सभी व्याकुल और आकर्षित हो जाते हैं।

कुङ्कुमपङ्कसमाङ्कितदेहा गौरपयोधरकम्पितहारा।
नूपुरहंसरणत्पदपद्मा कं न वशी कुरुते भुवि रामा॥ 9॥

शब्दार्थ—(**कुङ्कुम+पङ्क+समाङ्कित+देहा**) केसर और चन्दन से अलंकृत सुन्दर शरीरवाली, (**गौर+पयोधर+कम्पित+हारा**) गोरे-गोरे स्तनों से गले में पड़ी हुई मोतियों की माला को कँपानेवाली (**नुपूर+हंस+रणत्+पदपद्मा**) पायलों से हंस की सी ध्वनि निकालनेवाले चरणकमलों वाली (**रामा**) सुन्दरी (**भुवि**) इस संसार में (**कम्**) किसे (**न वशी कुरुते**) वश में नहीं कर लेती! [सभी को वश में कर लेती है।]

भावार्थ—केसर और चन्दन से अलंकृत शरीर हो, गोरी छातियों पर मोतियों की माला झूल रही हो और कमल के समान कोमल पैरों में हंस की-सी चाल की ध्वनिवाले पायल बज रहे हों, ऐसी सर्वांग सुन्दरी को देखकर ऐसा कौन व्यक्ति होगा, जो उसके वशीभूत न हो जाए!

नूनं हि ते कविवरा विपरीतवाचो,
ये नित्यमाहुरबला इति कामिनीनाम्।
याभिर्विलोलतर-तारकदृष्टिपातैः,
शक्रादयोऽपि विजितास्त्वबला कथं ताः॥ 10॥

शब्दार्थ—(**ये**) जो (**कविवराः**) कविजन (**कामिनीनाम्**) युवतियों को (**नित्यम्**) सदा (**अबलाः**) अबल, निर्बल (**इति, आहुः**) ऐसा कहते हैं (**ते**) वे कविजन (**नूनम् हि**) निश्चय ही (**विपरीतवाचः**) उलटी बातें कहते हैं, झूठ बोलते हैं, क्योंकि (**याभिः**) जिन युवतियों ने (**विलोलतर+तारक+दृष्टि+पातैः**) अति चञ्चल नेत्र के कटाक्षों द्वारा (**शक्र+आदयः अपि**) इन्द्र आदि देवगण भी (**विजिताः**) जीत लिये हैं (**ताः**) वे युवतियाँ (**अबलाः कथम्**) अबला कैसे कही जा सकती हैं? वे तो बड़ी ही सबला हैं।

भावार्थ—जो कविगण युवतियों को सदा 'अबला' [बलहीन] कहते हैं, वे निश्चय ही झूठ बोलते हैं। जिन कामिनियों ने अपने अत्यन्त चञ्चल नेत्रों के कटाक्षों से महान् सामर्थ्यशाली इन्द्र आदि देवताओं को भी जीत लिया हो, उन्हें अबला कैसे कहा जा सकता है?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नूनमाज्ञाकरस्तस्याः सुभ्रुवो मकरध्वजः।
यतस्तन्नेत्रसञ्चारसूचितेषु प्रवर्तते॥ 11॥

शब्दार्थ—(**मकरध्वजः**) कामदेव (**नूनम्**) निश्चय ही (**तस्याः**) उन (**सुभ्रुवः**) सुन्दर भ्रुकुटीवाली कामिनियों का (**आज्ञाकरः**) आज्ञापालक सेवक है, (**यतः**) क्योंकि तभी तो (**तत्**) उसके (**नेत्र+सञ्चार+सूचितेषु**) आँख के संकेत पर (**प्रवर्तते**) उस ओर जाने के लिए तैयार रहता है।

भावार्थ—कामदेव निश्चय ही सुन्दर भ्रुकुटीवाली कामिनियों का क्रीतदास, आज्ञापालक सेवक है, क्योंकि जिसे वे ताक भर लेती हैं, कामदेव उसी पर सवार हो जाते हैं, अर्थात् जिस ओर वे संकेत करती हैं, कामदेव उसी को वशीभूत कर लेते हैं।

केशाः संयमिनः श्रुतेरपि परं पारं गते लोचने,
अन्तर्वक्त्रमपि स्वभावशुचिभिः कीर्णं द्विजानां गणैः।
मुक्तानां सतताधिवासरुचिरौ वक्षोजकुम्भाविमा-
वित्थं तन्वि वपुः प्रशान्तमपि ते क्षोभं करोत्येव नः॥ 12॥

शब्दार्थ—(**तन्वि**) हे कृशाङ्गि! छरहरे शरीरवाली! (**ते**) तेरे (**केशाः**) सिर के बाल (**संयमिनः**) सुगन्धित तेल द्वारा सँवरे हुए हैं मानो ऋषियों की जटाजूट बँधी है, (**लोचने अपि**) तुम्हारे दोनों नेत्र भी (**श्रुतेः परं पारं गते**) कान के अन्तिम छोर तक पहुँचे हुए होने के कारण अत्यन्त विशाल हैं, अथवा वेद-विचार में पारंगत हैं, वेद के मर्मज्ञ हैं, (**अन्तः, वक्त्रम्, अपि**) तुम्हारे मुख का भीतरी भाग (**स्वभावशुचिभिः**) स्वभाव से ही शुद्ध और पवित्र (**द्विजानाम्+गणैः**) धवलाभ ब्राह्मणों सी दन्तपंक्तियों से (**कीर्णम्**) भरा हुआ है, (**इमौ वक्षोजकुम्भौ**) तुम्हारे ये दोनों स्तनरूपी स्वर्णकलश (**मुक्तानाम्**) मुक्ताओं [मोतियों की माला] के (**सततम्**) सतत, निरन्तर (**अधिवासरुचिरौ**) निवास से शोभायमान हैं, (**इत्थम्**) इस प्रकार (**ते वपुः**) तेरा शरीर (**प्रशान्तम् अपि**) अत्यन्त शान्तिमय होने पर भी अथवा वैराग्य के साधनों से परिपूर्ण होने पर भी (**नः**) हम लोगों में (**रागम्, एव**) अनुराग ही (**करोति**) उत्पन्न करता है, वैराग्यवान् नहीं बनाता।

भावार्थ—हे कृशाङ्गि! तुम्हारा शरीर छरहरा है, मानो तपस्वियों की भाँति सूखकर काँटा हो गया है। तुम्हारे केश तेल-कंघी से सँवरकर गुँथे हुए हैं, मानो ऋषि-मुनियों की जटा-जूट बँधी हैं। तुम्हारे नेत्र कान के अन्तिम छोर तक पहुँचने के कारण अत्यन्त विशाल हैं, जैसे श्रुति-उन्मुख [वेदाध्ययन में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रत] हों। तुम्हारे मुख के भीतर श्वेत दन्तपंक्ति चमक रही है मानो धवलाभ ब्राह्मण पंक्ति बाँधे भोजन पर डटे हों। तुम्हारे स्तनों पर मुक्ताहार विराज रहा है, मानो पर्वत-शिखर पर मुक्त तपस्वी निवास कर रहे हों। इस प्रकार तेरा प्रत्येक अंग शान्तिरूप धारण किये हुए है, वैराग्य के साधनों से परिपूर्ण है, फिर भी तुम्हारा शान्तिमय शरीर हम पर विपरीत प्रभाव डाल रहा है, हमें वैराग्यवान् बनाने की बजाय अनुरागी बना रहा है।

मुग्धे धानुष्मता केयमपूर्वा त्वयि दृश्यते।
यया विध्यसि चेतांसि गुणैरेव न सायकैः ॥ 13 ॥

शब्दार्थ—(**मुग्धे**) हे मोहिनी! (**त्वयि**) तुझ में (**धानुष्मता**) धनुर्विद्या का (**का, इयम्**) यह कौन-सा (**अपूर्वा**) अनूठा गुण (**दृश्यते**) दिखाई देता है (**यया**) जिसके द्वारा तू (**गुणैः एव**) गुणों=डोरी के द्वारा ही (**चेतांसि**) तरुणों के हृदयों को (**विध्यसि**) छेद डालती है (**न सायकैः**) वाणी की आवश्यकता ही नहीं होती।

भावार्थ—हे सुन्दरि! तेरी धनुषचातुरी का भी अनोखा अन्दाज है कि तीर के विना केवल डोरी से ही तुम तरुणों के हृदयों को छेद डालती हो।

विशेष—यहाँ 'गुण' शब्द में श्लेष है। गुण के दो अर्थ हैं—1. प्रत्यञ्चा, डोरी और 2. लीलाविलासादि शृङ्गारिक गुण।

धनुर्धारी तो बाणों को धनुष पर चढ़ाकर उनके द्वारा दूसरों को वेधा करते हैं परन्तु तुम अपने गुण=लीलाविलासरूपी प्रत्यञ्चा से ही युवकों के हृदयों को बेध डालती हो। तुम्हारा यह विचित्र चरित्र है।

सति प्रदीपे सत्यग्नौ सत्सु तारारवीन्दुषु।
विना मे मृगशावाक्ष्या तमोभूतमिदं जगत् ॥ 14 ॥

शब्दार्थ—(**प्रदीपे सति**) दीपक होने पर, (**अग्नौ सति**) अग्नि के विद्यमान होने पर (**तारा+रवि+इन्दुषु सत्सु**) तारासमूह, सूर्य और चन्द्रमा के रहते हुए भी (**मृगशाव+अक्ष्या विना**) हिरन के बच्चे के नेत्रों के समान चञ्चल नेत्रोंवाली सुन्दरी के विना (**इदम् जगत्**) यह संसार (**मे**) मुझे (**तमोभूतम्**) अन्धकारमय प्रतीत हो रहा है।

भावार्थ—पृथिवी पर दीपक जल रहे हैं, अग्नि प्रज्वलित है। रात्रि में आकाश में चन्द्रमा और तारे चमकते हैं, दिन में सूर्यदेव दमकते हैं, फिर भी हिरन के बच्चे के नेत्रों के समान चञ्चल नेत्रोंवाली सुन्दरी के विना मुझे यह सारा संसार अन्धकारमय प्रतीत हो रहा है अर्थात् उसके विना सब-कुछ शून्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सा लगता है।

उद्वृत्तः स्तनभार एषस्तरले नेत्रे चले भ्रूलते,
रागाधिष्ठितमोष्ठपल्लवमिदं कुर्वन्तु नाम व्यथाम्।
सौभाग्याक्षरपङ्क्तिरेव लिखिता पुष्पायुधेन स्वयं,
मध्यस्थाऽपि करोति तापमधिकं रोमावली केन सा॥ 15॥

शब्दार्थ—तुम्हारे (**एषः**) ये (**उद्वृत्तः**) उभरे हुए (**स्तनभारः**) गोल-गोल स्तन, (**तरले नेत्रे**) विलास से चञ्चल नेत्र, (**चले भ्रूलते**) चपल, चञ्चल भौंहें (**राग+अधिष्ठितम्**) अरुणिमा से भरे (**इदम्**) ये (**ओष्ठपल्लवम्**) नवीन पत्ते की भाँति लाल-लाल अधर, ओष्ठ [रसिकों को] (**व्यथाम्**) पीड़ा (**कुर्वन्तु नाम**) दिया करें तो दिया करें परन्तु (**स्वयम् पुष्पायुधेन**) स्वयं कामदेव के हाथों से (**लिखिता**) लिखी हुई (**सौभाग्य+अक्षर+पङ्क्तिः, एव**) सौभाग्य अक्षरों की पंक्ति के समान भासमान (**सा रोमावली**) यह रोमों की पंक्ति (**केन**) किस कारण से (**मध्यस्था अपि**) तटस्थ होकर भी अथवा [तटस्थ व्यक्ति को भी] (**अधिकं तापम्**) अधिक सन्ताप (**करोति**) दे रही है।

भावार्थ—उठी हुई छातियाँ, चञ्चल नेत्र, टेढ़ी भौंहें और ओठों में अनुराग की लाली—ये सब अपने स्वभाव के अनुरूप मन को व्याकुल करते हैं, परन्तु प्रिया की रोमावली जिसे कामदेव ने सुन्दरी के पेट की गोरी-गोरी पटिया पर काली-काली सौभाग्य-अक्षरमाला के समान अपने हाथ से लिखा है, अपनी तटस्थता को त्याग कर मेरे मन को सब से अधिक सन्ताप देती है।

विशेष—रोमावली नयन आदि के साथ जन्म न लेकर बीच में आई है, अतः मध्यस्था है।

दुर्जनों का तो दूसरों को कष्ट देना स्वभाव है परन्तु मध्यस्थ [तटस्थ, सज्जन] क्यों कष्टदायक हो रहा है—यह ज्ञात नहीं होता।

तस्याः स्तनौ यदि घनौ जघनं विहारि,
वक्त्रं च चारु तव चित्त किमाकुलत्वम्।
पुण्यं कुरुष्व यदि तेषु तवास्ति वाञ्छा,
पुण्यैर्विना न हि भवन्ति समीहितार्थाः॥ 16॥

शब्दार्थ—(**यदि**) यदि (**तस्याः**) उस तरुणी के (**स्तनौ**) स्तन, छातियाँ (**घनौ**) अत्यन्त सुडौल और सघन [सटे हुए] हैं, पुष्ट हैं, (**जघनम्**)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसकी जंघाएँ (**विहारि**) मनोहारि और विहार करने योग्य हैं, (**च**) और (**वक्त्रम्**) मुख (**चारु**) सुन्दर है तो (**चित्त**) हे मन! (**तव**) तुझे (**आकुलत्वम्**) आकुलता (**किम्**) क्यों है? (**यदि**) यदि (**तव**) तुझे (**तेषु**) उनमें (**वाञ्छा**) आसक्ति (**अस्ति**) है तो (**पुण्यम्**) पुण्यकर्म, सुकर्म (**कुरुष्व**) कर, क्योंकि (**समीहित+अर्थाः**) चाही हुई इच्छाएँ (**पुण्यैः विना**) पुण्यों के विना (**न हि भवन्ति**) पूर्ण नहीं होती हैं।

भावार्थ—रे मन! यदि किसी युवती के स्तन सुडौल हैं, जंघाएँ सघन और विहार करने योग्य हैं और मुख सुन्दर है तो तू क्यों चंचल हो जाता है? यदि तुझे उस रमणी को पाने की चाह है तो सुकर्म कर, क्योंकि अभिलाषाएँ विना पुण्यकर्मों के पूर्ण नहीं होतीं।

मुखेन चन्द्रकान्तेन महानीलैः शिरोरुहैः।
पाणिभ्यां पद्मरागाभ्यां रेजे रत्नमयीव सा॥17॥

शब्दार्थ—(**चन्द्रकान्तेन**) चन्द्रकान्तमणि के समान उज्ज्वल (**मुखेन**) मुख से (**महानीलैः**) नीलाभ काले, उत्तम नीलम के समान (**शिरोरुहैः**) सिर के बालों से और (**पद्मरागाभ्याम्**) रक्तकमल जैसे, पद्मराग मणि के समान लाल-लाल (**पाणिभ्याम्**) हाथों से (**सा**) वह रमणी (**रत्नमयी इव**) रत्नों से भरी हुई-सी (**रेजे**) शोभा देती है।

भावार्थ—चन्द्रकान्तमणि के समान उज्ज्वल मुख, महानीलम के समान काले केश और पद्मराग मणि के समान लाल-लाल हाथ होने के कारण रमणियाँ रत्नस्वरूप सी दिखाई देती हैं।

गुरुणा स्तनभारेण मुखचन्द्रेण भास्वता।
शनैश्चराभ्यां पादाभ्यां रेजे ग्रहमयीव सा॥ 18॥

शब्दार्थ—(**स्तनभारेण**) स्तनों के भार के कारण (**गुरुणा**) बृहस्पति ग्रह के समान, (**भास्वता**) कान्तिमान [चमकते] (**मुखचन्द्रेण**) चन्द्रमुख से, चन्द्रग्रह के समान और (**शनैश्चराभ्याम्**) मन्द-मन्द मनोहर गतिवाले (**पादाभ्याम्**) चरणों के कारण (**सा**) वह रमणी (**ग्रहमयी इव**) नवग्रहों में से श्रेष्ठ ग्रहों से बनी हुई सी (**रेजे**) शोभायमान होती है।

भावार्थ—रमणियों के गुरु भारवाले स्तन, चन्द्रमा के समान विकसित मुखमण्डल तथा मन्द-मन्द गति [धीमी-धीमी चाल] वाले चरणों से ऐसा प्रतीत होता है मानो बृहस्पति ग्रह उनके स्तनों में विराजमान है। उनका मुख विमल चन्द्रग्रह के समान चमकता है, उनकी चाल इतनी धीमी है मानो स्वयं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शनिग्रह ने पैरों में निवास किया हुआ है। इस प्रकार सिर से पैर तक रमणियाँ ग्रहरूप सी प्रतीत होती हैं।

सम्मोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति,
निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति।
एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नराणां,
किं नाम वामनयना न समाचरन्ति॥ 19॥

शब्दार्थ—(**एताः**) ये (**वामनयनाः**) सुन्दर नेत्रोंवाली रमणियाँ (**नराणाम्**) मनुष्यों के (**सदयम्**) प्रणययुक्त (**हृदयम्**) हृदय में (**प्रविश्य**) प्रविष्ट होकर उन्हें (**सम्मोहयन्ति**) सम्मोहित करती हैं, (**मदयन्ति**) मतवाला बना देती हैं (**विडम्बयन्ति**) उनका उपहास करती हैं (**निर्भर्त्सयन्ति**) उनकी भर्त्सना=ताड़ना करती हैं (**रमयन्ति**) रमण कराती हैं (**विषादयन्ति**) और विरह का विषाद=दुःख भी उत्पन्न कराती हैं (**किम् नाम न समाचरन्ति**) ये कौन सा कार्य नहीं कर डालतीं!

भावार्थ—ये सुन्दर नेत्रोंवाली रमणियाँ मनुष्यों के प्रणयभरे हृदयों में प्रविष्ट होकर उन्हें सम्मोहित करती हैं, मतवाला बना देती हैं, उनका उपहास करती हैं, उनकी ताड़ना करती हैं, रमण कराती हैं और विरह का दुःख भी उत्पन्न कराती हैं—ये क्या-कुछ नहीं कर डालतीं।

प्रणयमधुराः प्रेमोद्गाढा रसाश्रयतां गताः,
भणितिमधुरा मुग्धप्रायाः प्रकाशितसम्मदाः।
प्रकृतिसुभगा विश्रम्भार्हाः स्मरोदयदायिनी,
रहसि किमपि स्वैरालापा हरन्ति मृगीदृशाम्॥ 20॥

शब्दार्थ—(**प्रणय+मधुराः**) मधुर प्रणय [प्यार] से भरी (**प्रेम+उद्गाढाः**) स्नेह से परिपूर्ण (**रस+आश्रयतां+गताः**) अनुराग के उद्गम तक पहुंची हुई (**भणितिमधुराः**) बोलने में अत्यन्त मधुर (**मुग्धप्रायाः**) यौवन से भरपूर अथवा मोहित करनेवाली (**प्रकाशित+सम्मदाः**) मस्ती से भरी हुई (**प्रकृति+सुभगाः**) सहज सुन्दरी (**विश्रम्भार्हाः**) विश्वास से सराबोर (**स्मर+उदय+दायिनी**) काम-वासना को जगानेवाली (**मृगीदृशाम्**) मृगनयनियों की (**रहसि**) एकान्त में (**स्वैः+आलापाः**) कही गयी स्नेहपूर्ण बातें (**किम् अपि**) प्रायः सब-कुछ (**हरन्ति**) हर लेती हैं।

भावार्थ—प्रणयोद्रेक में पगी, स्नेह से पूर्ण, अनुराग से युक्त, बोलने में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्यन्त मधुर, यौवन से भरपूर, मस्ती से भरी हुई, सहज सुन्दरी विश्वासभरी, कामवासना को जगानेवाली मृगनयनियों के एकान्त में कहे गये प्यारभरे बोल प्रियतम के सर्वस्व को हरण कर लेते हैं।

विश्रम्य विश्रम्य वनद्रुमाणां,
छायासु तन्वी विचचार काचित्।
स्तनोत्तरीयेण करोद्धृतेन,
निवारयन्ती शशिनो मयूखान्॥ 21॥

शब्दार्थ—(काचित्) कोई **(तन्वी)** छरहरे शरीरवाली तरुणी **(वन+द्रुमाणाम्)** वन के वृक्षों की **(छायासु)** छाया में **(विश्रम्य-विश्रम्य)** विश्राम लेती हुई और **(स्तन+उत्तरीयेण, करोद्धृतेन)** अपने स्तनों पर पड़े हुए आँचल को हाथों से ऊपर उठाकर, उससे **(शशिनः)** विरही को सन्तापदायक चन्द्रमा की किरणों का **(निवारयन्ती)** निवारण करती एवं **(विचचार)** अकेली विचरती हुई अपने प्रिय से मिलने के लिए जा रही थी।

भावार्थ—कोई विरह-कृशाङ्गी वन की छाया में विश्राम लेती हुई और अपने स्तनों पर पड़े हुए आँचल को हाथों से ऊपर उठाकर, उससे विरही को सन्तापदायक चन्द्रमा की किरणों का निवारण करती हुई अपने प्रिय से मिलने के लिए जा रही थी।

अदर्शने दर्शनमात्रकामा,
दृष्ट्वा परिष्वङ्गरसैकलोलाः।
आलिङ्गितायां पुनरायताक्ष्या-
माशास्महे विग्रहयोरभेदम्॥ 22॥

शब्दार्थ—(अदर्शने) देखने से पहले, जबतक देखा न हो तबतक **(दर्शन+मात्र+कामा)** देख लेने मात्र की अभिलाषा रहती है, **(दृष्ट्वा)** देख लेने पर **(परिष्वङ्ग+रस+एक+लोलाः)** बाहों में भर लेने के सुखमात्र को तरसते हैं, **(आयताक्ष्याम्)** विशाललोचना [बड़ी-बड़ी आँखोंवाली] तरुणी को **(आलिङ्गितायाम्)** आलिङ्गन कर लेने के पश्चात् **(विग्रहयोः)** उन शरीरों में **(पुनः)** फिर कभी **(अभेदम्)** अलग न होने की **(आशास्महे)** वाञ्छा=इच्छा रखते हैं।

भावार्थ—जबतक किसी युवती के बारे में सुना ही है, देखा नहीं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तबतक उसे एक बार देख लेने मात्र की इच्छा उत्पन्न होती है, देख लेने के पश्चात् बाहों में भरने की लालसा होती है और आलिंगन करने पर यह इच्छा होती है कि वह कभी अलग न हो।

मालती शिरसि जृम्भणोन्मुखी,
चन्दनं वपुषि कुङ्कुमान्वितम्।
वक्षसि प्रियतमा मदालसा,
स्वर्ग एव परिशिष्ट आगतः॥ 23॥

शब्दार्थ—(**शिरसि**) जूड़े में (**जृम्भण+उन्मुखी**) खिलती हुई (**मालती**) मोतिया [चमेली] की कलियों की सुन्दर माला (**वपुषि**) शरीर पर (**कुङ्कुम+अन्वितम्**) केसर से युक्त सुगन्धित (**चन्दनम्**) चन्दन—यदि ऐसी (**मनोहरा**) मन को हरण [आकर्षित] करनेवाली (**प्रियतमा**) प्रियतमा (**वक्षसि**) वक्षस्थल पर पड़ी हो तो समझना चाहिए कि (**स्वर्गः एव परिशिष्टः**) स्वर्ग का सुख ही धरती पर (**आगतः**) उतर आया है।

भावार्थ—जूड़े में लगी हुई विकासोन्मुख मालती-कलियों की माला, और शरीर पर सुगन्धित केसरयुक्त चन्दन लगाये हुए सुन्दरी प्रियतमा वक्षस्थल से लगी हुई हो तो समझना चाहिए कि यही स्वर्ग है, वेदशास्त्रों में वर्णित स्वर्ग तो अज्ञात होने से गौण है।

प्राङ् मा मेति मनागनागतरसं जाताभिलाषं ततः,
सव्रीडं तदनु श्लथीकृततनुः प्रध्वस्तधैर्यं पुनः।
प्रेमार्द्रं स्पृहणीयनिर्भररहः क्रीडाप्रगल्भं ततो,
निःशङ्काङ्गविकर्षणाधिकसुखं रम्यं कुलस्त्रीरतम्॥ 24॥

शब्दार्थ—(**प्राक्**) पहले, आरम्भ में (**मनाक्**) थोड़ा-बहुत (**मा मा इति**) ना, ना करके (**अनागत+रसम्**) रुचि को जाग्रत् करना (**ततः**) तदनन्तर (**जात+अभिलाषम्**) इच्छा उत्पन्न करनेवाला (**तदनु**) तत्पश्चात् (**सव्रीडम्**) लज्जा उत्पन्न करनेवाला (**पुनः**) फिर (**श्लथीकृत+तनुः**) शरीर को शिथिल और (**प्रध्वस्त+धैर्यम्**) धैर्य को नष्ट करनेवाला (**ततः**) पुनः (**प्रेमार्द्रम्**) प्रेमरस में सराबोर करना, फिर (**स्पृहणीय+निर्भर+रहः+क्रीडा+प्रगल्भम्**) वाञ्छनीय आतुरतापूर्ण एकान्त सम्भोग-क्रीड़ा में ढिटाई करना अथवा चातुर्य विस्तार करना और अन्त में (**निःशङ्क+अङ्ग+विकर्षण+अधिक+सुखम्**) निःशङ्क होकर अङ्गों को खींच लेना आदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वारा अधिकाधिक आनन्द अनुभव कराना—इस प्रकार (कुल+स्त्री+रतम्) कुलीन रमणी के साथ सम्भोग (रम्यम्) अत्यन्त आनन्ददायक होता है।

भावार्थ—आरम्भ में ना-ना करना, फिर इच्छा प्रकट करना, फिर लजा जाना, फिर शरीर को शिथिल कर तथा अधीर होकर स्नेह में सनकर मनभाती रतिक्रीड़ा के लिए आतुरता दर्शाना और अन्त में निःशङ्क होकर अङ्गों को खींच लेने आदि के द्वारा वे अत्यधिक सुखद सम्भोग देती हैं। सचमुच कुल-स्त्री से सम्भोग अतिशय आनन्ददायक होता है।

उरसि निपतितानां स्त्रस्तधम्मिल्लकानां,
मुकुलितनयनानां किञ्चिदुन्मीलितानाम्।
सुरतजनितखेदस्विन्नगण्डस्थलीना-
मधरमधुवधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति॥ 25॥

शब्दार्थ—(भाग्यवन्तः) सौभाग्यशाली पुरुष ही [पुरुषायित सुरत, विपरीत मैथुन] के समय (उरसि) छाती पर (निपतितानाम्) पड़ी हुई, (स्त्रस्त+धम्मिलकानाम्) खुली हुई केशराशि, बिखरे बालोंवाली (मुकुलित, उन्मीलितानाम्) लज्जा के कारण मुँदी हुई आँखोंवाली परन्तु (किञ्चित्, उन्मीलितानाम्) उत्सुकतावश कुछ-कुछ खुले हुए नेत्रोंवाली (सुरत+जनित+खेद+स्विन्न+गण्डस्थलीनाम्) मैथुन-श्रम से उत्पन्न पसीने की बूँदों से गीले-गीले गालोंवाली (अधरमधुवधूनाम्) वधुओं के अधरामृत का (पिबन्ति) पान करते हैं।

भावार्थ—जिसके केश खुल-खुलकर मुख पर पड़ रहे हों, लज्जा के कारण नेत्र बन्द हों परन्तु उत्सुकता के कारण अर्द्ध-मीलित हों, मैथुन-श्रम के कारण गाल पसीने से गीले हो रहे हों, छाती पर ऊपर पड़ी हुई ऐसा स्नेहसिक्त सुन्दरी के अधरामृत पान करने का सौभाग्य पुण्यवान् पुरुषों को ही प्राप्त होता है।

आमीलितनयनानां यः सुरतरसोऽनुसंविदं भाति।
मिथुनैर्मिथोऽवधारितमवितथमिदमेव कामनिर्वहणम्॥ 26॥

शब्दार्थ—(आमीलित+नयनानाम्) सम्भोगानन्द से परवश, अधखुली आँखोंवाले स्त्री-पुरुषों को (यः) जो (सुरत+रसः) सम्भोगानन्द (अनुसंविदम्) पूर्ण अनुभव के अनुरूप (भाति) प्रतीत होता है, उसी सम्भोग को (मिथुनैः) दम्पतियों द्वारा पति-पत्नियों ने (मिथः) परस्पर एक मत से (अवधारितम्) निर्णीत किया है कि (इदम् एव) यही (कामनिर्वहणम्)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्भोग (अवितथम्) वास्तव में अन्वर्थ सम्भोग है।

भावार्थ—जिस सम्भोग में पति-पत्नी दोनों सन्तुष्ट हो जाएँ, वही सम्भोग सार्थक एवं सफल है।

इदम् अनुचितमक्रमश्च पुंसां
यदिह जरास्वपि मान्मथा विकाराः।
तदपि च न कृतं नितम्बिनीनां
स्तनपतनावधिजीवितं रतं वा॥ 27॥[1]

शब्दार्थ—ब्रह्मा ने (इदम्) यह (अक्रमः) बेजा (च) और (अनुचितम्) अनुचित (कृतम्) कार्य किया है (यत्) कि (इह) इस संसार में (पुंसाम्) पुरुषों को (जरासु, अपि) वृद्धावस्था में भी (मान्मथाः विकाराः) कामवासनाएँ [सताती हैं] और (तत्+अपि न) वह कार्य भी अनुचित है कि (नितम्बिनीनाम्) स्त्रियों का (स्तन+पतन+अवधि+जीवितम्) छातियों के ढलने की अवधि तक ही जीवित रहना (वा) अथवा (रतम्) सम्भोग की इच्छा [काम-चेष्टाएँ] करना।

भावार्थ—ब्रह्मा ने यह ठीक नहीं किया कि इस संसार में पुरुषों की वृद्धावस्था में भी कामवासनाएँ जाग्रत् रखीं। इसी प्रकार उसका स्त्रियों के लिए भी ऐसा न करना कि—'जबतक उनके स्तन ढीले न हों वे तभी तक जीएँ अथवा तभी तक कामचेष्टा रखें'—भी अनुचित ही है।

राजन् तृष्णाम्बुराशेर्नहि जगति गतः कश्चिदेवावसानं,
को वार्थोऽर्थः प्रभूतैः स्ववपुषि गलिते यौवने सानुरागे।
गच्छामः सद्म तावद्विकसितकुमुदेन्दीवरालोकिनीनां
यावच्चाक्रम्य रूपं झटिति व जरया लुप्यते प्रेयसीनाम्॥ 28॥

शब्दार्थ—(राजन्) हे राजन्! (जगति) इस संसार में (कश्चित्+एव) कोई भी मनुष्य (तृष्णा+अम्बुराशेः) तृष्णारूपी समुद्र के (अवसानम्)

---

1. अनेक प्रतियों में इस श्लोक के पश्चात् निम्न श्लोक उपलब्ध होता है—

एतत्कामफलं लोके यद् द्वयोरेकचित्तता।
अन्यचित्तकृते कामं शवयोरिव सङ्गमः॥

सम्भोग के समय स्त्री-पुरुष दोनों का एकचित्त हो जाना ही काम का वास्तविक फल पाना है। दोनों का चित्त भिन्न-भिन्न विषयों में लगे रहने पर जो रति की जाती है वह तो मानो दो निर्जीव देहों का सम्मिलन है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्त तक, उस पार (**न हि गतः**) नहीं पहुँच पाया। (**स्व+वपुषि**) अपने शरीर में (**स+अनुरागे**) प्रेम-भरी (**यौवने**) जवानी के (**गलिते**) बीत जाने पर, वृद्धावस्था में सञ्चित किये हुए (**प्रभूतैः**) बहुत-से (**अर्थैः**) धन से भी (**कः वा अर्थः**) क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है ? इसलिए (**यावत्**) जबतक (**विकसित+कुमुद+इन्दीवर+आलोकिनीनाम्**) खिले हुए नीलकमल के समान नेत्रों से निहारनेवाली (**प्रेयसीनाम् रूपम्**) हमारी प्रियतमाओं का रूप-सौन्दर्य (**जरया, आक्रम्य**) वृद्धावस्था से पीड़ित होकर (**झटिति**) शीघ्र ही (**न लुप्यते**) लुप्त न हो जाए (**तावत्**) तबतक, उससे पूर्व ही हम (**सद्म**) अपने घर को (**गच्छामः**) जाते हैं।

भावार्थ—हे राजन्! लालसारूपी सागर अपार है। संसार में आज तक कोई उसका पार नहीं पा सका। हमारे इस शरीर में जवानी व्यतीत हो जाने के पश्चात् वृद्धावस्था में बहुत-सा धन प्राप्त हुआ भी तो वह किस काम का ? हमारी कमलनयनी के सुन्दररूप को कहीं बुढ़ापा नष्ट न कर डाले, अतः अब हम शीघ्र घर लौटना चाहते हैं।

शृङ्गारद्रुमनीरदे प्रचुरतः क्रीडारसस्त्रोतसि,
प्रद्युम्नप्रियबान्धवे चतुरवाङ्मुक्ताफलोदन्वति।
तन्वीनेत्रचकोरपार्वणविधौ सौभाग्यलक्ष्मीनिधौ,
धन्यः कोऽपि न विक्रियां कलयते प्राप्ते नवे यौवने ॥ 29 ॥

शब्दार्थ—(**शृङ्गारद्रुमनीरदे**) शृङ्गाररूपी पौधों को मेघ=बादल के समान सींचनेवाले, (**प्रचुरतः, क्रीडारसस्त्रोतसि**) तन-मन में पूर्णतया रतिक्रिड़ा के महान् स्त्रोत, (**प्रद्युम्न+प्रिय+बान्धवे**) कामदेव के प्रिय साथी (**चतुरवाक्+मुक्ताफल+उदन्वति**) चातुर्यपूर्ण वचनरूपी मुक्ताफल=मोतियों को उगलनेवाले समुद्ररूप, (**तन्वी+नेत्र+चकोर+पार्वणविधौ**) तरुणियों के नयनरूपी चकोरों के लिए पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान आह्लादक (**सौभाग्य+लक्ष्मी+निधौ**) सौभाग्य=सुहागरूपी लक्ष्मी की खान-समान—ऐसे (**नवे यौवने प्राप्ते**) नवयौवन के प्राप्त होने पर भी जो (**कः+अपि**) कोई भी (**विक्रियाम्**) मनोविकार को (**न कलयते**) प्राप्त नहीं होता वह (**धन्यः**) धन्य है।

भावार्थ—यौवनावस्था में पग रखते ही मनुष्यमात्र में शृङ्गाररस का अंकुर उसी प्रकार बढ़ने लगता है जैसे वर्षा में छोटे-छोटे अंकुर फूट पड़ते हैं। तन-मन में सम्भोगेच्छा की धारा प्रवाहित हो जाती है। यौवन कामदेव का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रिय मित्र है, अतः यौवन में पदार्पण करते ही कामदेव कुलाँचे मारने लगता है। चतुरतापूर्ण बातें करते हुए वह प्रेम की पींगें बढ़ाता है। उधर तरुणियों पर भी मादकता छा जाती है और चातक पक्षी की भाँति वे तरुणरूपी चन्द्रमा को ताकती रह जाती हैं। ऐसी मनमोहक अवस्था में भी जिनका मन विकृत नहीं होता वे धन्य हैं।

रागस्यागारमेकं नरकशतमहादुःखसम्प्रातिहेतुर्,
मोहस्योत्पत्तिबीजं जलधरपटलं ज्ञानताराधिपस्य।
कन्दर्पस्यैकमित्रं प्रकटितविविधस्पष्टदोषप्रबन्धं,
लोकेऽस्मिन् ह्यनर्थं निजकुलदहनं यौवनादन्यदस्ति॥ 30॥

शब्दार्थ—(**रागस्य**) अनुराग, प्रेम का (**एकम्, आगारम्**) एकमात्र स्थान (**नरक+शत+महा+दुःख+सम्+प्राप्ति+हेतुः**) सैकड़ों नरकों में मिलनेवाली घोर विपत्तियों की प्राप्ति का कारण (**मोहस्य**) मोह [भ्रम] को (**उत्पत्ति+बीजम्**) उत्पन्न करनेवाला बीज (**ज्ञान+तारा+अधिपस्य**) ज्ञानरूपी चन्द्रमा को छिपाने के लिए (**जलधर+पटलम्**) बादलों के समूह के समान (**कन्दर्पस्य**) कामदेव का (**एक+मित्रम्**) प्रमुख साथी (**प्रकटित+विविध+स्पष्ट+दोष+प्रबन्धम्**) नाना प्रकार के दोषों को प्रकट करनेवाला (**अस्मिन् लोके**) इस संसार में (**अनर्थम्**) अनर्थों का मूल और (**निज+कुल+दहनम्**) निजकुल का दाहक (**यौवनात्**) यौवन के अतिरिक्त (**अन्यत्**) अन्य (**हि**) कुछ भी (**न+अस्ति**) नहीं है।

भावार्थ—इस संसार में यौवन अनर्थों की जड़ है। यौवन के कारण हृदय में अनुराग उत्पन्न होता जाता है। यौवन के कारण मनुष्य पाप-पङ्क में फँसकर नाना प्रकार के दुःख भोगता है। इसी के कारण मोह में फँसकर भले-बुरे का विवेक खो बैठता है, इसी के कारण ज्ञानरूपी चन्द्रमा पर अज्ञान के बादल छा जाते हैं और कामदेव मनुष्य को परममित्र लगने लगता है और उस कामावेश में लोकलज्जा को तिलाञ्जलि देकर नाना प्रकार के पाप कर डालता है, अतः संसार में यौवन के समान अनर्थकारी और कुछ नहीं है।

संसारेऽस्मिन्नसारे कुनृपतिभवनद्वारसेवाकङ्क-
व्यासङ्गव्यस्तधैर्यं कथममलधियो मानसं संविदध्युः।
यद्येताः प्रोद्यदिन्दुद्युतिनिचयभूतो न स्युरम्भोजनेत्राः,
प्रेङ्खत्काञ्चीकलापाः स्तनभरविनमन्मध्यभागास्तरुण्यः॥ 31॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—(**प्र+उद्यत्+इन्दु+द्युति+निचय+भृतः**) पूर्णरूपेण उदित चन्द्रमा की रश्मियों की कान्ति को धारण करनेवाली, कमलनयनी, घुँघरुओं से युक्त करधनी=तगड़ी से अलंकृत, स्तनों के भार से झुके हुए मध्यभाग से सुशोभित सुन्दरियाँ आदि इस संसार में न होतीं तो इस असार संसार में निर्मल बुद्धि के रहते हुए भी धीर लोग दुष्ट राजाओं के यहाँ दरबारदारी की अपमानित नौकरी करके अपने चित्त को अधीर क्यों बनाते ? प्रिया-मिलन की आकांक्षा से ही वे ऐसा अपमानित जीवन जीते हैं।

सिद्धाध्यासितकन्दरे हरवृषस्कन्धावगाढद्रुमे,
गङ्गाधौतशिलातले हिमवतः स्थाने स्थिते श्रेयसि।
कः कुर्वीत शिरः प्रणाममलिनं मानं मनस्वी जनो,
यद्वित्रस्तकुरङ्गशावनयना न स्युः स्मरास्त्रं स्त्रियः ॥ 32 ॥

शब्दार्थ—(**वित्रस्त+कुरङ्ग+शाव+नयनाः**) घबराये हुए हरिणशावक की सी आँखोंवाली (**स्मर+अस्त्रम्**) कामदेव का जगद्विजयी अस्त्ररूपी (**स्त्रियः**) स्त्रियाँ (**न, स्युः, यत्**) यदि न होतीं तो फिर (**सिद्ध+अध्यासित+कन्दरे**) तपस्वियों द्वारा अधिष्ठित गुफाओंवाले, (**हर+वृष+स्कन्ध+ अवगाढ+द्रुमे**) शिव की सवारी=नन्दी के कन्धे की रगड़ से टूटे हुए वृक्षोंवाले और (**गङ्गाधौत+शिला+तले**) गङ्गाजल से धुली चट्टानोंवाले (**हिमवतः स्थाने**) हिमालय के ऐसे स्थानों में (**श्रेयसि**) परमगति, मोक्ष के लिए (**स्थिते**) प्रयत्नशील होनेवाला (**कः**) कौन (**मनस्वी जनः**) विचारशील मनुष्य अपने (**शिरः**) सिर से [कुत्सित नृपों के चरणों में] (**प्रणाममलिनम्, मानम्**) झुककर प्रणाम करके अपने आत्मसम्मान को नष्ट (**कुर्वीत**) करता अर्थात् ऐसे अपमान को कोई भी न सहता।

भावार्थ—यदि भयभीत हरिणशावकों के समान चञ्चल नेत्रोंवाली, कामदेव की जगद्विजयी अस्त्ररूपी रमणियाँ न होतीं तो फिर सिद्धों से सेवित गुफाओं, शिव जी के वाहन नन्दी के द्वारा भग्न वृक्षोंवाले वनों और गङ्गाजल द्वारा धोई गई हिमालय की चट्टानों पर रहनेवाला कौन स्वाभिमानी पुरुष अपने मस्तक को कुत्सित नृपों के चरणों पर प्रणाम करके मलिन अतएव गौरवहीन करता ? भाव यह है कि चञ्चललोचना सुन्दरियों के कारण ही मानी पुरुषों को दुष्ट धनिकों के सामने सिर झुकाना पड़ता है।

संसार तव पर्यन्तपदवी न दवीयसी।
अन्तरा दुस्तरा न स्युर्यदि रे मदिरेक्षणाः ॥ 33 ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—(रे संसार) अरे छिछले संसार-सागर! (तव) तेरे (अन्तरा) बीच से (दुस्तरा) पार जाने में रोक डालनेवाली (मदिर+ ईक्षणाः) नशीली आँखोंवाली ये सुन्दरियाँ (यदि, न, स्युः) यदि न होतीं तो (तव) तेरा (पर्यन्त+पदवी) अन्तिम छोर, किनारा (दवीयसी न) दूर नहीं होता।

भावार्थ—रे छिछले संसार-सागर! तुम्हारा अन्तिम छोर बहुत दूर नहीं है, यदि मध्य में दुर्लंघ्य महानदियों की भाँति मदभरे नयनोंवाली ये सुन्दरियाँ न होतीं तो तुझे तर जाना कठिन न होता।

दिश वनहरिणीभ्यो वंशकाण्डच्छवीनां,
कवलमुपलकोटिच्छिन्नमूलं कुशानाम्।
शकयुवतिकपोलापाण्डुताम्बूलवल्ली-
दलमरुणनखाग्रैः पाटितं वा वधूभ्यः॥ 34॥

शब्दार्थ—हे मानव! तू या तो जंगल में डेरा डालकर (उपल+कोटि+छिन्नमूलम्) धारदार पत्थरों से जड़ से काटे (वंशकाण्डच्छवीनाम्) बांस की कोंपलों के से रंगवाले (कुशानाम्) घास के (केवलम्) ग्रास (वन+हरिणेभ्यः) जंगली हिरणियों को (दिश) दे, खिला अथवा घर-गृहस्थी बसाकर (अरुण+नख+अग्रैः) लाल-लाल नाखूनों की नोक से (पाटितम्) छिले हुए (शक-युवति+कपोल+अपाण्डु+ताम्बूल+वल्ली+दलम्) शक तरुणियों के गालों के समान गोरे-गोरे पान के पत्तों की गिलौरी (वधूभ्यः दिश) अपनी प्रियतमाओं को दिया कर [खिलाया कर]।

भावार्थ—हे मानव! तू या तो जंगल में डेरा डालकर [वनवासी बनकर] धारदार पत्थरों से बाँस की कोंपलों के समान ताजा घास छील-छीलकर जंगली हिरणियों को खिलाए जा अथवा गृहस्थ बसाकर अपने गुलाबी नाखूनों की नोक से छिले हुए, शक-तरुणियों के गालों के समान गोरे-गोरे, पान के पत्तों की गिलौरियाँ बना-बनाकर अपनी प्रेयसियों को दिया कर। [मनुष्य साधु बने या सुखी व सरसगृही जीवन व्यतीत करे]।

असाराः सन्त्येते विरतिविरसायासविषया,
जुगुप्स्यन्तां यद्वा ननु सकलदोषास्पदमिति।
तथाप्येतद् भूमौ न हि परहितात्पुण्यमधिकं,
न चास्मिन्संसारे कुलवयदृशो रम्यमपरम्॥ 35॥[1]

1. अनेक प्रतियों में इस श्लोक के पश्चात् निम्न श्लोक भी दृष्टिगोचर होता है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—संसार के (**एते**) ये सभी (**विरस+आयास+विषयाः**) विषय-भोग कष्टदायक और नीरस होने के कारण (**विरति**) अन्त में (**असाराः**) सारहीन (**सन्ति**) हैं (**यत्वा**) अथवा (**ननु**) इन्हें (**सकल+दोष+आस्पदम्**) सम्पूर्ण दोषों का भण्डार (**इति**) समझकर (**जुगुप्स्यन्ताम्**) लोग इनकी निन्दा करें (**तथा+अपि**) फिर भी (**एतत् भूमौ**) इस पृथिवी पर (**परहितात्**) परोपकार से (**अधिकतम**) बढ़कर (**पुण्यम्**) पुण्यकार्य (**न हि**) नहीं है (**च**) और (**अस्मिन् संसारे**) इस संसार में (**कुवलय+दृशः**) कमलनयनियों से (**अपरम्**) बढ़कर (**रम्यम्**) सुन्दर (**न**) कुछ नहीं है।

भावार्थ—संसार के सभी विषय-भोग अत्यन्त कष्टदायक और परिणाम में विरस [नीरस] होने के कारण असार [सारहीन] हैं, अन्त में सारा मजा किरकिरा हो जाता है। इन विषय-विलासों को संसारभर के पापों की जड़ मानकर भले ही लोग इनकी निन्दा करें, परन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि संसार में परोपकार से बढ़कर और कुछ पुण्यकर्म नहीं है और कमललोचनी सुन्दरी से बढ़कर अन्य कोई सुन्दर वस्तु नहीं है।

मात्सर्यमुत्सार्य विचार्य कार्य-
मार्याः समर्यादमिदं वदन्तु।
सेव्या नितम्बाः किमु भूधराणा-
मुत स्मरस्मेरविलासिनीनाम्॥ 36॥

शब्दार्थ— हे (**आर्याः**) आर्यजनो! (**मात्सर्यम्**) ईर्ष्या (**उत्सार्य**) त्यागकर (**कार्यम्**) कर्तव्यकर्म का (**विचार्य**) विचार करके (**समर्यादम्**) मर्यादा का ध्यान रखते हुए (**इदम्**) यह (**वदन्तु**) कहो कि (**किम्+उ**) क्या (**भूधराणाम्**) पर्वतों के (**नितम्बाः**) कटि-प्रदेश [गुहा, कन्दरा आदि]

भवन्तो वेदान्तप्रणिहितधियामाप्तगुरवो,
विदग्धालापानां वयमपि कवीनामनुचराः।
तथाप्येतद् भूमौ नहि परहितात्पुण्यमधिकं,
न चास्मिन्संसारे कुवलयदृशोरन्यमपरम्॥ 52॥

आप वेदान्त-शिरोमणियों के पूज्य शिक्षक हैं और हम विचित्र कामशास्त्र विनोदी कवियों के दास हैं, तथापि हमारी यह धारणा है कि [वैराग्य पक्ष में] परोपकार से बढ़कर कोई पुण्य नहीं है और [अनुराग पक्ष में] इस संसार में कमलनयनियों से बढ़कर कोई सुन्दर वस्तु नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का (सेव्याः) आश्रय लेना चाहिए (उत) अथवा (स्मर+स्मेर+विलासिनीनाम्) कामवेग से मुस्कुराती विलासिनियों के (नितम्बाः) कटिदेश का सेवन करना चाहिए।

भावार्थ—हे विद्वानो! ईर्ष्या-द्वेष या पक्षपात को छोड़कर, भली-भाँति सोच-विचारकर मर्यादा का ध्यान रखते हुए यह बताएँ कि पर्वतों की गुहाओं का सेवन किया जाए अथवा युवतियों के नितम्बों का आश्रय लिया जाए।

विशेष—इस श्लोक में श्लेषालंकार है। नितम्ब के दो अर्थ हैं—1. पर्वत का मध्यभाग और 2. स्त्री का कटिप्रदेश।

श्लोक का भाव यह है कि [वैराग्यपक्ष में] तपस्या करनी हो तो पर्वत-गुहाओं का आश्रय लेना चाहिए और [अनुरागपक्ष में] स्त्री-नितम्ब सेवन करना चाहिए।

संसारेऽस्मिन्नसारे परिणतितरले द्वे गती पण्डितानां,
तत्त्वज्ञानामृताम्भः परिललितधियां यातु कालः कदाचित्।
नो चेन्मुग्धाङ्गनानां स्तनजघनघना भोगसम्भोगिनीनां,
स्थूलोपस्थस्थलीषु स्थगितकरतलस्पर्शलीलोद्यतानाम्॥ 37॥

शब्दार्थ—(अस्मिन्) इस (असारे) सारहीन और (परिणति+ तरले) परिणाम में चञ्चल (संसारे) संसार में (पण्डितानाम्) विद्वानों के लिए (द्वे गती) दो ही मार्ग हैं—वे या तो [वैराग्यपक्ष में] (तत्त्व+ज्ञान+अमृत+अम्भः+परिललित+धियाम्) ब्रह्मज्ञानरूपी अमृत-रस में पूर्णरूप से सराबोर होकर (कदाचित्) कभी (कालः यातु) अपने समय को व्यतीत करें, (नो चेत्) यदि ऐसा सम्भव न हो सके तो [अनुरागपक्ष में] (स्तन+जघन+घन+आभोग+सम्भोगिनीनाम्) अपने पुष्ट स्तनों और सघन जघनों में खूब मस्ती में भरकर सम्भोग की इच्छावाली (मुग्ध+अङ्गनानाम्) रति के योग्य रमणियों की (स्थूल+उपस्थ+स्थलीषु) स्थूल काम-मन्दिर [योनि] पर (स्थगित+करतल+स्पर्श+लीला+उद्यतानाम्) हथेली थपथपाकर स्पर्श-सुख का अनुभव करते हुए (कालः यातु) समय को बिताएँ।

भावार्थ—इस असार एवं चलते संसार में समझदार लोगों के लिए दो ही रास्ते हैं—या तो वे ब्रह्मज्ञानरूपी अमृतपान में मग्न रहें कि शायद जीवन-नैया पार लग जाए अथवा सुपुष्ट स्तन, स्थूल नितम्ब और सघन जाँघोंवाली भोगासक्त रमणी की स्थूल योनि पर हथेली फेरने और थपथपाने के सुख का अनुभव करें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आवासः क्रियतां गाङ्गे पापहारिणि वारिणि।
स्तनद्वये तरुण्या वा मनोहारिणि हारिणि॥ 38॥

शब्दार्थ—मनुष्य को या तो (**पापहारिणि**) सब प्रकार के पापों को हरनेवाली (**गाङ्गे वारिणि**) गङ्गा के जलभरे तट पर (**आवासः**) निवास (**क्रियताम्**) करना चाहिए (**वा**) अथवा (**मनोहारिणि**) मन को हरनेवाली (**हारिणि**) मुक्ताहार से हृदयहारिणी, सुन्दर प्रतीत होनेवाली (**तरुण्याः**) नवयुवति के (**स्तन+द्वये**) दोनों स्तनों के पास (**आवासः क्रियताम्**) निवास करना चाहिए।

भावार्थ—मनुष्य को चाहिए कि वह या तो गङ्गातट पर कुटिया बनाकर रहे जिससे निर्मल गङ्गाजल के पान से सारे पाप धुल जाएँ अथवा मुक्ताहार से विभूषित मनोहारिणी युवतियों के कुचयुगलों पर रमण करे।

विशेष—गंगा में स्नान करने से अथवा उसका जलपान करने से पाप नहीं धुलते। यदि गंगा के स्नान आदि से पाप धुलने की बात सत्य होती तो गंगा के तट पर रहनेवाले वसिष्ठ एवं विश्वामित्र एक-दूसरे के रक्त के प्यासे न बनते। भाव यह है कि गंगाजल पीकर शरीर से स्वस्थ होकर साधन करे, अथवा सृष्टि की सार सुन्दर रमणियों से रमण करे।

किमिह बहुभिरुक्तैर्युक्तिशून्यैः प्रलापैर्,
द्वयमिह पुरुषाणां सर्वदा सेवनीयम्।
अभिनवमदलीलालालसं सुन्दरीणां,
स्तनभरपरिखिन्नं यौवनं वा वनं वा॥ 39॥

शब्दार्थ—(**इह**) यहाँ, सांसारिक जीवन में (**युक्तिशून्यैः**) तर्कशून्य (**बहुभिः**) बहुत-सी (**उक्तैः**) उक्तियों और (**प्रलापैः**) व्यर्थ के वचनों के कहने से (**किम्**) क्या लाभ ? (**इह**) इस संसार में (**पुरुषाणाम्**) पुरुषों के लिए (**द्वयम्**) दो बातें ही (**सर्वदा**) सदा (**सेवनीयम्**) सेवन करने योग्य हैं—या तो [अनुराग में] मग्न होकर (**अभिनव+मदलीला+लालसम्**) नई-नई काम-क्रीड़ा की इच्छुक (**सुन्दरीणाम्**) युवतियों की (**स्तन+भर+परिखिन्नम्**) उठी छातियों के बोझ से एकदम अलसाई (**यौवनम्**) जवानी [भोग्य योग्य है] (**वा**) अथवा [वैराग्य में] मस्त होकर (**वनम्**) घनघोर जंगल [सेवन करने योग्य हैं]।

भावार्थ—यहाँ युक्तिशून्य, नाना प्रकार के व्यर्थ प्रलाप करने से क्या लाभ ? इस संसार में मनुष्यों के लिए भोगने की दो ही वस्तुएँ हैं—या तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्तन-भार से अलसाकर काम-क्रीड़ा के लिए लालायित सुन्दरी नवयुवति का यौवन अथवा घनघोर जंगल।

सत्यं जना वच्मि न पक्षपाता-
ल्लोकेषु सप्तस्वपि तथ्यमेतत्।
नान्यन्मनोहारि नितम्बिनीभ्यो,
दुःखैकहेतुर्न च कश्चिदन्यः ॥ 40 ॥

शब्दार्थ—(जनाः) हे सज्जनो! (सत्यम्, वच्मि) मैं सत्य कहता हूँ, (पक्षपातात् न) पक्षपात से नहीं। (सप्तसु) सातों (लोकेषु) लोकों में (अपि) भी (एतत्, तथ्यम्) यह बात सत्य है, यथार्थ है कि [अनुरागपक्ष में] (नितम्बिनीभ्यः) रमणियों से बढ़कर (मनोहारि) लुभावनी (अन्यत् न) दूसरी कोई वस्तु नहीं है (च) साथ ही [वैराग्यपक्ष में] (दुःख+एक+हेतुः) दुःख का एकमात्र कारण भी स्त्री के सिवाय (अन्यः कश्चित् न) और कोई वस्तु नहीं है।

भावार्थ—हे सज्जनो! मैं सत्य कहता हूँ, इसमें तनिक भी पक्षपात नहीं है। यह बात एकदम यथार्थ है कि सातों लोकों में रमणी से बढ़कर सुखदायिनी अन्य कोई वस्तु नहीं है और यह भी यथार्थ है कि कामिनी से बढ़कर कष्टदायिनी भी अन्य कोई वस्तु नहीं है।

कान्तेत्युत्पललोचनेति विपुलश्रोणीभरेत्युन्नमत्-
पीनोत्तुङ्गपयोधरेति सुमुखाम्भोजेति सुभ्रूरिति।
दृष्ट्वा मुह्यति मोदतेऽभिरमते प्रस्तौति विद्वानपि,
प्रत्यक्षाशुचिभस्त्रिकां स्त्रियमहो मोहस्य दुश्चेष्टितम् ॥ 41 ॥

शब्दार्थ—(प्रत्यक्ष+अशुचि+भस्त्रिकाम्) प्रत्यक्ष में अपवित्र चमड़े की गुड़िया के समान (स्त्रियम्) रमणी को (दृष्ट्वा) देखकर (विद्वान्+अपि) विचारशील विद्वान् भी (मुह्यति) मोहित हो जाता है और मोह के वशीभूत होकर—"(कान्ता इति) यह सुन्दरी है, (उत्पललोचना इति) कमल के समान नेत्रोंवाली है (विपुल+श्रोणीभरा इति) पुष्ट और विशाल नितम्बोंवाली है (उन्नमत्+पीन+उत्तुङ्ग+पयोधरा इति) उभरे हुए पीन=मोटे और उन्नत स्तनोंवाली है, (सुमुख+अम्भोजा इति) सुन्दर कमल जैसे मुखवाली है (सुभ्रूः इति) सुन्दर भौंहोंवाली है"—ऐसा सोचता हुआ (मोदते) प्रसन्न होता है (अभिरमते) रमण करता है और (प्रस्तौति) अनेक प्रकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से उसकी प्रशंसा करता है। (**अहो**) अहो! (**मोहस्य दुश्चेष्टितम्**) मोह का यह कुप्रभाव तो देखो! महान् आश्चर्य है।

भावार्थ—विद्वान् भी हाड-मांसभरे चमड़े की गुड़िया युवती को देखकर उसकी प्रशंसा के पुल बाँधता है कि—'यह कामिनी है, कमलनयनी है, पुष्ट और विशाल नितम्बोंवाली है, उभरे स्तनोंवाली है, मुख खिले कमल के समान है और भौंहें अत्यन्त सुन्दर हैं।' ऐसा सोचकर उस पर मतवाला हो जाता है और उसके साथ काम-लीला करता है। मोहजाल तो देखो, यह मनुष्य को कैसे भरमाता है।

विशेष—कवि का नारी को अपावन=अपवित्र कहना अयुक्त है।

स्मृता भवति तापाय दृष्ट्वा चोन्मादकारिणी।
स्पृष्टा भवति मोहाय सा नाम दयिता कथम्॥ 42॥

शब्दार्थ—जिसे (**स्मृता**) स्मरण करने पर (**तापाय भवति**) सन्ताप, बुखार चढ़ता है (**दृष्ट्वा**) जो दिखाई पड़ने पर (**उन्मादकारिणी**) पागल बना देती है (**च**) और (**स्पृष्टा**) छू जाने पर (**मोहाय भवति**) मोहित कर लेती है—(**सा**) ऐसी स्त्री को लोग (**दयिता**) प्रिया, प्रेयसी (**कथम् नाम**) क्यों कहते हैं?

भावार्थ—स्त्री की बात जहाँ छिड़ी वहाँ हृदय सन्तप्त होने लगता है। जहाँ उसे एक बार देखा मनुष्य पगला जाता है और ज्यों ही उसका स्पर्श हुआ कि होश गुम हो जाता है, फिर भला ऐसी स्त्री को प्रेयसी कैसे कहा जा सकता है?

तावदेवामृतमयी यावल्लोचनगोचरा।
चक्षुष्पथादतीता तु विषादप्यतिरिच्यते॥ 43॥

शब्दार्थ—(**यावत्**) जबतक [स्त्रियाँ] (**लोचनगोचरा**) आँखों के सामने होती हैं (**तावत्, एव**) तबतक ही वे (**अमृतमयी**) अमृत के समान मधुर प्रतीत होती हैं (**तु**) परन्तु जब वे (**चक्षुः पथात्**) आँखों से (**अतीता**) दूर हो जाती हैं तब (**विषात्, अपि**) विष से भी (**अतिरिच्यते**) बढ़कर विरह-वेदना पहुँचानेवाली हो जाती हैं।

भावार्थ—स्त्री जबतक आँखों के सामने होती है तबतक आनन्ददायिनी-सी लगती है, परन्तु आँख से ओझल होते ही विरह में विष से भी बढ़कर दुःखद हो जाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नामृतं न विषं किञ्चिदेकां मुक्त्वा नितम्बिनीम्।
सैवामृतलता रक्ता विरक्ता विषवल्लरी॥ 44॥

शब्दार्थ—(**एकाम्**) अकेली (**नितम्बिनीम्**) पृथुल नितम्बोंवाली सुन्दरी को (**मुक्त्वा**) छोड़कर [इस संसार में] (**न, अमृतम्**) न कोई अमृत है (**न विषम्**) न कोई विष ही है। (**सा एव**) वही स्त्री (**रक्ता**) अनुराग से समीप रहे, प्रेमयुक्त रहे तो (**अमृत+लता**) अमृत की बेल है और (**विरक्ता**) स्नेहरहित होकर दूर रहने लगे तो (**विष+वल्लरी**) विष की बेल हो जाती है।

भावार्थ—संसार में स्त्री ही ऐसी वस्तु है जो अमृत भी है और विष भी है। अनुरागभरी रहनेवाली स्त्री अमृत की बेल है और प्रतिकूल व्यवहार करनेवाली विष की बेल बन जाती है।

आवर्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानां,
दोषाणां सन्निधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानाम्।
स्वर्गद्वारस्य विघ्नो नरकपुरमुखं सर्वमायाकरण्डं,
स्त्रीयन्त्रं केन सृष्टं विषममृतमयं प्राणिलोकस्य पाशः॥ 45॥

शब्दार्थ—(**संशयानाम्, आवर्तः**) शंकाओं का भँवर (**अविनय+भवनम्**) उद्धतता, ढिटाई का घर (**साहसानाम् पत्तनम्**) दुस्साहस का नगर (**दोषाणाम्, सन्निधानम्**) दुर्गुणों की अक्षयनिधि (**कपट+शतमयम्, अप्रत्ययानाम् क्षेत्रम्**) सैकड़ों छल-कपटों से पूर्ण अविश्वासों का उत्पत्तिस्थान (**स्वर्गद्वारस्य विघ्नः**) स्वर्गद्वार का विघ्न (**नरकपुर+मुखम्**) नरकनगरी का मुख्य प्रवेशमार्ग (**सर्व+माया+करण्डम्**) सब प्रकार की धोखाधड़ी की पिटारी (**विषम्+अमृतमयम्**) अमृतरूपी विष (**प्राणिलोकस्य पाशः**) सब लोगों के गले की फाँसी (**स्त्रीयन्त्रम्**) यह स्त्रीरूपी यन्त्र (**केन सृष्टम्**) किसके द्वारा बनाया गया?

भावार्थ—न जाने इस स्त्रीरूपी यन्त्र को किसने बनाया है जिसके हृदय में शंकाएँ भरी रहती हैं, जो सदा मुँहजोरी करती है, जो सदैव दुस्साहस पर उतारू रहती है, जिसमें अवगुण ही अवगुण भरे हुए हैं, जो सदा अविश्वसनीय है, जो पुण्यमार्ग में अड़ंगा लगाती और पाप की ओर खींच ले जाती है और धोखाधड़ी करके ऐसा मायाजाल रचती है कि अमृतरूप धरकर विष का काम करती है और सभी प्राणियों के गले की फाँसी है।

विशेष—महाराज भर्तृहरि स्त्री द्वारा ठगे गये थे, फलस्वरूप उन्होंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्त्रीजाति के लिए चुन-चुनकर कटु, कठोर एवम् अनुचित शब्दों का प्रयोग किया है। किसी एक स्त्री के दोषों को सारी जाति पर लादना अनुचित है।

सत्यमेव न शशाङ्क एष वदनीभूतो न चेन्दीवर-
द्वन्द्वं लोचनतां गतं न कनकैरप्यङ्गयष्टिः कृता।
किन्त्वेवं कविभिः प्रतारितमनस्तत्त्वं विजानन्नपि,
त्वङ्मांसास्थिमयं वपुर्मृगदृशां मन्दो जनः सेवते॥ 46॥

शब्दार्थ—(एषः शशाङ्कः) यह प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाला चन्द्रमा **(सत्यमेव)** वास्तव में [मृगनयनियों का] **(वदनीभूतः, न)** मुख नहीं बना है **(च)** और **(इन्दीवरद्वन्द्वम् लोचनताम्, न गतम्)** न नीले कमल ही उसके दो नेत्र बने हैं **(अङ्गयष्टिः)** उसकी देहलता **(अपि)** भी **(कनकैः)** सोने से **(न कृता)** नहीं बनाई गई है **(किन्तु)** किन्तु चन्द्रमुखी, कमलनयनी, स्वर्णाङ्गी **(एवम्)** इस प्रकार कहकर **(कविभिः)** कवियों द्वारा **(प्रतारितमनः)** बहकाये जाकर **(मन्दः जनः)** मूर्ख लोग **(तत्त्वम्, विजानन् अपि)** वास्तविक बात को जानते हुए भी **(मृगदृशाम्)** मृगनयनियों, कामिनियों के **(त्वक्+मांस+अस्थिमयम्)** चमड़ी, मांस और हड्डियों से भरे **(वपुः)** शरीर को **(सेवते)** सेवन, भोग करते हैं।

भावार्थ—चन्द्रमा कभी आकाश से उतरकर किसी युवती का मुख नहीं बना, और न कमल ही किसी तालाब से आकर किसी तरुणी की आँख में समाये हैं, और न ही उसकी देह सोने की बनी है। यह सब कवियों की झूठी कल्पना है। वास्तविक बात को जानते हुए भी मूर्ख लोग हाड-मांस के बने कामिनियों के शरीर का सेवन करते हैं।

लीलावतीनां सहजा विलासा-
स्त एव मूढस्य हृदि स्फुरन्ति।
रागो नलिन्या हि निसर्गसिद्ध-
स्तत्र भ्रमत्येव मुधा षडङ्घ्रि॥ 47॥

शब्दार्थ—(लीलावतीनाम्) चञ्चल युवतियों की **(विलासाः)** विलास-लीलाएँ, नाज़-नखरे **(सहजाः)** जन्मजात [स्वाभाविक] हैं परन्तु **(ते एव)** वे स्वाभाविक लीलाएँ ही **(मूढस्य हृदि)** मूर्ख के मन में **(स्फुरन्ति)** गुदगुदी पैदा करती हैं, लोग उन्हें अपने लिए समझकर प्रसन्न होते हैं। जैसे **(नलिन्याः)** कमलिनी की **(रागः)** लालिमा, लाल रंग **(निसर्ग+सिद्धः)** स्वाभाविक, जन्म से ही है **(हि)** परन्तु **(तत्र)** उस लाल रंग पर **(षड्+**

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अङ्घ्रिः) छह पैरवाला भौंरा (मुधा एव) व्यर्थ ही (भ्रमति) घूमता है, लट्टू हो जाता है कि यह ललाई मेरे लिए ही है।

भावार्थ—कमल के पुष्प लाल होते हैं परन्तु भौंरा समझता है कि यह लालिमा मेरे लिए है और इसी भ्रम में कमल के चारों ओर चक्कर काटता रहता है। इसी प्रकार युवतियाँ स्वभाव से सुन्दर व नाज़-नखरे-वाली होती हैं, उनकी बोल-चाल लुभावनी होती है, परन्तु मूर्ख समझता है कि युवतियाँ अपनी सारी विलास-लीलाएँ उसी के लिए कर रही हैं।

यदेतत् पूर्णेन्दुद्युतिहरमुदाराकृतिवरं,
मुखाब्जं तन्वङ्ग्याः किल वसति यत्राधरमधु।
इदं तत्किम्पाकद्रुमफलमिदानीमतिरसं,
व्यतीतेऽस्मिन्काले विषमिव भविष्यत्यसुखदम्॥ 48॥

शब्दार्थ—(तन्वङ्ग्याः) कोमलाङ्गी युवती का (यत् एतत्) यह जो (मुख+अब्जम्) मुख-कमल है वह (पूर्ण+इन्दु+द्युति+हरम्) पूर्णिमा के चन्द्रमा की कान्ति को हरनेवाला (उदार+आकृति+वरम्) चेहरा अत्यन्त सुन्दर है (यत्र) जिसमें, इसके (अधर+मधु वसति किल) अधरोष्ठ में निश्चय ही मकरन्द अथवा अमृत रहता है (तत्, इदम्) यह मुख-कमल (किम्पाक+द्रुम+फलम् इव) विषमुष्टि=कुचले के पेड़ के फल के समान (इदानीम्) इस समय=यौवन में देखने में तो (अतिरसम्) अत्यन्त स्वादिष्ठ [लगता है किन्तु] (अस्मिन् काले) इस क्षण के (व्यतीते) बीत जाने पर, वृद्धावस्था में (विषम् इव) विष के समान (असुखदम्) दुःखदायी (भविष्यति) हो जाता है।

भावार्थ—नवयौवनाओं का मुख-कमल पूर्णिमा के चन्द्रमा की कान्ति को हरनेवाला है और इनके अधरोष्ठ में अमृत भरा रहता है—यह सब झूठ है। वस्तुतः यौवन में सुन्दरी का कमल-सा मुख विषमुष्टि=कुचले के फल की भाँति देखने में सुन्दर लगता है परन्तु वृद्धावस्था में विष का काम करता है।

उन्मीलत्त्रिवलीतरङ्गनिलया प्रोत्तुङ्गपीनस्तन-
द्वन्द्वेनोद्यतचक्रवाकमिथुना वक्त्राम्बुजोद्भासिनी।
कान्ताकारधरा नदीयमभितः क्रूराशया नेष्यते,
संसारार्णवमज्जनं यदि ततो दूरेण सन्त्यज्यताम्॥ 49॥

शब्दार्थ—(उन्मीलत्+त्रिवली+तरङ्ग+निलया) ऊपर उठनेवाली त्रिवलीरूप तरङ्गों से पूर्ण (प्र+उत्तुङ्गपीन+स्तन+द्वन्द्वेन, उद्यत+चक्रवाक+

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिथुना) ऊँचे और पुष्ट दो स्तनों के रूप में मानो चक्रवाक पक्षी का जोड़ा उसमें तैर रहा है (वक्त्र+अम्बुज+उद्भासिनी) मुख खिले हुए कमल के रूप में सुशोभित हो रहा है (कान्ता+आकार+धरा) ऐसी रमणीरूप-धारिणी (इयम्, नदी) यह नदी (अभिता, क्रूर+आशया) चारों ओर से टेढ़े प्रवाहोंवाली अथवा सर्वथा कुटिल हृदयवाली है। हे संसार के लोगो! (यदि) यदि तुम (संसार+अर्णव+मज्जनम्) संसार-सागर में डूब जाना (न, इष्यते) [नहीं चाहते (ततो) तो (दूरेण) दूर से ही (सन्त्यज्यताम्) इसको पूर्णतया त्याग दो।

भावार्थ—लोगो! जिसे तुम नारी समझते हो, यह नारी नहीं विषम नदी है। इसके पेट पर जो त्रिवली पड़ी हुई है, वह नदी में उठनेवाली लहरों का समूह है। अत्यन्त पुष्ट और उभरे हुए इसके दोनों स्तन नदी में तैरनेवाले मस्तीभरे चकवा-चकवी के जोड़े के समान हैं। इसका मुख पानी पर शोभायमान कमल है। इस रमणीरूपी विषम नदी का हृदय अत्यन्त घातक है। यदि तुम संसार-सागर में डूबना नहीं चाहते तो नारी से दूर-दूर ही रहो।

जल्पन्ति सार्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः।
हृदये चिन्तयन्त्यन्यं प्रियः को नाम योषिताम्॥ 50॥

शब्दार्थ— ये युवतियाँ (अन्येन सार्धम्) किसी अन्य के साथ (जल्पन्ति) बातें करती रहती हैं और (सविभ्रमाः) हाव-भाव, चटक-मटक के साथ (अन्यम् पश्यन्ति) किसी और को देखती रहती हैं तथा (हृदये) हृदय में (अन्यम् चिन्तयन्ति) किसी तीसरे के बारे में सोचती रहती हैं। ऐसी स्थिति में (योषिताम्) युवतियों का (प्रियः) प्यारा (कः नाम) कौन है, अर्थात् कोई नहीं। ये ऐकान्तिक और सच्चा प्यार किसी से नहीं करतीं।

भावार्थ—युवतियाँ घुल-मिलकर बातें तो किसी एक से करती हैं, अपने हाव-भाव किसी दूसरे को दिखाती हैं और मन में किसी तीसरे के सम्बन्ध में सोचती रहती हैं, भला ऐसी युवतियों को कोई ऐकान्तिक प्रिय लग सकता है?

विस्तारितं मकरकेतनधीवरेण,
स्त्रीसंज्ञितं बडिशमत्र भवाम्बुराशौ।
येनाचिरात्तदधरामिषलोलमर्त्य-
मत्स्यान्विकृष्य विपचत्यनुरागवह्नौ॥ 51॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—(अत्र) यहाँ, इस (भव+अम्बु+राशौ) संसाररूपी विकराल समुद्र में (मकरकेतन+धीवरेण) कामदेवरूपी मछुवे ने [मनुष्यरूपी मछली को फँसाने के लिए] (स्त्रीसंज्ञितम्) स्त्रीरूपी (बडिशम्) मछली पकड़ने के काँटे को (विस्तारितम्) फैला रखा है (येन) जिसके द्वारा वह (अचिरात्) शीघ्र ही (तत्) उस (अधर+आमिष+लोल+मर्त्य+मत्स्यान्) कामिनी के अधररूपी मांस के लिए लालायित मनुष्यरूपी मछलियों को (विकृष्य) खींचकर (अनुराग+वह्नौ) प्रेमरूपी आग में (विपचति) भूनता है।

भावार्थ—जैसे मछुवा मछली पकड़ने के लिए काँटे में लाल-लाल मांस लगाकर उसे पानी में डाल देता है; मछली मांस के लालच में काँटा निगल जाती है और फँस जाती है; मछुआ उसे पानी से बाहर खींच लेता है और भूनकर खा जाता है, वैसे ही कामदेव नारी को चारा बनाकर संसाररूपी समुद्र में छोड़ देता है। उससे नर को फँसाता है, फिर उसे प्रेमरूपी अग्नि में भूनकर पचा जाता है।

अपसर सखे दूरादस्मात्कटाक्षविषानलात्,
प्रकृतिविषमाद् योषित्सर्पाद्विलासफणाभृतः ।
इतर फणिना दष्टाः शक्याश्चिकित्सितुमौषधै-
श्चतुरवनिताभोगिग्रस्तं त्यजन्ति हि मन्त्रिणः ॥ 52 ॥

शब्दार्थ—(सखे) हे मित्र! (कटाक्ष+विष+अनलात्) कनखियों में विषरूपी ज्वाला से भरी (प्रकृति+विषमात्) स्वभाव से कुटिल (विलास+फणाभृतः) हाव-भावों के फणोंवाली (अस्मात्) इस (योषित् सर्पात्) स्त्रीरूपी सर्प से (दूरात्, अपसर) तुम दूर से ही भाग जाओ क्योंकि (इतर, फणिना) अन्य सर्पों, असली साँपों से (दष्टाः) डसा हुआ मनुष्य (औषधैः) ओषधियों द्वारा (चिकित्सितुम्, शक्यः) ठीक होना सम्भव है परन्तु (चतुर+वनिता+भोगि+ग्रस्तम्) चतुर वनितारूपी सर्प द्वारा डसे हुए मनुष्य को (मन्त्रिणः) मन्त्र-तन्त्र जाननेवाले (हि) भी (त्यजन्ति) छोड़ देते हैं, ऐसे स्थान पर वे भी कुछ नहीं कर सकते।

भावार्थ—संसार में अनेक प्रकार के सर्प हैं। भयंकर से भयंकर सर्प के काटे की भी दवा है, परन्तु एक सर्प ऐसा है जिसके औषध-उपचार की तो बात ही क्या, मन्त्र-तन्त्र का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वह है स्त्रीरूपी सर्पिणी। यह भिन्न-भिन्न प्रकार के हाव-भाव और कटाक्षरूपी फण फैलाए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहती है। प्रत्येक फण में दो धधकती आँखें हैं जिनसे ज्वाला निकलती रहती है। हे मित्र! ऐसी विषैली नारी से तुम दूर ही रहो, इसी में कल्याण है।

व्यादीर्घेण चलेन वक्रगतिना तेजस्विना भोगिना,
नीलाब्जद्युतिनाऽहिना वरमहं दष्टो न तच्चक्षुषा।
दष्टे सन्ति चिकित्सका दिशि दिशि प्रायेण धर्मार्थिनो,
मुग्धाक्षीक्षणवीक्षितस्य न हि मे वैद्यो न चाप्यौषधम्॥ 53॥

शब्दार्थ—(व्यादीर्घेण) बहुत लम्बे **(चलेन)** चञ्चल स्वभाववाले **(वक्रगतिना)** टेढ़ी चालवाले **(तेजस्विना)** अत्यन्त तेजभरे **(नील+अब्ज+द्युतिना)** नीलकमल की-सी कान्तिवाले **(भोगिना)** फणधारी **(अहिना)** साँप द्वारा **(अहम्)** मैं **(दष्टः)** डसा जाऊँ, यह **(वरम्)** अच्छा है परन्तु **(न तत् चक्षुषा)** कान तक फैले हुए, चञ्चल नयनों की टेढ़ी चितवनवाली अति मनोहर कामिनी की कृष्णवर्ण आँखों द्वारा न डसा जाऊँ, क्योंकि **(दष्टे)** सर्प के काटने पर तो **(दिशि-दिशि)** स्थान-स्थान पर, **(प्रायेण)** प्रायः सभी देशों में **(धर्मार्थिनः)** परोपकारी **(चिकित्सका)** वैद्य **(सन्ति)** हैं, मिल जाते हैं, किन्तु **(मुग्धाक्षी+क्षण+वीक्षितस्य)** मोहिनी की चितवन से क्षणभर के लिए भी ताक लेने या काट लेने से **(मे)** मुझे [मनुष्य को] बचाने के लिए **(वैद्यः न हि)** न तो कोई वैद्य है **(च)** और **(औषधम् अपि, न)** न ही कोई औषध ही है।

भावार्थ—एक है बहुत बड़ा विषधर सर्प और दूसरी हैं बड़ी-बड़ी आँखें। साँप भी चञ्चल है और आँखें भी चञ्चल। साँप की चाल टेढ़ी है और निगाहें भी टेढ़ी पड़ती हैं। दोनों ही कान्ति से युक्त हैं और रंग भी श्यामल है। इनमें से काला सर्प भले ही डस ले, परन्तु मोहिनी चितवन घायल न कर दे। साँप के काटे की दवा तो विना पैसे के सर्वत्र मिल सकती है, परन्तु चितवन के घाव को ठीक करना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है।

कश्चुम्बति कुलपुरुषो वेश्याधरपल्लवं मनोज्ञमपि।
चारभटचोरचेटकविटनटनिष्ठीवनशरावम् ॥ 54॥

शब्दार्थ—(वेश्या+अधर+पल्लवम्) वेश्या का अधर-पल्लव [निचला ओष्ठ] **(मनोज्ञम्)** सुन्दर है **(अपि)** तो भी **(कः कुलपुरुषः)** कौन कुलीनपुरुष **(चुम्बति)** उसका चुम्बन करेगा, क्योंकि वह तो **(चार+भट+चोर+चेटक+विट+नट+निष्ठीवन+शरावम्)** गुप्तचर=भेदिये, भट=सिपाही, चोर चेटक [भड़ुआ, स्त्री-पुरुषों को मिलानेवाला दूत],

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विट=भाँड, जार, नटों [नचैये, स्वाँग बनानेवालों] का थूक-पात्र, उगालदान है।

भावार्थ—वेश्याओं का मुखमण्डल देखने में सुन्दर भले ही लगे परन्तु वह तो चार, चोर, भड़ुए, भाँड, नचैयों-जैसे नीचजनों का उगालदान मात्र है। ऐसे घिनौने मुख को कोई कुलीन पुरुष कैसे चूम सकता है? केवल नीच लोग ही वेश्यागमन में रत रहते हैं।

जात्यन्धाय च दुर्मुखाय च जराजीर्णाखिलाङ्गाय च,
ग्रामीणाय च दुष्कुलाय च गलत्कुष्ठाभिभूताय च।
यच्छन्तीषु मनोहरं निजवपुर्लक्ष्मीलवश्रद्धया,
पण्यस्त्रीषु विवेककल्पलतिकाशस्त्रीषु रज्येत कः॥ 55॥

शब्दार्थ—(**जात्यन्धाय**) जन्म से अन्धे (**च**) व [बहरे] (**दुर्मुखाय**) कुरूप (**च**) व [कटुभाषी] (**जरा+जीर्ण+अखिल+अङ्गाय**) वृद्धावस्था के कारण जीर्ण-शीर्ण अङ्गोंवाले (**च**) व [लूले-लङ्गड़े, गँवार] (**च**) और [विलास आदि से अनभिज्ञ], (**दुष्कुलाय**) दुष्टकुल में उत्पन्न (**च**) व [कुजात] (**च**) और (**गलत् कुष्ठ+अभिभूताय**) गलित कुष्ठ से आक्रान्त व्यक्तियों के लिए (**लव+लक्ष्मी+श्रद्धया**) थोड़ा-सा धन पाने की आशा से (**निज+मनोहरम् वपुः**) अपने सुन्दर शरीर को (**यच्छन्तीषु**) सौंपनेवाली (**विवेक+कल्पलतिका, शस्त्रीषु**) विवेकरूपी कल्पलता को काटनेवाली छुरी के समान (**पण्य+स्त्रीषु**) वेश्याओं पर (**कः रज्येत**) कौन बुद्धिमान् पुरुष अनुरक्त होगा? [ऐसी बाजारू स्त्रियों पर कोई विवेकी नहीं रीझ सकता]।

भावार्थ—वेश्याएँ केवल धन की भूखी होती हैं। थोड़े से पैसों के लालच में वे अपना सुन्दर सुकुमार शरीर चाहे जिसको सौंपने के लिए तैयार रहती हैं। अन्धा हो, बहरा हो, लूला-लँगड़ा, कुरूप-कुजात हो, महामूर्ख हो, जीर्ण-शीर्ण बूढ़ा हो, कोढ़ी हो, क्षयरोगी हो, जो पैसा दे उसी की हो जाएँ। भला, कोई विवेकी पुरुष ऐसी वेश्याओं पर अनुरक्त हो सकता है? कदापि नहीं।

वेश्यासौ मदनज्वाला रूपेन्धनसमेधिता।[1]
कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च॥ 56॥

---

1. पाठभेद—विवर्धिता—अर्थ में कोई अन्तर नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—(**असौ वेश्या**) यह वेश्या (**रूप+इन्धन+सम्+एधिता**) सौन्दर्यरूपी ईंधन से प्रज्वलित की गई (**मदनज्वाला**) काम-अग्नि की भयंकर ज्वाला है, (**यत्र**) जिसमें (**कामिभिः**) कामी पुरुषों द्वारा अपने (**यौवनानि**) यौवन (**च**) और (**धनानि**) धन की (**हूयन्ते**) आहुतियाँ दी जाती हैं।

भावार्थ—वेश्या मूर्तिमती कामाग्नि है जो अपने रूप और शृङ्गार से धधक उठती है और प्रचण्ड ज्वाला बन जाती है। कामी पुरुष इस ज्वाला में अपने धन और यौवन दोनों को भेंट चढ़ा देते हैं।

न गम्यो मन्त्राणां न च भवति भैषज्यविषयो,
न चापि प्रध्वंसं व्रजति विविधैः शान्तिकशतैः।
भ्रमावेशदङ्गे किमपि विदधद्भङ्गमसकृत्,
स्मरापस्मारोऽयं भ्रमयति दृशं घूर्णयति च॥ 57॥

शब्दार्थ—(**अयम्**) यह (**स्मर+अपस्मारः**) कामदेवरूपी मृगी रोग (**भ्रमावेशात्**) झूठ-मूठ के जोश से (**अङ्गे**) शरीर में (**असकृत्**) बार-बार (**किम्+अपि**) कुछ न कुछ (**भङ्गम्**) तोड़-मरोड़ (**विदधत्**) पैदा करते हुए (**दृशम्**) दृष्टि को (**भ्रमयति**) भरमा देता है (**च**) और (**घूर्णयति**) मन को झटका देता है। यह रोग (**मन्त्राणाम्**) मन्त्रों से (**न गम्यः**) नहीं जाता (**भेषज्य+विषयः, न भवति**) ओषधियों का विषय भी नहीं है, ओषधियों द्वारा भी दूर नहीं किया जा सकता और (**विविधैः**) भाँति-भाँति के (**शान्तिक+शतैः**) सैकड़ों शान्तिपाठों से (**प्रध्वंसम् न व्रजति**) भी नष्ट नहीं होता।

भावार्थ—यह काम-विकार असाध्य मृगी रोग के समान बार-बार आक्रमण करता है, इसमें सूझ-बूझ समाप्त हो जाती है, अङ्ग-प्रत्यङ्ग अकड़ जाते हैं, दृष्टि भ्रमित हो जाती है तथा मन भटक जाता है। इस रोग में दवा-दारू काम नहीं करती, मन्त्रोच्चारण का भी प्रभाव नहीं होता और जप, हवन, पूजा-पाठ से भी कोई लाभ नहीं होता।

कामिनीकायकान्तारे कुचपर्वतदुर्गमे।
मा सञ्चर मनः पान्थ तत्रास्ते स्मरतस्करः॥ 58॥

शब्दार्थ—(**मनः पान्थ**) हे मनरूपी बटोही! (**कुच+पर्वत+दुर्गमे**) उठे हुए स्तनरूपी पहाड़ों के कारण विषम बने (**कामिनी+काय+कान्तारे**) इस नारी के शरीररूपी वन में (**मा सञ्चर**) मत जा, क्योंकि (**तत्र**) वहाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(स्मर+तस्करः) विवेक को भ्रष्ट करनेवाला कामदेवरूपी लुटेरा (आस्ते) निवास करता है।

भावार्थ—नारी का शरीर मानो बीहड़ वन है। उठे हुए स्तन उसमें ऊबड़-खाबड़ पहाड़ हैं जिनके कारण यह दुर्गम बना हुआ है। इस पहाड़ी वन में कामदेवरूपी लुटेरा रहता है, अतः हे मनरूपी यात्री! तू इस बीहड़ वन में भूलकर भी पग मत धरना।

इह हि मधुरगीतं नृत्यमेतद्रसोऽयं,
स्फुरति परिमलोऽसौ स्पर्श एष स्तनानाम्।
इति हतपरमार्थैरिन्द्रियैर्भ्राम्यमाणो,
स्वहितकरणधूर्तैः पञ्चभिर्वञ्चितोऽसि॥ 59॥

शब्दार्थ—यहीं [नारीदेह में ही] मधुर बोलरूपी थिरकते पदों का (मधुर+गीतम्) कानों को सुख पहुँचानेवाला मधुर-गान है। (एतत् नृत्यम्) यहीं नेत्रों को आनन्द देनेवाला नृत्य है (अयम् रसः) यहीं जिह्वा को स्वाद देनेवाला अधरामृत है (असौ परिमलः) यहीं नासिका को मदमस्त करनेवाला केशर-कस्तूरी तथा चन्दन का लेप है और (एषः, स्तनानाम्, स्पर्शः) यहीं स्तनों को सहलाने का आनन्द है—इस प्रकार पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के विषय (इह हि) यहीं—युवतियों के शरीर में पूर्णतः मिल जाते हैं। (इति) इस प्रकार (हत+परमार्थैः) परमार्थ-विनाशक (स्वहितकरण+धूर्तैः) अपने स्वार्थसाधन में तत्पर रहनेवाली धूर्त (पञ्चभिः, इन्द्रियैः) पाँचों ज्ञानेन्द्रियों द्वारा (भ्राम्यमाणः) भूलभुलैया में डाला जाकर (वञ्चितः, अस्मि) मैं पूर्णरूप से ठगा गया हूँ।

भावार्थ—अहो! मेरी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों ने अपने स्वार्थ के लिए मेरे परमार्थ को नष्ट कर दिया। इन कानों ने धोखे में रखा कि युवती के बोल में ही संसार का मधुर संगीत भरा पड़ा है। आँखों पर जाला चढ़ गया और वे उसके पाँवों की गति को नृत्य मान उसमें मस्त हो गईं। जीभ को उसके अधरामृत के सिवा और सब-कुछ नीरस लगने लगा, नाक केसर-कस्तूरी और चन्दन से चर्चित उसके अङ्ग-अङ्ग को सूँघती रही और स्तनों के स्पर्शमात्र से त्वचा=सारे शरीर में फुरहरी दौड़ जाती। इस प्रकार सभी ज्ञानेन्द्रियाँ अपने-अपने विषय में मग्न रहीं परन्तु मुझे क्या मिला? इन इन्द्रियों द्वारा भूलभुलैया में डाला जाकर मैं तो पूर्णरूप से ठगा गया हूँ, अपने परमपुरुषार्थ से वञ्चित हो गया हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मधु तिष्ठति वाचि योषितां हृदि हालाहलमेव केवलम्।
अत एव निपीयतेऽधरो हृदयं मुष्टिभिरेव ताड्यते॥ 60॥

शब्दार्थ—(**योषिताम्**) कामिनियों की (**वाचि**) वाणी में (**मधु**) शहद, [माधुर्य] (**तिष्ठति**) रहता है, किन्तु उनके (**हृदि**) हृदय में तो (**केवलम्**) मात्र (**हालाहलम् एव**) विष ही होता है (**अतः, एव**) इसीलिए, (**हृदयम्**) छाती को [स्तनों को] (**मुष्टिभिः**) मुक्कों से (**ताड्यते एव**) बस पीटा ही जाता है।

भावार्थ—नारियों के मुख में अमृतमयी मिठास होती है और हृदय में हलाहल विष भरा रहता है, इसलिए पुरुष स्त्री के अधर को मुख में लेकर उसका मधुपान करते हैं और विषभरी छातियों पर मुक्के मारते हैं [कुचों का मर्दन करते हैं]।

धन्यास्त एव धवलायतलोचनानां,
तारुण्यदर्पघनपीनपयोधराणाम्।
क्षामोदरोपरि लसत्त्रिवलीलतानां,
दृष्ट्वाकृतिं विकृतिमेति मनो न येषाम्॥ 61॥

शब्दार्थ—(**धवल+आयत+लोचनानाम्**) सुन्दर एवं विशाल नेत्रोंवाली (**तारुण्य+दर्प+घन+पीन+पयोधराणाम्**) यौवन के मद से अत्यन्त पुष्ट स्तनोंवाली, (**क्षाम+उदार+उपरि**) चिपके हुए पेट के ऊपर मध्य भाग में (**लसत् त्रिवली+लतानाम्**) त्रिवली की लता के शोभायमान (**आकृतिम्**) विलासिनियों की आकृति को (**दृष्ट्वा**) देखकर भी (**येषाम्**) जिनके (**मनः**) मन (**विकृतिम्**) विकार को (**न एति**) प्राप्त न हों (**ते एव धन्याः**) संसार में वे ही पुरुष धन्य हैं।

भावार्थ—विशाल और चञ्चल नेत्र चमक रहे हों, यौवन के मद से उरोज [स्तन] उभरे हुए हों, पेट चिपका हुआ हो और उस पर त्रिवली की बेल नाच रही हो—ऐसी सुन्दरी सामने से निकल जाने पर भी जिनका मन चलायमान न हो, ऐसे मनुष्य इस संसार में धन्य हैं।

बाले लीलामुकुलितममी सुन्दरा दृष्टिपाताः,
किं क्षिप्यन्ते विरम विरम व्यर्थ एष श्रमस्ते।
सम्प्रत्यन्ये वयमुपरतं बाल्यमास्था वनान्ते,
क्षीणो मोहस्तृणमिव जगज्जालमालोकयामः॥ 62॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—(**बाले**) हे बाले! सुन्दरी! (**लीला+मुकुलितम्**) विलास के कारण अध-खुले (**अमी**) इन (**सुन्दराः**) सुन्दर (**दृष्टिपाताः**) नेत्रकटाक्ष (**किम् क्षिप्यन्ते**) हम पर क्यों फैंके जा रहे हैं? (**विरम, विरम**) ठहरो, ठहरो! (**ते एषः श्रमः व्यर्थः**) तेरा यह प्रयत्न व्यर्थ है, क्योंकि अब हमारा (**बाल्यम्**) लड़कपन [संसार-दर्शन का उन्माद] (**उपरतम्**) बीत गया, अतः (**सम्प्रति**) अब (**वयम्**) हम (**अन्यः**) कुछ और से हो गये हैं। अब तो (**वनान्ते आस्था**) हमारा मन वन में अटका है (**मोहः क्षीणः**) मोह नष्ट हो गया है और (**जगत्+जालम्**) सांसारिक प्रपञ्च=जंजाल को (**तृणम् इव**) तिनके के समान तुच्छ (**आलोकयामः**) देखते, समझते हैं।

भावार्थ—हे अलबेली! तू अपनी विलासभरी तिरछी चितवनों से क्यों ताक रही है? तेरा यह प्रयास व्यर्थ ही है। अब हम वह नहीं रहे, कुछ और ही हो गये हैं। हमारा लड़कपन (सांसारिक उन्माद) व्यतीत हो गया और मन वन में जा अटका है। संसार की मोह-माया छूट गई है। अब सारा संसार हमें तिनके के समान तुच्छ दिखाई देता है, अतः तू मेरी आशा छोड़कर अपनी राह ले।

इयं बाला मां प्रत्यनवरतमिन्दीवरदल-
प्रभाचोरं चक्षुः क्षिपति किमभिप्रेतमनया।
गतो मोहोऽस्माकं स्मरशबरवाणव्यतिकर-
ज्वरज्वालाः शान्तास्तदपि न वराकी विरमति॥ 63॥

शब्दार्थ—(**इयम् बाला**) यह सुन्दरी (**इन्दीवर+दल+प्रभा+चोरम्**) नीलकमल की पंखुड़ियों के सौन्दर्य को लज्जित करनेवाली (**चक्षुः**) अपनी आँखों की चितवन को (**अनवरतम्**) निरन्तर (**माम् प्रति**) मेरी ओर (**क्षिपति**) फेंक रही है। (**अनया**) इस युवती का (**किम्, अभिप्रेतम्**) उद्देश्य क्या है? सम्भवतः इसे पता नहीं है कि (**अस्माकम्**) हमारा (**मोहः**) मोह (**गतः**) नष्ट हो गया। (**स्मर+शबर+बाण+व्यतिकर+ज्वर+ज्वालाः**) कामदेवरूपी भील के बाणों से उत्पन्न होनेवाले ज्वर का ताप भी (**शान्ताः**) मिट चुका है (**तत् अपि**) फिर भी (**वराकी**) बेचारी (**न विरमति**) उस व्यापार से रुक नहीं रही है, बराबर हमें ताके जा रही है।

भावार्थ—यह नीलकमल-से नेत्रोंवाली सदा अपनी बाँकी चितवन मुझ पर फेंकती रहती है। अब इस दृष्टिपात से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि अब हमारी विषयासक्ति मिट चुकी है। कामदेव के बाणों से उत्पन्न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होनेवाला ज्वर भी उतर गया है परन्तु यह बेचारी अब भी मुझे ताके जा रही है, पता नहीं यह मेरा पीछा क्यों नहीं छोड़ती ?

किं कन्दर्प करं कदर्थयसि रे कोदण्डटङ्कारितैः,
रे रे कोकिल कोमलं कलरवं किं त्वं वृथा जल्पसि।
मुग्धे स्निग्धविदग्धमुग्धमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं,
चेतश्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानामृतं वर्तते ॥ 64 ॥

शब्दार्थ—(**रे कन्दर्प**) रे कामदेव! (**कोदण्ड+टङ्कारितैः**) धनुष की डोरी बजा-बजाकर तुम (**करम्**) अपने हाथ को (**किम्**) क्यों (**कदर्थयसि**) व्यर्थ कष्ट दे रहे हो ? (**रे रे कोकिल**) हे कोयल! (**त्वम्**) तू भी (**किम् वृथा**) क्यों बेकार (**कोमलम्, कलरवम्**) कोमल कूक (**जल्पसि**) सुनाती है ? (**मुग्धे**) हे सुन्दरी! तू भी अपनी (**स्निग्ध+विदग्ध+मुग्ध+मधुरैः**) प्रेम एवं विलासपूर्ण, चतुर, मनोहर, मीठी और (**लोलैः**) चञ्चल (**कटाक्षपातैः**) चितवनों को (**अलम्**) बस, रहने ही दे, क्योंकि अब (**चेतः**) मेरा मन (**चुम्बित+चन्द्र+चूड+चरण+ध्यानामृतम् वर्तते**) भगवान् शिव के चरणों के ध्यानरूपी अमृत में लीन हो गया है।

भावार्थ—रे कामदेव! तू कमान की तान की टंकार करके व्यर्थ अपने हाथों को क्यों कष्ट दे रहा है और अपने तीर क्यों व्यर्थ खो रहा है ? अरी कोयल! तू अपनी कोमल और मधुर ध्वनि से व्यर्थ क्यों कूक रही है ? हे रमणी! तू भी अपने मधुर वचन, सुन्दर चाल और लुभावनी चितवनें छोड़, ये सब प्रयास अब व्यर्थ हैं, क्योंकि मेरा चित्त भगवान् शिव के चरणों में लीन होकर आनन्दामृत का पान कर रहा है।

विरहेऽपि सङ्गमः खलु परस्परं सङ्गतं मनो येषाम्।
हृदयमपि विघटितं चेत्सङ्गो विरहं विशेषयति ॥ 65 ॥

शब्दार्थ—(**येषाम्**) जिनके (**मनः**) मन (**परस्परम्**) आपस में (**सङ्गतम्**) मिले हुए हों उनके लिए (**विरहे, अपि**) वियोग में भी (**सङ्गमः, खलु**) सम्मिलन की ही अनुभूति रहती है, परन्तु जिनके (**हृदयम्**) हृदय (**चेत्**) यदि (**विघटितम्**) विलग हो चुके हों उनके लिए (**सङ्गः**) साथ रहना (**अपि**) भी (**विरहम्, विशेषयति**) वियोग से भी अधिक दुःखदायी होता है।

भावार्थ—जिन स्त्री-पुरुषों के मन मिले हुए हों वे दूर रहने पर भी अपने को साथ-साथ अनुभव करते हैं, परन्तु जिनके मन में मुटाव आ गया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो उनके साथ-साथ रहने पर भी संगति उन्हें अधिक खटकती है।

किं गतेन यदि सा न जीवति,
प्राणिति प्रियतमा तथाऽपि किम्।
इत्युदीक्ष्य नवमेघमालिकां,
न प्रयाति पथिकः स्वमन्दिरम्॥ 66॥

शब्दार्थ—(सा प्रियतमा) वह प्राणवल्लभा=प्राणप्यारी सजनी **(यदि न जीवति)** यदि जीवित न हो तो **(गतेन किम्)** मेरे घर लौटकर जाने से क्या लाभ ? **(यदि)** और यदि **(प्राणिति)** जीवित हो **(तथा, अपि किम्)** तब भी मुझ जैसे विरक्त के जाने का क्या प्रयोजन ? **(इति)** इस प्रकार सोच-विचारकर **(पथिकः)** कोई विरक्त बटोही **(नव+मेघ+मालिकाम्)** उमड़-घुमड़कर आनेवाले बादलों को **(उदीक्ष्य)** देखकर भी **(स्व+मन्दिरम्)** अपने घर **(न प्रयाति)** नहीं लौटता।

भावार्थ—किसी विरक्त पथिक को वर्षाऋतु के उमड़ते-घुमड़ते बादलों को देखकर पत्नी की याद आ जाती है। वह सोचता है कि प्राण-प्रिया जीवित है अथवा उसने प्राण त्याग दिये हैं ? यदि उसने प्राण त्याग दिये हैं तो मेरा घर जाना व्यर्थ है और यदि वह जीवित है तब भी मेरा घर लौटना व्यर्थ है, क्योंकि मैंने उसका सङ्ग त्याग दिया है। ऐसा सोचकर वह घर नहीं जाता, वन की ओर बढ़ जाता है।

विरमत बुधा योषित्सङ्गात्सुखात्क्षणभङ्गुरात्,
कुरुत करुणामैत्रीप्रज्ञावधूजनसङ्गमम्।
न खलु नरके हाराक्रान्तं घनस्तनमण्डलं,
शरणमथवा श्रोणिबिम्बं रणन्मणिमेखलम्॥ 67॥

शब्दार्थ—(बुधाः) हे बुद्धिमानो ! **(क्षणभङ्गुरात्, योषित्सङ्गात् सुखात्)** क्षणभर के स्त्री-सङ्गमरूपी सुख से **(विरमत)** बचो तथा **(करुणा+मैत्री+प्रज्ञा+वधूजन+सङ्गमम्)** दीन दया, सुजनमैत्री और दूरदर्शिनी सुमतिरूपी युवतियों के साथ रमण करो **(खलु)** क्योंकि **(नरके)** नरक में **(हाराक्रान्तम्)** मोती और मणियों के हारों से सुशोभित **(घन+स्तन+मण्डलम्)** अत्यन्त पुष्ट स्तनों **(अथवा)** अथवा **(रणत्+मणि+मेखलम्)** रुनझुन करती मणियों की करधनी से सुशोभित **(श्रोणी+बिम्बम्)** कटिप्रदेशवाली सुन्दरियाँ **(शरणम् न)** तुम्हारा सहारा नहीं बन सकेंगी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकेंगी।

भावार्थ—हे विद्वान् लोगो! नारी-सङ्गरूपी क्षणिक सुख से अपना मुख मोड़ो तथा करुण, मैत्री और प्रज्ञारूपी सच्ची प्रियतमाओं से सम्बन्ध जोड़ो, क्योंकि ये मुक्ताहारयुक्त कुचयुगल और रत्नजडित करधनीवाले कटिप्रदेशवाली सुन्दरियाँ नरक में जाने पर सहायक नहीं होंगी, अर्थात् इनके संग से तो निश्चित ही दुःखद नरक की प्राप्ति होगी और उसके दुःखभोग में कोई सहायक नहीं होगा।

यदा योगाभ्यासव्यसनकृशयोरात्ममनसो-
रविच्छिन्ना मैत्री स्फुरति कृतिनस्तस्य किमु तैः।
प्रियाणामालापैरधरमधुभिर्वक्त्रविधुभिः,
सनिःश्वासामोदैः सकुचकलशाऽऽश्लेषसुरतैः ॥ 68 ॥

शब्दार्थ—(**यदा**) जब (**योगाभ्यास+व्यसन+कृशयोः**) अष्टाङ्गयोग द्वारा चित्तवृत्ति के निरोध से निर्मल हुए (**आत्म+मनसोः**) आत्मा और मन के साथ (**यस्य**) जिस मनुष्य की (**अविच्छिन्ना मैत्री**) अटूट मैत्री प्रकाशित होती है तब (**तस्य**) उस (**कृतिनः**) पुण्यात्मा योगी को (**तैः**) उन (**प्रियाणाम्, आलापैः**) प्रियाओं के मधुर पारस्परिक सम्भाषणों से (**अधर+मधुभिः**) अधरामृत पान के (**वक्त्रविधुभिः**) चन्द्रमुखों के चुम्बनों से (**स+निःश्वास+आमोदैः**) निःश्वासों की सुगन्धि से (**स+कुच+कलश+आश्लेष+सुरतैः**) स्तनयुगल के आलिङ्गन से युक्त सम्भोग से (**किम् उ**) भला क्या प्रयोजन हो सकता है? [वैरागी को इन सांसारिक वस्तुओं की आवश्यकता नहीं, क्योंकि आत्मानन्द में इन सांसारिक सुखों की अपेक्षा कहीं अधिक आनन्द की प्राप्ति होती है।]

भावार्थ—जब साधक निरन्तर योगाभ्यास करते हुए आत्मानन्द का अनुभव करने लगता है, तब उसे सांसारिक सुख नीरस लगने लगते हैं। उसे प्रियतमा का प्रियालाप सारहीन लगता है, अधरपान अरुचिकर लगता है, चन्द्र-मुख आभाहीन प्रतीत होता है, श्वासों की सुगन्ध में दुर्गन्ध आती है, यहाँ तक कि उन्नत स्तनों के गाढालिङ्गन और सम्भोग के प्रति भी अरुचि ही रहती है।

विशेष—अष्टाङ्ग योग के आठ अङ्ग ये हैं— 1. यम, 2. नियम, 3. आसन, 4. प्राणायाम, 5. प्रत्याहार, 6. धारणा, 7. ध्यान और 8. समाधि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसञ्चारजनितं,
तदा दृष्टं नारीमयमिदमशेषं जगदिति।
इदानीमस्माकं पटुतरविवेकाञ्जनजुषां,
समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म मनुते॥ 69॥

शब्दार्थ—(यदा) जबतक मुझ में (स्मर+तिमिर+सञ्चार+जनितम्) कामान्धता के सञ्चार से उत्पन्न हुई (अज्ञानम्, आसीत्) मूर्खता थी (तदा) तबतक (इदम्, अशेषम्, जगत्) यह सारा संसार (नारीमयम्) नारीमय है (इति) ऐसा (दृष्टम्) दीख पड़ता था परन्तु (इदानीम्) अब जबकि (पटुतर+विवेक+अञ्जन+जुषाम्) हमने विवेकरूपी प्रचण्ड अञ्जन अपनी आँखों में लगाया तब से (अस्माकम्) हमारी (दृष्टिः) दृष्टि (समीभूता) ठीक हो गई (अपि) और (त्रिभुवनम्) तीनों लोक हमें (ब्रह्म मनुते) ब्रह्ममय दिखाई देने लगे हैं।

भावार्थ—जब तक मुझ में काम-वासनारूपी अज्ञान था तब तक यह सम्पूर्ण संसार नारीमय दिखाई देता था, परन्तु जब से ज्ञानोदय हुआ तब से तीनों लोक ब्रह्ममय दिखाई देने लगे हैं।

तावदेव कृतिनामपि स्फुरत्येष निर्मलविवेकदीपकः।
यावदेव न कुरङ्गचक्षुषां ताड्यते चपललोचनाञ्चलैः॥ 70॥

शब्दार्थ—(कृतिनाम्) धर्मात्मा, ज्ञानी पुरुषों का (एषः) यह (निर्मल+विवेक+दीपकः) शुद्ध ज्ञान-दीप अर्थात् सदसद्विचाररूपी दीपक (अपि) भी (तावत् एव) तभी तक (स्फुरति) प्रकाशित रहता है (यावत्, एव) जब तक वे (कुरङ्ग+चक्षुषाम्) मृग-नयनियों के (चपल+लोचन+अञ्चलैः) चञ्चल आँखों के कटाक्षों से (न ताड्यते) पीड़ित, [विद्ध] नहीं होते।

भावार्थ—ज्ञानोदय के कारण धर्मात्माओं को सारा संसार ब्रह्ममय दिखाई देने लगता है परन्तु उन पुण्यात्माओं का वह ज्ञानदीप भी तभी तक प्रज्वलित रहता है जबतक वे मृगनयनियों के कटाक्ष-बाणों से विद्ध नहीं होते। जहाँ नयन-शर लगा वहीं ज्ञानदीप बुझा और मन पर फिर वही अन्धकार छा जाता है।

वचसि भवति सङ्गत्यागमुद्दिश्य वार्ता,
श्रुतिमुखरमुखानां केवलं पण्डितानाम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जघनमरुणरत्नग्रन्थिकाञ्चीकलापं,
कुवलयनयनानां को विहातुं समर्थः ॥ 71 ॥

शब्दार्थ—(श्रुति+मुखर+मुखानाम्) निरन्तर वेदाभ्यास में निरत (पण्डितानाम्) विद्वानों की भी (सङ्ग+त्यागम्, उद्दिश्य) स्त्री को त्यागने सम्बन्धी (वार्ता) बातें (केवलम्, वचसि, भवति) केवल कहने के लिए ही होती हैं अन्यथा (कुवलयनयनानाम्) कमल के समान नेत्रोंवाली नारियों के (अरुण+रत्न+काञ्ची+कलापम्, जघनम्) मणिरम्भण का आनन्द (विहातुम्) छोड़ने में (कः समर्थः) कौन समर्थ हो सकता है ? अर्थात् सभी असमर्थ हैं।

भावार्थ—वेद-शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वानों की भी स्त्री-त्याग की शिक्षा केवल कहने के लिए ही है। वास्तविक बात यह है कि कमलनयनियों के रत्नजडित करधनीवाले गौर कटिप्रदेश के आस्वादभरे आनन्द को कौन छोड़ सकता है !

स्वपरप्रतारकोऽसौ निन्दति योऽलीकपण्डितो युवतीः।
यस्मात्तपसोऽपि फलं स्वर्गस्तस्यापि फलं तथाप्सरसः ॥ 72 ॥

शब्दार्थ—(अलीक+पण्डितः) शास्त्रज्ञान से शून्य और अपने-आपको पण्डित समझनेवाला (यः) जो व्यक्ति (युवतीः) कामिनियों की (निन्दति) निन्दा और अपमान करता है (असौ) वह पाखण्डी पण्डित (स्व+पर+प्रतारकः) अपने को भी तथा औरों को भी धोखा देता है, ठगता है (यस्मात्) क्योंकि (तपसः, फलम्) तप का फल (अपि) भी (स्वर्गः) स्वर्ग ही है (तथा) और (तस्य, अपि) उस स्वर्ग का भी (फलम्) फल (अप्सरसः) अप्सराओं के साथ भोग ही है।

भावार्थ—जो वेद-शास्त्रों के विद्वान् स्त्री-त्याग की शिक्षा देते हैं वे पाखण्डी हैं। वे स्वयं तो धोखे में हैं ही दूसरों को भी धोखा देते हैं, क्योंकि तपस्या का फल भी तो स्वर्ग-प्राप्ति है और स्वर्ग-प्राप्ति का फल है अप्सराओं के साथ भोग, फिर स्वर्गलोक की अप्सरा उत्कृष्ट और भूलोक की नारी निकृष्ट कैसे ?

मत्तेभकुम्भदलने भुवि सन्ति शूराः,
केचित्प्रचण्डमृगराजवधेऽपि दक्षाः।
किन्तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य,
कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः ॥ 73 ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—(**भुवि**) इस संसार में (**मत्त+इभ+कुम्भ+दलने**) मतवाले गजराज के गण्डस्थलों को विदीर्ण करने में समर्थ (**शूराः, सन्ति**) शूरवीर विद्यमान हैं। (**केचित्**) कुछ-एक (**प्रचण्ड+मृगराज+वधे**) अत्यन्त क्रुद्ध सिंह का वध करने में (**अपि**) भी (**दक्षाः**) चतुर और समर्थ हैं (**किन्तु**) परन्तु मैं (**बलिनाम्, पुरतः**) बलवानों के समक्ष (**प्रसह्य**) साहस के साथ, डंके की चोट (**ब्रवीमि**) कहता हूँ कि (**कन्दर्प+दर्प+दलने**) कामदेव के गर्व के खर्व=खण्डित करनेवाले (**मनुष्याः**) मनुष्य (**विरलाः**) विरले ही होते हैं।

भावार्थ—संसार में ऐसे शूरवीर बहुत हैं जो मतवाले हाथी के मस्तक को विदीर्ण कर डालें। ऐसे भी वीर इस संसार में है जो अत्यन्त क्रोधी सिंह को भी मौत के घाट उतार सकते हैं, परन्तु मैं डंके की चोट कहता हूँ कि संसार में ऐसे मनुष्य विरले ही हैं जो कामवासना पर काबू पा सकें।

विशेष—महावीर हनुमान्, भीष्म पितामह और महर्षि दयानन्द सरस्वती ऐसे विरले ही कामजयी पुरुष थे।

सन्मार्गे तावदास्ते प्रभवति पुरुषस्तावदेवेन्द्रियाणां,
लज्जां तावद्विधत्ते विनयमपि समालम्बते तावदेव।
भ्रूचापाकृष्टमुक्ताः श्रवणपथगता नीलपक्ष्माण एते,
यावल्लीलावतीनां न हृदि धृतिमुषो दृष्टिबाणाः पतन्ति॥ 74॥

शब्दार्थ—इस संसार में (**पुरुषः**) मनुष्य (**तावत् एव**) तभी तक (**सन्मार्गे**) सदाचरण में (**आस्ते**) स्थित रहता है, (**इन्द्रियाणाम्**) इन्द्रियों को (**प्रभवति**) वश में रखता है, (**तावत्**) तभी तक (**लज्जाम् विधत्ते**) लोक-लाज का ध्यान रखता है और (**तावत् एव**) तभी तक (**विनयम्, अपि**) नम्रता को भी (**समालम्बते**) अपनाये रखता है (**यावत्**) जबतक कि (**लीलावतीनाम्**) विलासिनियों के (**श्रवण+पथ+गताः**) कानों तक खींचे गये (**भ्रू+चाप+आकृष्ट+मुक्ताः**) भ्रुकुटिरूपी धनुष से खींचकर चलाये हुए (**धृति+मुषः**) धैर्य [संयम] को चकनाचूर करनेवाले (**नील+ पक्ष्माणः**) नीली या काली बरौनीवाले (**एते दृष्टि+बाणाः**) ये सुलोचनों के चितवन-बाण (**हृदि न, पतन्ति**) हृदय में नहीं लगते।

भावार्थ—सदाचार का सेवन, इन्द्रियों का संयम, लज्जाशीलता और विनम्रता आदि गुण मनुष्य में तभी तक विद्यमान रहते हैं जबतक विलासिनियों के भ्रुकुटिरूपी धनुष से छोड़े हुए सुलोचन चितवनों के बाण मनुष्य के धैर्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[संयम] का ध्वंस करके उसके हृदय में नहीं घुसते।

उन्मत्तप्रेमसंरम्भादारभन्ते यदङ्गनाः।
तत्र प्रत्यूहमाधातुं ब्रह्माऽपि खलु कातरः॥ 75॥

शब्दार्थ—(**अङ्गनाः**) युवतियाँ (**उन्मत्त+प्रेम+संरम्भात्**) उत्कट प्रेम में उन्मत्त होकर (**यत् आरभन्ते**) उचित या अनुचित जो पग उठाती हैं, जिस कार्य को आरम्भ करती हैं (**तत्र**) उस कार्य में उन्हें (**प्रत्यूहम्, आधातुम्**) विरत करने में [बाधा डालने में] साधारण व्यक्ति की तो बात ही क्या (**ब्रह्मा+अपि**) सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा भी (**खलु+कातरः**) एकदम घबरा उठता है।

भावार्थ—नारी जब प्रेम में उन्मत्त होकर किसी कार्य को करने की ठान ले, तब उसे मार्ग का छोटा-छोटा काँटा तो क्या, विकराल काल भी नहीं रोक सकता।

तावन्महत्त्वं पाण्डित्यं कुलीनत्वं विवेकता।
यावज्ज्वलति नाङ्गेषु हतः पञ्चेषुपावकः॥ 76॥

शब्दार्थ—मनुष्य का (**महत्त्वम्**) गौरव, बड़प्पन (**पाण्डित्यम्**) विद्वत्ता (**कुलीनत्वम्**) कुलीनता (**विवेकता**) सदसद्विचार-शक्ति (**तावत्**) तभी तक रहती है (**यावत्**) जबतक (**हतः**) निकृष्ट (**पञ्चेषुपावकः**) कामवासना की अग्नि (**अङ्गेषु**) अंगों में, शरीर में (**न ज्वलति**) प्रज्वलित नहीं हो जाती।

भावार्थ—मनुष्य का गौरव, मान-सम्मान सब कुछ तभी तक है जब तक उसमें कामाग्नि प्रज्वलित नहीं होती। कामपीड़ित पुरुष अपने महत्त्व को भूल जाते हैं, पण्डित अपने पाण्डित्य को ताक पर रख देते हैं, कुलीन अपनी कुलमर्यादा को धूल में मिला देते हैं और विवेकी भले-बुरे का ध्यान छोड़ देते हैं।

शास्त्रज्ञोऽअपि प्रथितविनयोऽप्यात्मबोधोऽपि वाढं,
संसारेऽस्मिन्भवति विरलो भाजनं सङ्गतीनाम्।
येनैतस्मिन् निरयनगरद्वारम् उद्घाटयन्ती,
वामाक्षीणां भवति कुटिला भ्रूलता कुञ्चिकेव॥ 77॥

शब्दार्थ—(**अस्मिन्, संसारे**) इस संसार में (**शास्त्रज्ञः, अपि**) समस्त शास्त्रों का ज्ञाता भी, (**प्रथित+विनयः अपि**) विख्यात विनयशील भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(आत्मबोधः, अपि) महान् आत्मज्ञानी भी हो तो (वाढम्) भी (सद्गतीनाम्, भाजनम्) सद्गति का पात्र (विरलः, भवति) कोई विरला ही होता है, (येन) क्योंकि (एतस्मिन्) इस संसार में (वाम+अक्षीणाम्) सुन्दर लोचनोंवाली रमणियों की (कुटिला, भ्रूलता) टेढ़ी भ्रुकुटी (निरय+नगर+द्वारम्) यमपुरी के द्वार के ताले को (उद्घाटयन्ती) खोल देनेवाली (कुञ्चिका, इव) कुञ्जी, चाबी की भाँति (भवति) होती हैं।

भावार्थ—चाहे कोई शास्त्रों का मर्मज्ञ हो, अत्यन्त विनयशील हो, आत्मज्ञानी हो तो भी कोई विरला ही सद्गति=मोक्ष प्राप्त करेगा, क्योंकि संसार में कामिनियों की कुटिल भ्रुकुटि चाबी बनकर नरक का द्वार खोलने में सदा समर्थ है।

विशेष—आद्य शंकराचार्य ने भी "**द्वारं किमेकं नरकस्य नारी**" कहकर स्त्री को नरक का द्वार बताया है परन्तु वेद में नारी को सिर की पगड़ी के समान सुख देनेवाली बताया गया है, अतः उपर्युक्त विचार अयुक्त हैं। यदि नारी पुरुष के लिए नरक का द्वार खोलनेवाली कुञ्जी है तो पुरुष नारी के लिए नरक का द्वार खोलने की चाबी क्यों नहीं ?

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलो,
व्रणी पूयक्लिन्नः कृमिकुलशतैरावृततनुः।
क्षुधाक्षामो जीर्णः पिठरककपालार्पितगलः,
शुनीमन्वेति श्वा हतमपि निहन्त्येव मदनः॥78॥

शब्दार्थ—(कृशः) खाना न मिलने के कारण दुर्बल, (काणः) काना, (खञ्जः) लँगड़ा, (श्रवणरहितः) कनकटा, (पुच्छविकलः) विना पूँछवाला, (व्रणी) फोड़ा-युक्त अतएव (पूय+क्लिन्नः) पीव से भरा हुआ और (कृमि+कुल-शतैः) सैकड़ों, सहस्रों कृमियों से (आवृत+तनुः) व्याप्त शरीरवाला (क्षुधा+क्षामः) भूख से व्याकुल (जीर्णः) बुढ़ापे के कारण जीर्ण-शीर्ण (पिठरक+कपाल+अर्पित+गलः) मिट्टी के घड़े का मुँह जिसके गले में फँसा हुआ है—(श्वा) ऐसा कुत्ता भी (शुनीम्, अनु+एति) मैथुनार्थ कुतिया के पीछे-पीछे दौड़ता है। अहो ! (मदनः) कामदेव (हतम् अपि) सब प्रकार से नष्ट उस कुत्ते को (नि+हन्ति, एव) और भी मार रहा है।

भावार्थ—दुबला, काना, लँगड़ा, कनकटा, पूँछ-टूटा, फोड़ों से युक्त, पीवभरा, कृमियों से व्याप्त, भूखा, बुढ़ापे के कारण शिथिल, मिट्टी के घड़े का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुँह=घेरा गले में लंटकाये हुए—ऐसा कुत्ता भी कुतिया के पीछे-पीछे दौड़ रहा है। कामदेव की महिमा तो देखो कि मरियल को भी कामोन्माद मारे डाल रहा है!

स्त्रीमुद्रां कुसुमायुधस्य जयनीं सर्वार्थसम्पत्करीं,
ये मूढाः प्रविहाय यान्ति कुधियो मिथ्याफलान्वेषिणः।
ते तेनैव निहत्य निर्दयतरं नग्नीकृता मुण्डिताः,
केचित्पञ्चशिखीकृताश्च जटिलाः कापालिकाश्चापरे॥ 79॥

शब्दार्थ—(ये मूढाः, कुधियः) जो मूर्ख और दुर्बुद्धि **(मिथ्या+फल+अन्वेषिणः)** झूठे पुण्य-फल=स्वर्गादि की प्राप्ति की अभिलाषा से **(सर्व+अर्थ+सम्पत्करीम्)** धर्म, अर्थ, कामरूपी फलों को देकर सर्व-सम्पन्न करनेवाली **(कुसुम+आयुधस्य)** पुष्प-बाण कामदेव को **(जयनीम्)** प्रसन्न करनेवाली **(स्त्री+मुद्राम्)** मोहिनी मुद्रा स्त्री को **(प्र+विहाय)** त्यागकर **(यान्ति)** चल पड़ते हैं, घर से निकलकर वानप्रस्थ या संन्यास धारण कर लेते हैं **(ते)** वे **(तेन, एव)** उसी कामदेव द्वारा **(निर्दयतरम्)** अत्यन्त निर्दयता से **(निहत्य)** मारे जाकर, पिट-पिटाकर **(नग्नीकृताः)** कपड़े उतरवाकर नागा बाबा बना दिये गये, **(मुण्डिताः)** सिर मुँडवाकर संन्यासी बना दिये गये **(केचित् पञ्चशिखी+कृताः)** किसी का सिर मुँडवाकर पाँच चोटियाँ रखवा दी गईं **(च)** और किसी को **(जटिलाः)** जटा धारण करा दी गई हैं **(च)** तथा **(अपरे)** अन्यों को **(कापालिकाः)** हाथ में खप्पर देकर भिखारी बना दिया गया है।

भावार्थ—नारी जहाँ एक ओर कामदेव को प्रसन्न करने में समर्थ है, वहाँ दूसरी ओर मनुष्य के धर्म, अर्थ, कामरूपी त्रिवर्ग को प्राप्त कराने में भी समर्थ है। जो मूर्ख ऐसी मोहिनी मूर्ति को त्यागकर स्वर्गादि झूठे पुण्यफल को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं उन्हें कामदेव अत्यन्त निर्दयी बनकर कठोरतम दण्ड देते हैं। किसी को वह नागा बाबा बनाकर घुमाता है तो किसी को सिर मुँडवाकर संन्यासी बना देता है, किसी के पाँच शिखा रखवा देता है और किसी को जटाजूट बना देता है और किसी के हाथ में खप्पर थमाकर भीख मँगवा देता है।

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशिना-
स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवा-
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत्सागरे ॥ 80 ॥

शब्दार्थ—(**वात+अम्बु+पर्ण+अशनाः**) वायु-भक्षण करके, जल पीकर और पत्ते खाकर तप करनेवाले (**ते**) वे (**विश्वामित्र+पराशर+प्रभृतयः**) महर्षि विश्वामित्र और पराशर आदि (**अपि**) भी (**सुललितम्**) अत्यन्त रमणीय (**स्त्री+मुख+पङ्कजम्**) स्त्रियों के मुख-कमल को (**दृष्ट्वा, एव**) देखते ही (**मोहम् गताः**) मोहित हो गये फिर (**ये मानवाः**) जो मनुष्य (**सघृतम्**) घी के साथ (**पयः दधि+युतम्**) दूध-दही मिलाकर (**शालि+अन्नम्**) शाली धान्य [सांठी चावल लाली-मिश्रित श्वेत रंग के होते हैं। ये चावल बहुत पौष्टिक होते हैं] के भात को (**भुञ्जन्ति**) खाते हैं (**यदि**) यदि (**तेषाम्**) उनका (**इन्द्रिय+निग्रहः**) इन्द्रिय-निग्रह हो जाए तो जानो (**विन्ध्यः**) विन्ध्य पर्वत (**सागरे**) समुद्र पर (**तरेत्**) तैरने लगेगा।

भावार्थ—महर्षि विश्वामित्र और पराशर आदि जो पत्ते खाकर, जल पीकर और वायु-भक्षण करके रहते थे वे भी [मेनका, सत्यवती आदि] सुन्दरी रमणियों के मुख-कमल को देखकर मोहित हो गये। फिर जो लोग शाली [धान-विशेष] के भात को घी, दूध और दही मिलाकर सेवन करते हैं, वे यदि अपनी इन्द्रियों को वश में कर सकें तो यही कहना पड़ेगा कि विन्ध्यपर्वत भी समुद्र में तैरने लगा।

परिमलभृतो वाताः शाखा नवाङ्कुरकोटयो,
मधुरविधुरोत्कण्ठाभाजः प्रियाः पिकपक्षिणाम्।
विरलसुरतस्वेदोद्गारा वधूवदनेन्दवः,
प्रसरति मधौ धात्र्यां जातो न कस्य गुणोदयः ॥ 81 ॥

शब्दार्थ—वसन्त ऋतु में (**वाताः परिमलभृतः**) वायु नाना प्रकार की सुगन्धियों से भरी है, (**शाखाः नव+अङ्कुर+कोटयः**) आम्रादि वृक्षों की शाखाएँ नये-नये पत्तों से लद गई हैं (**पिक+पक्षिणाम् प्रियाः**) कोयल पक्षी की मादाओं की (**मधुर+विधुर+उत्कण्ठा+भाजः**) मधुर-मधुर कूक सुनने की उत्कण्ठा जागरित हुई है (**वधू+वदन+इन्दवः**) सुन्दरियों के मुखचन्द्र पर (**विरल+सुरत+स्वेद+उद्गाराः**) रतिश्रम के स्वेदबिन्दु सुशोभित होने लगे हैं। (**मधौ प्रसरति**) मधुमास=वसन्त के आगमन पर (**धात्र्याम्**) धरती पर (**कस्य**) किसके (**गुण+उदयः**) गुणों का उत्कर्ष (**न जातः**) नहीं होता अर्थात् सब वस्तुओं के गुणों में उन्नति होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावार्थ—वसन्त ऋतु में उपवन के पुष्पों और मलय चन्दन से सुगन्धित वायु बहने लगती है, आम्रादि वृक्षों की शाखाओं में नये-नये पल्लव फूटने लगते हैं। कोयल आदि पक्षियों की मधुर कूक कामज्वालाओं को बढ़ा देती है। चन्द्र-आनना सुन्दरियों के मुख पर रतिश्रम के स्वेद-बिन्दु सुशोभित होते हैं। इस प्रकार वसन्तु ऋतु में सभी में नव-जीवन ठाठें मारने लगता है।

मधुरयं मधुरैरपि कोकिला-
कलरवैर्मलयस्य च वायुभिः।
विरहिणः प्रणिहन्ति शरीरिणो
विपदि हन्त सुधाऽपि विषायते॥ 82॥

शब्दार्थ—सभी को आनन्दित करनेवाला (**अयम्, मधुः**) यह ऋतुराज वसन्त [चैत्र और वैशाख] (**कोकिला-कलरवैः** कोयल की कूकों (**च**) और (**मलयस्य**) मलयाचल की (**वायुभिः**) सुगन्धित पवनों से (**मधुरैः, अपि**) अत्यन्त मधुर होते हुए भी (**विरहिणः, शरीरिणः**) वियोगीजनों को (**प्रणिहन्ति**) मारे डाल रहा है। (**हन्त**) अहो! (**विपदि**) आपत्ति में (**सुधा, अपि**) अमृत भी (**विषायते**) विष का काम करता है।

भावार्थ—वसन्त ऋतु में कोकिलाओं का कलरव मधुर लगता है, हवाएँ भी बड़ी मस्तानी और सुगन्धित चलती हैं, परन्तु यह आनन्ददायी वातावरण वियोगिजनों पर कहर ढा देता है। ठीक ही है, विपत्ति में अमृत भी विष के समान प्राणलेवा हो जाता है।

आवासः किल वञ्चितस्य दयिताः पार्श्वे विलासालसा,
कर्णे कोकिलकामिनीकलरवः स्मेरो लतामण्डपः।
गोष्ठी सत्कविभिः समं कतिपयैः सेव्याः क्षितांशोः कराः,
केषाञ्चित्सुखयन्ति नेत्रहृदये चैत्रे विचित्राः स्रजः॥ 83॥

शब्दार्थ—(**किलवञ्चितस्य**) कामोद्वेग के कारण रूठी और क्रुद्ध प्रेयसी का (**आवासः**) आवास-स्थल ही (**पार्श्वे**) बगल में (**विलास+अलसाः**) छेड़-छाड़ से अलसाई (**दयिताः**) प्रियतमाएँ हों, (**कर्णे**) कानों में (**कोकिल+कामिनी+कलरवः**) नर और मादा कोयलों की कूक सुनाई देती हो, (**स्मेरः लता+मण्डपः**) अधलिखे फूलोंवाले लतामण्डप में वास हो, (**कतिपयैः सत्कविभिः समं गोष्ठी**) इने-गिने सत्कवियों के साथ गोष्ठी हो, (**सित+अंशोः कराः सेव्याः**) चन्द्रमा की चाँदनी में स्नान हो, (**विचित्रः**

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्त्रजः) नाना प्रकार की फूलमालाएँ हों—ऐसी सामग्री (चैत्रे) इस चैत्र मास में (केषाम्+चित्) किसी-किसी भाग्यवान् के (नेत्र+हृदये) नेत्र और हृदय को ही (सुखयन्ति) आनन्द प्रदान करती हैं।

भावार्थ—चन्द्रमा की चन्द्रिका छिटक रही हो, फूलों को सुशोभित किसी लताकुञ्ज में बैठे हों, आस-पास रूठी और छेड़-छाड़ से अलसाई प्रियतमा हो, गले में फूलों की मालाएँ हों, कानों में रह-रहकर कोयल की कूक सुनाई देती हो, सुकविजनों के साथ रस-चर्चा हो—ऐसा चैत्र मास का वसन्तामोद किन्हीं सौभाग्यशालियों को ही प्राप्त होता है।

पान्थस्त्रीविरहानलाहुतिकलामातन्वती मञ्जरीं,
माकन्देषु पिकाङ्गनाभिरधुना सोत्कण्ठमालोक्यते।
अप्येते नवपाटलापरिमलप्राग्भारपाटच्चरा,
वान्ति क्लान्तिवितानतानवकृताः श्रीखण्डशैलानिलाः ॥ 84 ॥

शब्दार्थ—वसन्तकाल में (पान्थस्त्री+विरह+अनल+आहुति+कलाम्) प्रवासी पथिक की पत्नी की विरह-अग्नि की वेदना को (आतन्वती) उकसानेवाले (माकन्देषु मञ्जरी) आम्रवृक्षों के बौर को (पिक+अङ्गनाभिः) कोकिलाओं द्वारा (अधुना) इस समय (स+उत्कण्ठम्) उत्सुकता के साथ (आलोक्यते) ताका जा रहा है (अपि एते) और साथ-साथ (नव+पाटला+परिमल+प्राग्भार+पाटच्चराः) नवीन गुलाब के फूलों की सुगन्धिरूप सम्पत्ति को चुरानेवाली तथा (क्लान्ति+वितान+तानव+कृताः) रतिश्रम-क्लान्ति को कम करनेवाली (श्रीखण्ड+शैल+अनिलाः) मलयपर्वत की हवाएँ (वान्ति) बह रही हैं।

भावार्थ—ऋतुराज वसन्त की लीला भी विचित्र है। यह एक ओर विरही-विरहिणियों की मर्मवेदना को बढ़ाता है तो दूसरी ओर रसिकों को आनन्द प्रदान करता है। आम में बौर आते ही विरहिणी भी बौरा जाती है। कोयल कूकती है तो हृदय में हूक उठती है। उधर रसिकों के प्रति उसकी सहानुभूति निहारिए। नवीन गुलाब के फूलों की सुगन्धि चुराकर मलयाचल का पवन मन्द-मन्द बहने लगता है और थकान को मिटाते हुए मीठी नींद सुला देता है।

प्रथितः प्रणयवतीनां तावत्पदमातनोतु हृदि मानः।
वहति न यावच्चन्दनतरुसुरभिर्मलयपवमानः ॥ 85 ॥

शब्दार्थ—(यावत्) जब तक (चन्दन+तरु+सुरभिः) चन्दन के वृक्ष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की सुगन्ध लिये हुए (मलय+पवमानः) मलयाचल की पवन (न वहति) नहीं चलती (तावत्) तभी तक (प्रणयवतीनाम्) प्रणयिनी के (हृदि) हृदय में (प्रथितः मानः) प्रणय की मानभरी रूठन (पदम्, आ+तनोतु) डेरा जमा सकती है। [जैसे ही मलयाचल की मन्द, सुगन्धित समीर चली और उसकी रूठन उड़ी]।

भावार्थ—पुरुष दिनभर बाहर रहकर जब रात्रि में देर से घर पहुँचते हैं तब तक प्रेयसी प्रतीक्षा करते-करते थक जाती है। पतिदेव के घर पहुँचते ही उल्टी-सीधी सुना देती है, परन्तु वसन्त ऋतु में छत पर पहुंचते ही सुगन्धित मन्द-मन्द हवा की हिलोरों से रूठन न जाने कहाँ उड़ जाती है और आप ही आप प्रियतम के गले का हार बन जाती हैं।

सहकारकुसुमकेसरनिकरभरामोदमूर्च्छितदिगन्ते।
मधुरमधुविधुरमधुपे मधौ भवेत्कस्य नोत्कण्ठा॥ 86॥

शब्दार्थ—(सहकार+केसर+निकर+भर+आमोद+मूर्च्छित+दिग्+अन्ते) [जिस वसन्त ऋतु में] आम्र-मञ्जरी के पराग-समूह से भरा सुगन्ध चारों ओर फैल रहा हो [और जहाँ] (मधुर+मधु) मीठा शहद छककर (विधुर+मधुपे) भ्रमर मदमस्त हो रहे हों—(मधौ) ऐसी वसन्त ऋतु में (कस्य) किसकी [पुरुष या स्त्री] में (उत्कण्ठा) सम्भोग की इच्छा (न भवेत्) उत्पन्न नहीं होगी ?

भावार्थ—आमों में बौर आकर उसकी सुगन्धि वातावरण में चहुँ ओर फैल रही है, भौंरे मधु-रस के पान से मस्त होकर उड़ते फिर रहे हों, ऐसे ऋतुराज वसन्त में भला कौन ऐसी स्त्री या पुरुष होगा जिसमें सम्भोग की इच्छा उत्पन्न न हो जाए ?

अच्छाच्छचन्दनरसार्द्रकरा मृगाक्ष्यो,
धारागृहाणि कुसुमानि च कौमुदी च।
मन्दो मरुत् सुमनसः शुचिहर्म्यपृष्ठं,
ग्रीष्मे मदं च मदनं च विवर्धयन्ति॥ 87॥

शब्दार्थ—(अच्छ+अच्छ) अत्यन्त स्वच्छ श्वेत (चन्दन+रस+आर्द्रकराः) चन्दन-लेप से भीगी बाहोंवाली (मृगाक्ष्यः) मृगनयनी ललनाएँ, (धारा+गृहाणि) निर्झरों [फव्वारों] से युक्त घर (कुसुमानि) भाँति-भाँति के सुगन्धित फूल (च) और (कौमुदी) चन्द्रमा की चाँदनी (सुमनसः) मनमोहक (मन्दः मरुत्) भीनी-भीनी वायु के झकोरे (शुचि+हर्म्य+पृष्ठम्)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन को आनन्दित करनेवाली महल की छत—ये सब (ग्रीष्मे) ज्येष्ठ-आषाढ़ की ग्रीष्म ऋतु में भी (मदम्) मादकता (च) और (मदनम्) कामोद्रेक को (विवर्धयन्ति) बढ़ाती हैं।

भावार्थ—बाहों में स्वच्छ सुगन्धित चन्दन-चर्चित ललनाएँ हों, फव्वारे चल रहे हों, नाना प्रकार के सुगन्धित फूल खिल रहे हों, चन्द्रमा की चाँदनी छिटक रही हो, भीनी-भीनी वायु बह रही हो, सुन्दर महल की छत हो—ये सब ग्रीष्म ऋतु में भी काम और मद को बढ़ाते हैं।

स्रजो हृद्यामोदा व्यजनपवनश्चन्द्रकिरणाः,
परागः कासारो मलयजरसः शीधु विशदम्।
शुचिः सौधोत्सङ्ग प्रतनुवसनं पङ्कजदृशो,
निदाघे तूर्णं तत्सुखमुपलभन्ते सुकृतिनः ॥ 88 ॥

शब्दार्थ—(हृदि+आमोदाः) मनमोहक सुगन्धित (स्रजः) पुष्पमालाएँ, (व्यजन+पवनः) पंखे की हवा, (चन्द्र+किरणाः) चन्द्रमा की किरणें, (परागः) कमलों का पराग, (कासारः) तालाब, हौज़, (मलयज+रसः) चन्दन का लेप, (विशदम् शीधु) शुद्ध मदिरा, (शुचिः सौध+उत्सङ्ग) धोकर शुद्ध-पवित्र व शीतल की हुई ऊँचे भवन की छत, (प्रतनु वसनम्) महीन, झीने वस्त्र और (पङ्कज+दृशः) कमलनयनी सुन्दरियाँ—(निदाघे) ग्रीष्म ऋतु में (तत् सुखम्) इन सब सुखों को (सुकृतिनः) भाग्यशाली पुरुष ही (तूर्णम्) शीघ्र (उपलभन्ते) प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—ऊँचे भवन की ठण्डी छत हो, ठण्डे जल के हौज़ भरे हुए हों, महीन वस्त्र पहने हुए हों, गले में पुष्पों की मालाएँ हों, चाँदनी छिटक रही हो, शरीर में चन्दन का लेपन हो, शुद्ध मदिरा हो, अगल-बगल में मृगनयनी ललनाएँ हों, धीमा-धीमा पंखा झला जा रहा हो—ग्रीष्म ऋतु में यह सब सुख भाग्यशाली धनवानों को ही प्राप्त हो सकता है, गरीबों के ऐसे भाग्य कहाँ?

विशेष—मदिरा पेय पदार्थ नहीं है। वेदादि शास्त्रों में मद्यपान की घोर निन्दा की गई है। इसके पान करने से भाग्यशाली पुरुष भी दीन-हीन और कंगाल हो जाते हैं, अतः इसे न पीना ही उत्तम है।

सुधाशुभ्रं धाम स्फुरदमलरश्मिः शशधरः,
प्रियावक्त्राम्भोजं मलयजश्चातिसुरभिः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्त्रजो हृद्यामोदास्तदिदमखिलं रागिणि जने,
करोत्यन्तः क्षोभं न तु विषयसंसर्गविमुखे ॥ 89 ॥

शब्दार्थ—(**सुधा+शुभ्रं धाम**) चूने से पुता हुआ सफेद बँगला, (**स्फुरत्+अमल+रश्मिः**) निर्मल चाँदनी छिटकाता हुआ (**शशधरः**) चन्द्रमा (**प्रिया+वक्त्र+अम्भोजम्**) प्रियतमा का कमल-सा मुखड़ा, (**अति+सुरभिः, मलयज+रजः**) अत्यन्त सुगन्धित चन्दन-चूरा (**हृदि+आमोदाः स्त्रजः**) मन को प्रफुल्लित करनेवाली पुष्पमालाएँ (**तत्+इदम्+अखिलम्**) ये सब वस्तुएँ (**रागिणि जने अन्तः**) प्रेमीजनों के हृदय में (**क्षोभम्**) क्षोभ, आकुलता (**करोति**) उत्पन्न करती हैं (**विषय+संसर्ग+विमुखे**) विषयों से मुख मोड़े हुए विरक्त पुरुषों के हृदयों में (**तु न**) नहीं।

भावार्थ—सफेद संगमर्मर का दूधिया बँगला, चन्द्रमा की चाँदनी, कमल-मुखी पत्नी, चन्दन की सुगन्ध, फूलमालाएँ—ये सब प्रेमियों को ही व्याकुल कर सकती हैं, वैरागियों को नहीं।

तरुणी वेषोद्दीपितकामा विकसितजातीपुष्पसुगन्धिः।
उन्नतपीनपयोधरभारा प्रावृट् कुरुते कस्य न हर्षम् ॥ 90 ॥

शब्दार्थ—(**प्रावृट्**) वर्षा-ऋतु (**तरुणी, वेषा**) रमणीरूपधारिणी है जो (**उद्दीपित+कामा**) कामेच्छा को जगानेवाली है, यह वर्षा भी (**विकसित+जाती+पुष्प+सुगन्धिः**) सर्वश्रेष्ठ जाति [कोटि] पद्मिनी होने के कारण देह में फूलों [मालती के फूलों] की गन्धवाली रमणी के समान खिले हुए मालती [चमेली] के पुष्पों की सुगन्ध में भरी हुई है (**उन्नत+पीन+पयोधर+भारा**) उन्नत और पुष्ट पयोधरों [स्तनों] से झुकी हुई सी रमणी के समान वर्षा भी उमड़ते-घुमड़ते पयोधरों [जलधरों=बादलों] से पृथिवी पर झुकी हुई सी है—ऐसी वर्षा ऋतु (**कस्य हर्षम् न तनोतु**) भला किसके हृदय को हर्षित नहीं करेगी!

भावार्थ—वर्षा ऋतु रमणी के समान है। वर्षा ऋतु के आते ही फुलवाड़ी महक उठती है। उन्नत पुष्ट स्तनों के भार से जैसे तरुणी झुक सी जाती है उसी प्रकार आकाश में पयोधर [बादल] उमड़-घुमड़कर पृथिवी की ओर झुक पड़ते हैं। जैसे कामिनी काम-वासना को उद्दीप्त करती है वैसे ही वर्षा ऋतु भी प्रेमियों में अनुराग उत्पन्न करती है। ऐसी वर्षा ऋतु से भला किसे प्रसन्नता नहीं होगी? [पद्मिनी, चित्रणी, शंखिनी, हस्तिनी—ये स्त्रियों की चार जातियाँ होती हैं।]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वियदुपचितमेघं भूमयः कन्दलिन्यो,
नवकुटजकदम्बामोदिनो गन्धवाहाः।
शिखिकुलकलकेकारावरम्या वनान्ताः,
सुखिनमसुखिनं वा सर्वमुत्कण्ठयन्ति॥ 91॥

शब्दार्थ—(उपचित+मेघम्, वियत्) घने बादलों से व्याप्त आकाश (कन्दलिन्यः, भूमयः) नवाङ्कुरित हरियाली से पूर्ण पृथिवी, (नव+कुटज+कदम्ब+आमोदिनः, गन्धवाहाः) नवविकसित कदम्ब वृक्ष के पुष्पों से सुगन्धित वायु, (शिखि+कुल+कलकेकाराव+रम्याः, वनान्ताः) मयूर-मण्डली की मधुर बोली से युक्त मनोहारी वनप्रदेश—ये सब (सुखिनम् वा असुखिनम्) सुखी अथवा सुखवञ्चित [योगी या वियोगी, प्रिया से मिले या बिछुड़े] (सर्वम्, उत्कण्ठयन्ति) सब प्राणियों को उत्कण्ठित करते हैं।

भावार्थ—आकाश में छाई घनघोर घटा, शस्यश्यामला पृथिवी, पुष्पों की महक, मयूरों की बोली, रमणीय वनप्रदेश—ये सभी दृश्य मनुष्यमात्र के हृदय में उफान उत्पन्न करते हैं।

उपरि घनं घनपटलं तिर्यग्गिरयोऽपि नर्तितमयूराः।
वसुधा कन्दलधवला दृष्टिं पथिकः क्व पातयति॥ 92॥

शब्दार्थ—(उपरि घनपटलम्, घनम्) ऊपर आकाश में घनघोर बादल छाये हुए हैं (तिर्यक् गिरयः) दाएँ-बाएँ पर्वतमालाएँ हैं (अपि) और (नर्तितमयूराः) उन पर मोर नृत्य कर रहे हैं, (कन्दल+धवला, वसुधा) नीचे भूमि दूब के अंकुरों और ओस के कणों से धवल हो रही है, ऐसी दशा में जबकि चहुँ ओर विरह को उद्दीप्त करनेवाले दृश्य हैं (पथिकः) बटोही (दृष्टिम्) आँख को (क्व, पातयति) किसपर गाड़े?

भावार्थ—ऊपर आकाश में बादल मँडला रहे हैं, बीच में दाएँ-बाएँ पर्वत-मालाओं पर मोर नाच रहे हैं और नीचे धरती दूब-अंकुरों और ओस-कणों से धवल हो रही है, ऐसी वर्षा ऋतु में बटोही किस पर दृष्टि जमाए और किस से नजर बचाए! सर्वत्र ही तो कामोत्तेजक दृश्यावली खिली है।

इतो विद्युद्वल्ली विलसितमितः केतकितरोः,
स्फुरन् गन्धः प्रोद्यज्जलदनिनदस्फूर्जितमितः।
इतः केकिक्रीडाकलकलरवः पक्ष्मलदृशां,
कथं यास्यन्त्येते विरहदिवसाः सम्भृतरसाः॥ 93॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—(**इतः**) इधर (**विद्युत् वल्ली**) विद्युत् की लहरें [चम-चमाहट] (**विलसितम्**) कौंध रही है (**इतः**) उधर (**केतकितरोः**) केवड़े के पौधे से (**गन्धः स्फुरन्**) सुन्दर सुगन्ध निकल रही है (**इतः**) इधर (**प्र+उद्यत्+जलद+निनद+स्फूर्जितम्**) आकाश में उमड़-घुमड़कर आये मेघों का घनघोर गर्जन हो रहा है (**इतः**) इधर (**केकि+क्रीडा+कलकलरवः**) मयूरों के नृत्य और उनकी बोली के कोलाहल से दिशाएँ गूँज रही हैं—ऐसी दशा में (**पक्ष्मलदृशाम्**) चंचल नेत्रोंवाली कामिनियों के (**सम्भृतरसाः**) रस से सराबोर (**एते वियोग+दिवसाः**) ये वियोग के दिन (**कथम् यास्यन्ति**) कैसे व्यतीत होंगे ?

भावार्थ—इधर बिजली की चमक, उधर बादलों की गरज, एक ओर केवड़े की भीनी-भीनी सुगन्ध और दूसरी ओर मयूरों का नृत्य, जिधर देखो उधर कामदेव विद्यमान हैं। ऐसी विह्वलता में विरहिणियों के दिन कैसे कटेंगे ?

असूचीसञ्चारे तमसि नभसि प्रौढजलद-
ध्वनिप्राये तस्मिन् पतति दृषदां नीरनिचये।
इदं सौदामिन्याः कनककमनीयं विलसितं-
मुदं च ग्लानिं च प्रथयति पथि स्वैरसदृशाम्॥ 94॥

शब्दार्थ—(**असूची+सञ्चारे**) असूचिभेद्य[1] घनघोर, अन्धकार-भरी (**तमसि**) रात्रि में जब कि (**नभसि**) आकाश में (**प्रौढ+जलद+ध्वनि+प्राये**) बादलों की घनघोर गर्जना हो (**तस्मिन्**) उस पर भी (**दृषदाम्, नीरनिचये, पतति**) लगातार ओलों सहित घनघोर वृष्टि हो रही है, ऐसी स्थिति में (**कनक+कमनीयम्**) स्वर्ण के समान पीतवर्णवाली (**सौदामिन्याः**) विद्युत्-रेखाओं की (**इदम् विलसितम्**) यह कौंध और प्रकाश (**स्वैरसदृशाम्**) अभिसारिकाओं के लिए (**पथि**) मार्ग में (**मुदम् च**) हर्ष का भी और (**ग्लानिम् च**) खिन्नता का भी (**प्रथयति**) कारण होता है। [प्रियतम के भवन का मार्ग दिखाई पड़ने से प्रसन्नता होती है और स्वयं के प्रकाशित हो जाने के भय से दुःख होता है।]

भावार्थ—वर्षा ऋतु की रात्रि है। घटाटोप अन्धकार है, बादल गरज रहे हैं, ओलों के साथ पानी बरस रहा है। अभिसारिका (प्रेमिका) निकल पड़ी है। कड़कती हुई विद्युत् के प्रकाश से बेचारी हर्षित भी है और खिन्न

1. जो सूई के द्वारा न बींधा जा सके।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी। राह सूझने की प्रसन्नता है और स्वयं के प्रकाशित हो जाने का भय है। नीचे पत्थरों की ठोकर लगती है, ऊपर सिर पर ओले पड़ते हैं, फिर भी बढ़ती जाती है।

आसारेण न हर्म्यतः प्रियतमैर्यातुं बहिः शक्यते,
शीतोत्कम्पनिमित्तमायतदृशा गाढं समालिङ्ग्यते।
जाताः शीतलशीकराश्च मरुतो रत्यन्तखेदच्छिदो,
धन्यानां बत दुर्दिनं सुदिनतां याति प्रियासङ्गमे॥ 95॥

शब्दार्थ—(**आसारेण**) मूसलाधार वर्षा के कारण (**प्रियतमैः**) प्रियतमों के द्वारा (**हर्म्यत**) महल से (**बहिः यातुम्**) बाहर जाना (**शक्यते न**) सम्भव नहीं है, उधर (**शीत+उत्कम्प+निमित्तम्**) शीत से उठनेवाली कँपकँपी को मिटाने के लिए (**आयतदृशा**) विशाल लोचनोंवाली प्रियतमाएँ (**गाढम् समालिङ्ग्यते**) पति का गाढ़ आलिङ्गन किये जाती हैं (**च**) और (**रति+अन्त+खेद+च्छिदः**) रति-क्रीड़ा से उत्पन्न थकान को दूर करनेवाली (**शीतल+शीकराः**) नमी से भरी ठण्डी-ठण्डी (**मरुतः जाताः**) हवाएँ बह रही हैं। (**बत**) अहो! ऐसी सुहावनी वर्षा ऋतु में (**धन्यानाम्**) भाग्यशाली पुरुषों के (**दुर्दिनम्**) दुर्दिन=बुरे दिन अथवा वर्षा के दिन भी (**प्रिया+सङ्गमे**) प्रेयसी के संगम के कारण (**सुदिनताम् याति**) सुदिनों में बदल जाते हैं।

भावार्थ—वर्षा ऋतु है। मूसलाधार वर्षा हो रही है। प्रियतम घर से बाहर नहीं जा सकते। उधर प्रिया शीत मिटाने के लिए प्रियतम से लिपट जाती है। रतिक्रिया सम्पन्न होने पर शीतल हवाएँ रति-क्रीड़ा से उत्पन्न होनेवाली थकान को दूर कर देती हैं। इस प्रकार सौभाग्यशालियों के लिए दुर्दिन भी सुदिन बन जाते हैं।

अर्धं सुप्त्वा निशायाः सरभससुरतायाससन्नश्लथाङ्गः,
प्रोद्भूतासह्य तृष्णो मधुमदनिरतो हर्म्यपृष्ठे विविक्ते।
सम्भोगक्लान्तकान्ताशिथिलभुजलताऽऽवर्जितं कर्करीतो,
ज्योत्स्नाभिन्नाच्छधारं न पिबति सलिलं शरदं मन्दभाग्यः॥ 96॥

शब्दार्थ—(**निशायाः, अधर्म्, सुप्त्वा**) आधी रात तक सोकर (**सरभस+सुरत+आयास+सन्न+श्लथ+अङ्गः**) प्रबल उत्कण्ठाभरे सम्भोग की थकान से ढीले पड़े और थके हुए अङ्ग, (**प्र+उद्भूत+असह्य तृष्णः**) असह्य प्यास से व्याकुल, (**मधुमद+निरतः**) मदिरा के नशे में चूर (**विविक्ते**

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हर्म्यपृष्ठे) महल की छत पर एकान्त में (कर्करीतः) लोटे की टूँटी से (सम्भोग+क्लान्त+कान्ता+शिथिल+भुजलता+आवर्जितम्) रतिक्रीड़ा से अलसाई अपनी प्रियतमा की शिथिल बाहों से उँडेले गये (ज्योत्स्ना+अभिन्ना+अच्छधारम्) चन्द्रमा की चाँदनी के कारण निर्मल और (शारदम्, सलिलम्) शरद् ऋतु के कारण शीतल जल को (मन्दभाग्यः) अभागा जन ही (न पिबति) नहीं पी पाता, भाग्यवान् ऐसे जल को अवश्य पीते हैं।

भावार्थ—शरद् ऋतु की चाँदनी रातों में कोठे की छत पर एकान्त प्रदेश में आधी रात तक सोकर फिर कच्ची नींद में जाग और रतिक्रीड़ा से थक-थकाकर प्यास से व्याकुल, मदिरा के नशे में चूर पड़े हुए किसी सौभाग्यशाली को ही अलसाई पत्नी के करकमलों द्वारा टूँटीदार लोटे से उँडेला हुआ निर्मल और शीतल जल प्राप्त होता है।

हेमन्ते दधिदुग्धसर्पिरशना माञ्जिष्ठवासोभृतः,
काश्मीरद्रवसान्द्रदिग्धवपुषः खिन्ना विचित्रै रतैः।
पीनोरुस्तनकामिनीजनकृताश्लेषा गृहाभ्यन्तरे,
ताम्बूलीदलपूगपूरितमुखा धन्याः सुखं शेरते॥ 97॥

शब्दार्थ—(हेमन्ते) जाड़े की रातों में (दधि+दुग्ध+सर्पिः, अशानाः) दूध, दही और घी खानेवाले (मञ्जिष्ठ+वासः+भृतः) मंजीठ की भाँति लाल रंग के वस्त्र पहननेवाले (काश्मीर+द्रव+सान्द्र+दिग्ध+वपुषः) केसर-कस्तूरी से चर्चित गात्र=शरीरोंवाले (विचित्रैः, रतैः खिन्नाः) भाँति-भाँति की रति-क्रीड़ाओं से थके-माँदे (पीन+ऊरु+स्तन+कामिनी+जन+ कृत+आश्लेषाः) गोल-सुडौल सघन जाँघों तथा भरे-भरे पुष्ट स्तनोंवाली कामिनियों के साथ गाढ़ आलिंगन किये हुए (ताम्बूली+दल+पूग+पूरित+ मुखाः) पान और सुपारी से मुख भरे हुए (धन्याः) कुछ भाग्यवान् पुरुष ही (गृह+अभि+अन्तरे) घर के भीतर (सुखम्, शेरते) सुखपूर्वक सोते हैं।

भावार्थ—वे लोग सौभाग्यशाली हैं जो जाड़े की रातों में घी, दूध और दही का सेवन करते हैं, शरीर पर केसर और कस्तूरी का लेप लगाते हैं, लाल वस्त्र पहनते हैं, पान और सुपारी मुँह में दबाये भाँति-भाँति की रति-क्रीड़ा से थककर गोल-गोल, मोटे स्तनों और सघन जाँघोंवाली कामिनी के साथ आलिंगनबद्ध होकर घरों के भीतर सुख की नींद सोया करते हैं।

चुम्बन्तो गण्डभित्तीरलकवति मुखे सीत्कृतान्यादधाना,
वक्षःसूत्कञ्चुकेषु स्तनभरपुलकोद्भेदमापादयन्तः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऊरूनाकम्पयन्तः पृथुजघनतटात्स्रंसयन्तोंऽशुकानि,
व्यक्तं कान्ताजनानां विटचरितभृतः शैशिरा वान्ति वाताः ॥ 98 ॥

शब्दार्थ—(**कान्ता+जनानाम्**) अलबेली सुन्दरियों के (**गण्ड+भित्तीः**) कपोलस्थलों को (**चुम्बन्तः**) चूमते हुए (**अलकवितमुखे**) लटों से ढके मुख से (**सीत्कृतानि+आदधानाः**) सी-सी की ध्वनि उत्पन्न करवाते हुए (**उत्+कञ्चुकेषु**) चोली से रहित (**वक्षःसु**) छातियों पर (**स्तन+भर+पुलक+उद्भेदम्, आपादयन्तः**) पुष्ट कुचों को मसलकर रोमाञ्च उत्पन्न करते हुए (**ऊरून्, आकम्पयन्तः**) जाँघों में कम्पन उत्पन्न करते हुए (**पृथु+जघन+तटात्**) मांसल जाँघों पर से (**अंशुकानि**) साड़ी आदि परिधानीय वस्त्रों को (**स्त्रंसयन्तः**) ढीला कराते हुए—ये (**शैशिराः वाताः**) शिशिर ऋतु [माघ और फाल्गुन] के पवन (**व्यक्तम्**) स्पष्ट रूप से (**विट्+चरित+भृतः**) विट [कामी, लम्पट] पुरुष की चेष्टाओं का आचरण करते हुए (**वान्ति**) बह रहे हैं।

भावार्थ—शिशिर ऋतु का पवन स्पष्ट रूप में विट (लम्पट) पुरुष की चेष्टाओं का अनुकरण करता है। वह ललनाओं के गालों का चुम्बन लेता है, उनके ओठों को छू-छूकर सीत्कार करवाता है, कुचों में रोमाञ्च उत्पन्न करता है, जाँघों को कँपाता है और सम्भोगेच्छा जगाकर साड़ी को ढीला कर देता है।

केशानाकुलयन्दृशो मुकुलयन्वासो बलादाक्षिप-
न्नातन्वन्पुलकोद्गमं प्रकटयन्नङ्गेषु कम्पं शनैः।
वारंवारमुदारसीत्कृतकृतो दन्तच्छदान्पीडयन्,
प्रायः शैशिर एष सम्प्रति मरुत्कान्तासु कान्तायते ॥ 99 ॥

शब्दार्थ—श्लेषालङ्कार द्वारा शिशिर ऋतु और कान्त=पति का वर्णन करते हुए कवि कहता है—(**केशान्, आकुलयन्**) प्रियाओं की अलकों को अपने झोंकों अथवा रति-क्रीड़ा से इधर-उधर बिखेरता हुआ (**दृशः, मुकुलयन्**) दृष्टि को सुख से अथवा पुरुषस्पर्श से निमीलित करता हुआ (**वासः, बलात्, आक्षिपन्**) साड़ी को वेग से अथवा सम्भोग की इच्छा से बलात् उठाता हुआ (**पुलक+उद्गमम्, आतन्वन्**) रोमाञ्च उत्पन्न कर (**अङ्गेषु**) शरीर के अंगों में (**शनैः**) धीरे-धीरे (**कम्पम् प्रकटयन्**) कम्पन प्रकट करता हुआ (**उदार+सीत्कृत+कृतः, दन्तच्छदान् वारम्, वारम्, पीडयन्**) सुन्दर अधरोष्ठों को शीत की अधिकता से अथवा दन्तक्षत से बार-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बार पीड़ित करता हुआ (**एषः**) यह (**शैशिरः मरुत्**) शिशिर ऋतु का पवन (**कान्तासु**) सुन्दरियों के प्रति (**सम्प्रति**) इस समय (**प्रायः**) प्रायः (**कान्तायते**) कान्त=पति के समान व्यवहार कर रहा है।

भावार्थ—अलकों को अस्त-व्यस्त कर, नेत्रों को निमीलित कर, साड़ी को खैंचकर, अङ्गों को गुदगुदाकर, शरीर में कँपकँपी लाकर, बारम्बार ओष्ठ काटकर यह शिशिर ऋतु रमणियों के साथ ऐसी-ऐसी अठखेलियाँ खेल रहा है, मानो वह स्वयं उनका पति ही हो।

वैराग्ये सञ्चरत्येको नीतौ भ्रमति चापरः।
शृङ्गारे रमते कश्चिद् भुवि भेदाः परस्परम्॥ 100॥[1]

शब्दार्थ—(**एकः**) कोई तो (**वैराग्ये**) वैराग्य में (**सञ्चरति**) विचरण करता है (**च**) और (**अपरः**) दूसरा, अन्य कोई (**नीतौ**) नीतिशास्त्र में (**भ्रमति**) भ्रमण करता है (**कश्चित्**) कोई (**शृङ्गारे**) शृङ्गार में ही (**रमते**) रमता है। (**भुवि**) संसार के लोगों में (**परस्परम्**) परस्पर (**भेदाः**) भिन्नता है ही।

भावार्थ—संसार में भाँति-भाँति के लोग हैं—किसी की वैराग्य में रुचि है तो किसी को नीतिशास्त्र या राजनीति अच्छी लगती है और कोई शृङ्गार का ही आनन्द लूटने में जीवन की सफलता मानता है।

इति शृङ्गारशतकम्॥

---

1. कुछ प्रतियों में इसके आगे निम्न श्लोक भी पाया जाता है—

यद्यस्य नास्ति रुचिरं तस्मिंस्तथा स्पृहा मनोज्ञेऽपि।
रमणीयेऽपि सुधांशौ न मनः कामः सरोजिन्यः॥

जिसके लिए जो रुचिकर नहीं होता मनोहर होने पर भी उसमें उसका अनुराग नहीं होता। जैसे चन्द्रमा के रमणीय होने पर भी कमलिनियों को वह प्रिय नहीं लगता, उसे देखकर वे विकसित नहीं होतीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैराग्यशतकम्

मङ्गलाचरणम्

चूडोत्तंसितचारुचन्द्रकलिकाचञ्चच्छिखाभास्वरो,
लीलादग्धविलोलकामशलभःश्रेयोदशाग्रे स्फुरन्।
अन्तःस्फूर्जद् अपारमोहतिमिरप्राग्भारम् उच्चाटयन्
चेतः सद्मानि योगिनां विजयते ज्ञानप्रदीपो हरः॥ 1॥

शब्दार्थ—(चूडा+उत्तंसित+चारु+चन्द्र+कलिका+चञ्चत्+शिखा+भास्वरः) जटाओं में धारण किये हुए, भूषणरूप प्रतीत होनेवाले चन्द्रमा की चन्द्रिका के समान देदीप्यमान शिखा से प्रकाशमान, (लीलादग्ध+विलोल+कामशलभः) सहज स्वभाव से ही चञ्चल कामदेवरूपी शलभ [पतंगे] को भस्म करनेवाले, (श्रेयः दशा+अग्रे) कल्याण के मार्ग में आगे ही आगे (स्फुरन्) प्रेरित करनेवाले (अन्तःस्फूर्जत्) अन्तःकरण के भीतर फैले हुए (मोह+तिमिर+प्राक्+भारम्) अज्ञानरूपी अन्धकार के समूह को (उच्चाटयन्) दूर करते हुए (ज्ञानप्रदीपः) ज्ञानरूपी दीपक के समान (हरः) शंकर (योगिनाम्) योगियों के (चेतः सद्मनि) हृदयरूपी मन्दिर में (विजयते) विराजते हैं।

भावार्थ—जिस शंकर ने चन्द्रमा को अपनी जटाओं में आभूषण के रूप में धारण कर रखा है, जिन्होंने संकल्पमात्र से ही कामदेव को भस्म कर डाला, जो कल्याण-मार्ग में आगे ही आगे प्रेरित करनेवाले हैं, जो अन्तःकरण में छाये हुए मोहरूपी अन्धकार को नष्ट करने में समर्थ हैं, ऐसे महादेव योगिजनों के मन-मन्दिर में सदा विद्यमान रहते हैं।

विशेष—काल्पनिक भगवानों का 'मङ्गलाचरण' मध्ययुग की देन है जब निराकार प्रभु को भी मनुष्यों की तरह साकार मान लिया और हर कोई अन्ध-परम्परा की भेड़चाल चलने लगा। महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में 'श्रीगणेशाय नमः', 'शिवाय नमः' इत्यादि वेद और शास्त्रविरुद्ध मङ्गलाचरणों का स्पष्ट निषेध किया है। यह मङ्गलाचरण भी सर्वथा अवैदिक है। आर्षग्रन्थों में 'ओम्' अथवा 'अथ' शब्द ही देखने में आता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किञ्चित्फलं,
त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं सेवा कृता निष्फला।
भुक्तं मानविवर्जितं परगृहे साशङ्कया काकवत्,
तृष्णे जृम्भसि पापकर्मनिरते नाऽद्यापि सन्तुष्यसि॥ 2॥

शब्दार्थ—(अनेक+दुर्गविषमम्) अनेक दुर्गमनीय, ऊबड़-खाबड़ (देशम्) स्थान (भ्रान्तम्) छान डाले परन्तु (किञ्चित्) कुछ भी (फलम्) फल (न प्राप्तम्) नहीं मिला। (उचितम्) योग्य (जाति+कुल+अभिमानम्) जाति और कुल के गौरव को (त्यक्त्वा) त्यागकर (सेवा कृता) श्रीमानों की सेवा की (निष्फला) किन्तु व्यर्थ। (मान+विवर्जितम्) अपने मान-सम्मान को तिलाञ्जलि देकर, अपमानपूर्वक (परगृहे) दूसरों के घरों में (काकवत्) कौए की भाँति (स+आशङ्कया) डरते-झिझकते (भुक्तम्) भोजन किया। इतने पर भी (पापकर्मनिरते तृष्णे) पाप में प्रवृत्त करनेवाली तृष्णे! (जृम्भसि) तू बढ़ती ही जा रही है (अद्य+अपि) अब भी (न, सन्तुष्यसि) सन्तुष्ट, [तृप्त] नहीं होती।

भावार्थ—लोभ के वशीभूत होकर मैंने अनेक प्रकार के जल, वृक्ष, पर्वतादि दुर्गों के कारण दुर्गमनीय देशों की खाक छान डाली, परन्तु हाथ कुछ नहीं आया। अपनी मान और मर्यादा को छोड़कर श्रीमानों की नौकरी की, परन्तु उसका भी परिणाम कुछ नहीं निकला। घोर अपमान सहकर दूसरों के घर भोजन किया, फिर भी लोभ का पेट नहीं भरा। ओ लोभ! तू निरन्तर एक से बढ़कर एक पाप में फँसाता जाता है, सन्तुष्ट होने का नाम नहीं लेता।

उत्खातं निधिशङ्कया क्षितितलं ध्माता गिरेर्धातवो,
निस्तीर्णः सरितां पतिर्नृपतयो यत्नेन सन्तोषिताः।
मन्त्राराधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः,
प्राप्तः काणवराटकोऽपि न मया तृष्णेऽ[1]धुना मुञ्च माम्॥ 3॥

शब्दार्थ—(निधि+शङ्कया) धन-प्राप्ति की आशा से [यहाँ गड़ा हुआ धन मिल जाएगा] मैंने (क्षिति+तलम् उत्खातम्) पृथिवी की सतह [भूगर्भ] को खोद डाला (गिरेः) पर्वत की (धातवः) मैनसिल आदि अनेक धातुओं को [स्वर्ण--प्राप्ति की इच्छा से] (ध्माता) फूँक डाला, (सरिताम् पतिः) [मोतियों की प्राप्ति की आशा से] नदियों के पति अर्थात् समुद्र को (निस्तीर्णः)

1. पाठभेद—सकामा भव—तेरी इच्छा पूर्ण हो, तेरा भला हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्पूर्णतया पार कर डाला, मथ डाला, (**यत्नेन**) अत्यन्त प्रयत्न और परिश्रम से (**नृपतयः**) राजा-महाराजाओं को (**सन्तोषिताः**) सन्तुष्ट किया, (**मन्त्र+आराधन+तत्परेण+मनसा**) सिद्धिदायक मन्त्र के जपने में तल्लीन मन से (**श्मशाने**) श्मशान में (**निशाः नीताः**) कितनी ही रात्रियाँ व्यतीत कीं फिर भी (**मया**) मुझे (**काण+वराटकः+अपि, न, प्राप्तः**) कानी, फटी कौड़ी भी प्राप्त नहीं हुई, अतः (**तृष्णे**) हे तृष्णे! (**अधुना**) अब तो (**मुञ्च माम्**) मेरी जान छोड़।

भावार्थ—यहाँ से गड़ा हुआ खजाना मिलेगा इस आशा से मैंने भूमि को खोद डाला; सोना बनाने की धुन में पर्वतों की अनेक धातुओं को फूँक डाला। विदेशों में व्यापार करके मालामाल होने की अभिलाषा से समुद्रों के पार चला गया अथवा मोती-माणिक्य-प्राप्ति की इच्छा से समुद्रों को भी मथ डाला। राजाओं की इच्छानुसार चलकर उन्हें प्रसन्न किया। रात्रि में श्मशान में बैठकर मन्त्रों को सिद्ध करने का प्रयत्न किया। यह सब लालच में फँसकर किया परन्तु एक फूटी कौड़ी भी हाथ नहीं लगी। संसार के जाल में भ्रमानेवाली तृष्णे! अब तो तू मेरा पीछा छोड़ दे।

खलोल्लापाः सोढाः कथमपि तदाराधनपरैः,
निगृह्यान्तर्वाष्पं हसितमपि शून्येन मनसा।
कृतो वित्तस्तम्भप्रतिहतधियामञ्जलिरपि,
त्वमाशे मोघाशे किमपरमतो नर्तयसि माम्॥ 4॥

शब्दार्थ—(**तत्+आराधन+परैः**) उनकी सेवा करते हुए, उनको प्रसन्न करने में मन लगाकर (**खल+उल्लापः**) दुष्टों के दुर्वचन (**कथम् अपि**) किसी प्रकार (**सोढाः**) सह लिये (**अन्तः वाष्पं निगृह्य**) अन्दर ही अन्दर आँसुओं को पीकर, आँसुओं के घूँट पीकर (**शून्येन मनसा**) उदास मन से (**हसितम्, अपि**) हम हँसते भी रहे [यद्यपि अपनी दीन दशा को देखकर रोना आता था]। (**वित्त+स्तम्भ+प्रतिहत+धियाम्**) धन के इकट्ठा हो जाने से जिनकी बुद्धि कुण्ठित हो गई हो, उनको (**अञ्जलिः, अपि कृता**) हाथ भी जोड़े, उन्हें प्रणाम किया। (**मोघाशे**) व्यर्थ की आशावाली (**आशे**) तृष्णे! (**माम्**) मुझे (**अतः, अपरम्**) इससे बढ़कर और (**किम्, नर्तयसि**) क्या नाच नचाएगी? अब तो बस कर!

भावार्थ—धन के लोभ में पड़कर मैंने जिनकी नौकरी की उन्हें प्रसन्न रखने के लिए मन मसोसकर उनके दुर्वचनों को सहता रहा, क्योंकि ऐसा न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने से अपना कार्य बिगड़ता। अपनी दीन-हीन दशा को देखकर रोना आता था, परन्तु कहीं वे रुष्ट न हो जाएँ इसलिए उदास मन से हँस भी देता था। धन के कारण जिनकी बुद्धि मारी गई थी उनके समक्ष हाथ भी जोड़े, परन्तु मेरे इन कामों का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा और मेरी आशा पूरी नहीं हुई! हे तृष्णे! भला इससे बढ़कर तू मुझसे और क्या नाच नचाना चाहती है? सब कुछ तो किया परन्तु यह निगोड़ी आशा अब भी पिण्ड नहीं छोड़ती।

अमीषां प्राणानां तुलितबिसिनीपत्रपयसां,
कृते किन्नास्माभिर्विगलितविवेकैर्व्यवसितम्।
यदाढ्यानामग्रे द्रविणमदनिःशङ्कमनसां,
कृतं वीतव्रीडैर्निजगुणकथापातकमपि॥ 5॥

शब्दार्थ—(**तुलित+बिसिनी+पत्र+पयसाम्**) कमल के पत्ते पर पड़े हुए जल के बिन्दुओं के समान [चञ्चल और क्षणभंगुर] (**अमीषाम्**) इन (**प्राणानाम्, कृते**) प्राणों की रक्षा के लिए (**विगलित+विवेकैः**) पूर्णतया विवेकशून्य हुए (**अस्माभिः**) हमारे द्वारा (**किम् न, व्यवसितम्**) क्या नहीं किया गया अर्थात् सब-कुछ किया गया। (**यत्**) यहाँ तक कि (**द्रविण+मद-निशङ्कमनसाम्**) धन के मद में मदान्ध (**आढ्यानाम्**) श्रीमानों के (**अग्रे**) सामने (**वीत+व्रीडैः**) निर्लज्ज होकर (**निज+गुण+कथा+पातकम्**) हमने अपने गुणों के कथन का गुरुतर पाप (**अपि**) भी (**कृतम्**) किया।

भावार्थ—कमल-पत्र के ऊपर पड़ी हुई पानी के बूँद के समान हमारे प्राण चञ्चल एवं क्षणभंगुर हैं, ऐसे प्राणों की रक्षा के लिए विवेकहीन होकर हमने क्या-क्या नहीं किया अर्थात् सभी कुकर्म कर डाले। यहाँ तक कि धन के मद के कारण अन्धे बने हुए सम्पन्न लोगों के समक्ष हमने अपने ही मुख से अपने गुणों के बखान का भारी पाप भी किया, परन्तु मिला क्या? कुछ नहीं।

क्षान्तं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न सन्तोषतः,
सोढा दुःसहशीतवाततपनक्लेशा न तप्तं तपः।
ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमितप्राणैर्न शम्भोः पदं,
तत्तत्कर्म कृतं यदेव मुनिभिस्तैस्तैः फलैर्वञ्चिताः॥ 6॥

शब्दार्थ—(**क्षान्तम्, न, क्षमया**) सहन किया परन्तु सहनशीलता के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कारण नहीं, (गृह+उचित+सुखम्) घर के योग्य उत्तम भोजन आदि के सुख को (त्यक्तम्) त्याग दिया (न सन्तोषतः) किन्तु सन्तोष के कारण नहीं, (दुःसह+शीत+वात+तपन+क्लेशाः) न सहने योग्य कठिन शीत, पवन और ताप के कष्ट (सोढाः) सहन किये, झेले (तपः न तप्तम्) परन्तु तपस्या नहीं की, आजीविका-उपार्जन के लिए ये सब कष्ट सहे (नियमित+प्राणैः) प्राणों का संयम करके, जान पर खेल के, (अहः, निशम्) दिन-रात (वित्तम्) धन का (ध्यातम्) ध्यान किया (न शम्भोः पदम्) परन्तु कल्याणकारी शिव के मोक्षपद का ध्यान नहीं किया। इस प्रकार (मुनिभिः) मुनियों द्वारा (यत् एव) जो-जो कर्म किये जाते हैं (तत्, तत्, कर्म) वही-वही सब कर्म (कृतम्) हम ने भी सभी किये, किन्तु मुनियों को प्राप्त होनेवाले (तैः तैः) उन-उन कार्यों के (फलैः) फलों से (वञ्चिताः) वञ्चित रह गये।

भावार्थ—निन्दा-अपमान आदि सह लिये परन्तु अपनी सहनशीलता के कारण नहीं, अपितु इस भय से कि स्वामी अप्रसन्न न हो जाए। घर के सुखों को त्यागा परन्तु इसलिए नहीं कि उनसे जी भर गया था, अपितु इसलिए कि और अधिक सुख-सामग्री बटोरने के लिए देश-विदेश में घूमें। निर्जन प्रदेशों में गर्मी-सर्दी और आँधी-तूफान सहते रहे परन्तु तप के विचार से नहीं, अपितु भूत-प्रेतों को वश में करके धन-प्राप्ति के लिए। प्राणों को वश में करके ध्यान लगाये रहे किन्तु भगवान् में नहीं, धन में। इस प्रकार ऋषि-मुनियों के समान क्षमा, त्याग, तप, ध्यान आदि सारे कार्य किये, परन्तु भावना विपरीत होने के कारण उनके फलों से वञ्चित रहे।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता-
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याता-
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥ 7 ॥[1]

शब्दार्थ—[हम समझते रहे कि हम ने जी भरके] (भोगाः) सांसारिक

1. इस श्लोक का पद्यानुवाद श्री राधेलालजी त्रिवेदी के मुख से यूँ मुखरित हो उठा है—
भोगों को क्या भोगा हमने, भोग हमें भुगताय गये।
तपते रहे तपों को हम क्या, तप ही हमको ताय गये॥
रहे सोचते काल काट लें, काल हमें ही काट गया।
तृष्णा तू तो हुई न बूढ़ी, हमें बुढ़ापा चाट गया॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भोग भोगे [किन्तु वास्तव में] (न भुक्ताः) नहीं भोग सके, अपितु (वयम्, एव, भुक्ताः) उन भोगों ने ही हमें भोग लिया [चूस लिया], (तपः न तप्तम्) [हमने] तप क्या तपे (वयम् एव तप्ताः) हम ही संतप्त होते रहे, हमें भ्रम रहा कि कितना अच्छा समय बीता, किन्तु (कालः, न, यातः) समय नहीं बीता (वयम्, एव याताः) हम ही बीत गये, (तृष्णा न जीर्णा) तृष्णा बूढ़ी नहीं हुई (वयम्, एव) हम ही (जीर्णाः) जरा-जीर्ण, वृद्ध हो गये।

भावार्थ—वास्तव में हम सांसारिक भोगों को नहीं भोग सके अपितु विषयों ने ही हमें खा डाला। हम ने तप नहीं किया प्रत्युत आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक—त्रिविध तापों ने हमें ही जला डाला। नाना प्रकार के भोगों को भोगते हुए हम समय को नहीं काट पाये, हाँ, स्वयं अवश्य कटते गये। तृष्णा=अधिक और अधिक पाने की लालसा बूढ़ी नहीं हुई, हाँ हमें अवश्य बूढ़ा और जीर्ण-शीर्ण बना दिया।

विशेष—'भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः' इस अंश की व्याख्या एक उर्दू कवि के शब्दों में भी पढ़ने योग्य है। लीजिए रसास्वादन कीजिए—

हज़ारों ख्वाहिशें ऐसी कि हर ख्वाहिश पै दम निकले।
बहुत निकले मेरे अर्मां लेकिन फिर भी कम निकले॥

वलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितैरङ्कितं शिरः।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते॥ 8॥

शब्दार्थ—(वलिभिः) झुर्रियों से (मुखम्+आक्रान्तम्) मुख-मण्डल भर गया है (शिरः) सिर (पलितैः) श्वेत, सफेद बालों से (अङ्कितम्) चिह्नित हो गया है, अर्थात् सिर के बाल सफेद हो गये हैं (गात्राणि) शरीर के सब अङ्ग (शिथिलायन्ते) ढीले पड़ रहे हैं, परन्तु (एका तृष्णा) अकेली तृष्णा (तरुणायते) जवान [बलवती] होती जा रही है।

भावार्थ—चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गईं, सिर के बाल सफेद हो गये, हाथ-पैर आदि शरीर के सारे अंग ढीले पड़ गये, परन्तु तृष्णा अब भी जोर पकड़ रही है।

निवृत्ता भोगेच्छा पुरुषबहुमानो विगलितः,
समानाः स्वर्याताः सपदि सुहृदो जीवितसमाः।
शनैर्यष्ट्युत्थानं घनतिमिररुद्धे च नयने,
अहो धृष्टः कायस्तदपि मरणापायचकितः॥ 9॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—(**भोग+इच्छा**) सांसारिक विषयों को भोगने की इच्छा (**निवृत्ता**) अशक्त हो गई। (**पुरुष+बहुमानः**) मेरे प्रति लोगों में पहले जो मान-सम्मान और आदर था वह भी (**विगलितः**) कम हो गया। (**समानाः**) समान अवस्थावाले (**जीवित+समाः**) प्राणों के समान प्रिय (**सुहृदः**) मित्र भी (**सपदि**) शीघ्र ही, दुरवस्था भोगने से पूर्व ही (**स्वःयाताः**) स्वर्ग सिधार गये। हम भी (**शनैः**) धीरे-धीरे (**यष्टि+उत्थानम्**) लकड़ी के सहारे उठ पाते हैं (**च**) और (**नयने**) आँखों में (**घन+तिमिर+रुद्धे**) घना अन्धकार छा गया है (**अहो**) अहो! (**तत्+अपि**) फिर भी यह (**धृष्टः**) निर्लज्ज (**कायः**) शरीर (**मरण+अपाय+चकितः**) मरने की बात सुनकर चौंक पड़ता है।

भावार्थ—सांसारिक विषय-भोगों को भोगने की इच्छा शक्तिहीन हो गई। लोगों में पहले जो आदर, मान और सम्मान था, वह भी घट गया। संगी-साथी स्वर्ग सिधार गये। हम भी लाठी के सहारे उठ पाते हैं, दृष्टि क्षीण हो गई है। इतना होने पर भी मरने की बात सुनकर जी घबरा जाता है। आश्चर्य है इतना सब-कुछ होने पर भी जीने की इच्छा बनी हुई है।

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला,
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी।
मोहावर्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी,
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः ॥ 10 ॥

शब्दार्थ—इस संसार में (**आशा, नाम, नदी**) आशा नाम की एक नदी है। यह नदी (**मनोरथ+जला**) ऐश्वर्य-भोग—[खान-पान, विहार आदि] कामनाओं के जल से परिपूर्ण है। (**तृष्णा+तरङ्ग+आकुला**) इसमें तृष्णा की तरंगें उठ रही हैं (**राग+ग्राह+वती**) अभीष्ट पदार्थों के प्रति रागरूपी मगरमच्छों से यह भरी हुई है। (**वितर्क+विहगा**) तर्क-वितर्करूपी पक्षी इसमें तैर रहे हैं। (**धैर्य+द्रुम+ध्वंसिनी**) धैर्यरूपी वृक्ष को यह उखाड़कर फैंकनेवाली है। (**मोह+आवर्त+सुदुस्तरा**) इसमें मोह [अज्ञान] रूपी भँवर पड़ रहे हैं। (**अतिगहना**) यह अत्यन्त गहरी है, (**प्र+उत्तुङ्ग+चिन्ता+तटी**) चिन्तारूपी ऊँचे-ऊँचे इसके तट हैं। अतः इसे पार करना कठिन है परन्तु (**विशुद्ध+मनसः**) शुद्ध अन्तःकरण, मनवाले (**योगीश्वराः**) योगिराज (**तस्याः पारगताः**) इस नदी को पार करके [और ब्रह्मानन्द में मग्न होकर] (**नन्दन्ति**) आनन्दित होते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावार्थ—इस संसार में आशा एक नदी के समान है। नाना प्रकार की इच्छाएँ ही उस नदी का जल हैं। अप्राप्त वस्तुओं की प्राप्ति का लोभ ही इसकी लहरें हैं। प्राप्त वस्तुओं के प्रति आसक्तिरूपी मगरमच्छों से यह भरी हुई है। तर्क और वितर्क=शंका, सन्देह के पक्षी इसमें तैर रहे हैं। यह आशारूपी नदी धैर्यरूपी वृक्षों को उखाड़कर फैंकने वाली हैं। इस नदी में अज्ञानरूपी भँवर पड़ रहे हैं। यह पार करने में अत्यन्त कठिन है। चिन्तारूपी इसके ऊँचे-ऊँचे किनारे हैं। ऐसी गहरी और भयंकर यह नदी है, परन्तु शुद्ध मनवाले योगिजन इसे पार कर ब्रह्मानन्द में मग्न होकर आनन्दित होते हैं।

न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलं,
विपाकः पुण्यानां जनयति भयं मे विमृशतः।
महद्भिः पुण्यौघैश्चिरपरिगृहीताश्च विषया,
महान्तो जायन्ते व्यसनमिव दातुं विषयिणाम्॥ 11॥

शब्दार्थ—मैं (**संसार+उत्पन्नम्**) संसार में फल की कामना से किये गये (**चरितम्**) आचरण, पुण्यकर्म को (**कुशलम्**) कल्याणकारी (**न+अनु+पश्यामि**) नहीं समझता, क्योंकि (**पुण्यानाम्**) पुण्यकर्मों के (**विपाकः**) परिणाम पर (**विमृशतः**) विचार करते हुए (**मे**) मुझे (**भयम्**) भय (**जनयति**) उत्पन्न होता है कि (**महद्भिः**) भारी (**पुण्य+ओघैः**) पुण्यकर्मों के कारण (**चिर+परिगृहीताः**) बहुत समय तक भोगे हुए (**विषयाः**) विषय-भोग (**महान्तः**) अन्त में चलकर (**विषयिणाम्**) विषयी लोगों को (**व्यसनम्, दातुम्, इव**) दुःख देने के ही (**जायन्ते**) कारण बनते हैं।

भावार्थ—संसार में फल की कामना से किये गये पुण्यकर्मों में मुझे कोई भलाई दिखाई नहीं देती। पुण्यकर्मों के परिणाम पर विचार करते हुए भी मुझे भय लगता है, क्योंकि अनेक पुण्यकर्मों के पश्चात् मनुष्य को धन, स्त्री-पुत्र आदि का सुख प्राप्त होता है, परन्तु ये सब भी अन्त में दुःख का कारण बन जाते हैं।

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वाऽपि विषया,
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून्।
व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः,
स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति॥ 12॥

शब्दार्थ—(**विषयाः**) ये सांसारिक सुख-भोग (**चिरतरम्**) बहुत समय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तक (उषित्वा, अपि) भोगने पर भी (अवश्यम्) निश्चय ही (यातारः) अन्त में छूट जाएँगे। (यत्) यदि (जनः) मनुष्य (स्वयम्) स्वयं ही (अमून्) उन भोगों को (न, त्यजति) नहीं छोड़ता, तब (वियोगे) उनके अपने-आप छूटने में (कः) क्या (भेदः) अन्तर है ? वही बताते हैं— (स्वातन्त्र्यात्) अपने-आप (व्रजन्तः) जाने पर, छूटने पर ये सुख-भोग (मनसः) मन के (अतुल+परितापाय) अत्यन्त सन्ताप का कारण बनते हैं (स्वयं त्यक्ता) मनुष्य के द्वारा स्वयम् इनका त्याग कर देने पर (एते) ये (हि) निश्चय से (अनन्तम्) अत्यधिक (शम+सुखम्) मानसिक शान्ति और आनन्द (विदधति) प्रदान करते हैं।

भावार्थ—संसार के विषय-भोगों को चाहे कितने ही समय तक भोगते रहें, अन्त में वे छूटेंगे ही। जब इन्हें छूटना ही है तब हम इन्हें अपनी इच्छा से क्यों न त्याग दें। हमारी इच्छा के विरुद्ध इतना टूट जाना और अपनी प्रसन्नता से इन्हें त्याग देना—इन दोनों स्थितियों में महान् अन्तर है। क्या अन्तर है ? यदि ये विषय स्वयं छूटेंगे तब ये हमारे कष्ट-क्लेश और दुःख का कारण बनेंगे, और यदि हम स्वयं इन्हें छोड़ देंगे तो ये हमारे मन के लिए सुख, शान्ति और आनन्द का कारण बनेंगे।

ब्रह्मज्ञानविवेकनिर्मलधियः कुर्वन्त्यहो दुष्करं,
यन्मुञ्चन्त्युपभोगभाञ्ज्यपि धनान्येकान्ततो निःस्पृहाः।
न प्राप्तानि पुरा न सम्प्रति न च प्राप्तौ दृढप्रत्ययो,
वाञ्छामात्रपरिग्रहाण्यपि परं त्यक्तुं न शक्ता वयम्॥ 13॥

शब्दार्थ—(अहो) महद् आश्चर्य है ! (ब्रह्म+ज्ञान+विवेक+निर्मल+धियः) ब्रह्मज्ञान के विवेक से विमल बुद्धिवाले ज्ञानी (दुष्करं कुर्वन्ति) अत्यन्त दुष्कर कर्म करते हैं (यत्) कि वे (उपभोग+भाञ्जि) उपभोग में आनेवाले (धनानि, अपि) धनों को भी (एकान्ततः) अत्यन्त (निः स्पृहाः) उदासीन होकर (मुञ्चन्ति) त्याग देते हैं। एक ओर यह स्थिति है दूसरी ओर (वयम्) हम साधारण मनुष्य हैं जिन्हें (पुरा) पहले कभी (न प्राप्तानि) धन-सम्पत्ति प्राप्त नहीं हुई, (न सम्प्रति) न अब है (न च) और न ही (प्राप्तौ) भविष्य में प्राप्त होने का (दृढ+प्रत्ययः) पूर्ण विश्वास, [पक्का भरोसा] है (परम्) फिर भी (वाञ्छा+मात्र+परिग्रहाणि) इच्छा मात्र से पकड़ी हुई वस्तुओं, मनःसंकल्पित पदार्थों को (अपि) भी (त्यक्तुम्) छोड़ने में (न, शक्ताः) समर्थ नहीं हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावार्थ—ब्रह्मज्ञान से निर्मल बुद्धिवाले कठिन से कठिन कार्य भी कर डालते हैं। वे धन-सम्पत्ति का उपभोग करते हुए भी एकदम उदासीन होकर उसे त्याग सकते हैं, परन्तु साधारण मनुष्य जिन्हें धन-सम्पत्ति न पहले कभी मिली थी, न अब है, और न आगे मिलने की कोई आशा है, केवल मन के मोदक (लड्डू) हैं, इन काल्पनिक वस्तुओं का विचार भी नहीं छोड़ सकते।

धन्यानां गिरिकन्दरेषु वसतां ज्योतिः परं ध्यायता-
मानन्दाश्रुकणान् पिबन्ति शकुना निःशङ्कमङ्केशयाः।
अस्माकं तु मनोरथोपरचितप्रसादवापीतट-
क्रीडाकाननकेलिकौतुकजुषामायुः परं क्षीयते॥ 14॥

शब्दार्थ—(**गिरि+कन्दरेषु**) पहाड़ों की गुफाओं में (**वसताम्**) निवास करते हुए (**परम्, ज्योतिः ध्यायताम्**) परब्रह्म की ज्योति का ध्यान करनेवाले (**धन्यानाम्**) सौभाग्यशालो योगियों के (**आनन्द+अश्रु+कणान्**) आनन्द के कारण बहनेवाले आँसुओं को (**शकुनाः**) पक्षिगण (**अङ्केशयाः**) उनकी गोद में बैठकर (**निःशङ्कम्**) निर्भय होकर (**पिबन्ति**) पान करते हैं। (**अस्माकम्, तु**) हमारी तो यह दशा है कि हम (**मनोरथ+उपरचित+प्रासाद+वापी+तट+क्रीडा+कानन+केलि+कौतुक+जुषाम्**) कल्पनामात्र से निर्माण किये हुए महलों, बावड़ी, तालाब के घाटों, क्रीड़ा-वनों की मौज-मस्ती के लिए लालायित रहते हैं और इसी प्रकार (**परम् आयुः**) पूरी की पूरी आयु (**क्षीयते**) बीत जाती है।

भावार्थ—वे योगिजन धन्य हैं, जो पर्वत की कन्दराओं में रहते हुए परब्रह्म की ज्योति का ध्यान करते हैं। उस ध्यान की अवस्था में उनकी आँखों से जो आनन्द के आँसू निकलते हैं, पक्षिगण उनकी गोद में बैठकर निर्भय होकर उनका पान करते हैं। इधर हम लोगों [साधारण मनुष्यों] के अभागेपन की पराकाष्ठा है कि महल, बाग-बगीचे, तालाब आदि के स्वप्न देखते-देखते सारी आयु व्यतीत हो जाती है और मिलता कुछ भी नहीं है।

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं,
शय्या च भूः परिजनो निजदेहमात्रम्।
वस्त्रं विशीर्णशतखण्डमयी च कन्था,
हा हा तदपि विषयान्न परित्यजन्ति॥ 15॥

शब्दार्थ—(**भिक्षा+अशनम्**) भिक्षा का तो भोजन है अर्थात् भीख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माँगकर खाना है (तत्+अपि) वह भी (नीरसम्) रूखा-सूखा और (एक+वारम्) दिनभर में एक ही बार (च) और (भूः शय्या) सोने के लिए भूमि का बिछौना है (निज+देह+मात्रम्) अपना शरीर मात्र ही (परिजनः) परिवार है, (च) तथा (वस्त्रम्) पहनने-ओढ़ने के नाम पर वस्त्र के रूप में (विशीर्ण+शत+खण्ड+मयी, कन्था) एकदम फटे हुए सैकड़ों चिथड़ों की गुदड़ी है (तत्+अपि) ऐसी दयनीय स्थिति में भी मनुष्य (विषयान्) विषय-भोगों को (न परि+त्यजन्ति) नहीं त्यागते। (हा, हा) शोक! महाशोक!! इससे बड़ा दुःख और क्या होगा?

भावार्थ—भीख माँगकर तो खाते हैं, वह भी रूखा-सूखा और दिनभर में एक बार। सोने के लिए चारपाई नहीं है, भूमि पर पड़ रहते हैं। बाल-बच्चा कोई है नहीं, अपना शरीर ही भाई-बन्धु और परिवार है। पहनने, ओढ़ने और बिछाने के लिए एक गुदड़ी है, जिसमें सैकड़ों पैबंद लगे हैं। इतना सब-कुछ होने पर भी मन विषयों में ही लगा रहता है। शोक! महा शोक!! इससे बड़ा पतन और क्या होगा?

स्तनौ मांसग्रन्थी कनककलशावित्युपमितौ,
मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशाङ्केन तुलितम्।
स्त्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्धिजघन-
महो निन्द्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरु कृतम्॥ 16॥

शब्दार्थ—(स्तनौ) नारियों के वक्षःस्थल पर उठे हुए दोनों स्तनों (मांस+ग्रन्थी) मांस की गाँठें, लोथड़े ही तो हैं परन्तु कवियों ने (कनक, कलशौ+इति) ये सोने के कलश हैं, ऐसा कहकर (उपमितौ) इनकी उपमा दी है (मुखम्) स्त्री का मुख (श्लेष्म+आगारम्) कफ और थूक का स्थान है (तत्+अपि) फिर भी (शशाङ्केन तुलितम्) चन्द्रमा से उसकी तुलना की गई है (स्त्रवन्+मूत्र+क्लिन्नम्) बहनेवाले मूत्र से भीगे हुए (करिवर+कर+स्पर्धि+जघनम्) जघनों [जाँघों] को उत्तम हाथी की सूँड से होड़ करनेवाली कहा है, (अहो) आश्चर्य है (कविजन+विशेषैः) कुछ विशेष कवियों के द्वारा (निन्द्यम्, रूपम्) अत्यन्त निन्दनीय कामिनी के रूप को (गुरु, कृतम्) बढ़ा-चढ़ाकर श्रेष्ठ बना दिया गया है।

भावार्थ—स्त्रियों के स्तन वस्तुतः मांस के लोथड़े, हैं परन्तु कवियों ने उन्हें स्वर्णकलश कहा। नारी के मुख में कफ और थूक भरा रहता है परन्तु उसे चन्द्रमा बना दिया। उसकी जाँघों से मूत्र टपकता रहता है परन्तु उनकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपमा गजराज की सूँड से दे दी। स्त्री का प्रत्येक अङ्ग घृणास्पद ही है परन्तु कवियों ने उसे बढ़ा-चढ़ाकर मनोहर मान रखा है।

विशेष—'शृंगारशतकम्' में स्वयं भर्तृहरि जी ने नारी की बढ़-चढ़कर प्रशंसा की है, परन्तु 'वैराग्यशतकम्' में नारी-निन्दा की पराकाष्ठा कर दी है। इसे क्या कहें? वदतो व्याघात [अपनी बात का स्वयं खण्डन करना] अथवा स्मृतिदोष? अथवा वैरागियों को मोक्षमार्ग पर आरूढ़ होने के लिए उद्बोधन?

अजानन् दाहात्म्यं पततु शलभस्तीव्रदहने[1],
स मीनोऽप्यज्ञानाद् बडिशयुतमश्नातु पिशितम्।
विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जालजटिलान्,
न मुञ्चामः कामानहह गहनो मोहमहिमा॥17॥

शब्दार्थ—(**शलभः**) पतंगा (**दाहात्म्यम्**) अग्नि के जलाने के स्वभाव को (**अजानन्**) न जानने के कारण (**तीव्र+दहने**) तीव्र अग्नि पर (**पततु**) पड़ता रहे [और अपने प्राण देता रहे] (**सः, मीनः, अपि**) वह मछली भी (**अज्ञानात्**) अज्ञान के कारण (**वडिशयुतम्**) बंसी, काँटे में लगे (**पिशितम्**) मांस को (**अश्नातु**) भले ही खाये और अपने प्राण गँवा दे परन्तु (**इह**) संसार में (**एते वयम्**) ये हम हैं कि (**विजानन्तः, अपि**) भली-भाँति जानते हुए भी (**विपत्+जाल+जटिलान्**) विपत्तियों के जाल से जटिल बनी हुई (**कामान्**) काम-वासनाओं को (**न, मुञ्चामः**) नहीं छोड़ते हैं। (**अहो**) बड़े आश्चर्य की बात है! (**मोह+महिमा**) मोह की महिमा (**गहना**) गहन है, महान् है।

भावार्थ—'आग जला देगी'—इस बात को न जानकर पतंगे दहकते अंगारों पर टूट पड़ते हैं और जलकर भस्म हो जाते हैं। मछलियाँ भी अज्ञान के कारण काँटे में लगे हुए मांस को मुँह में ले लेती हैं और काल के जाल में चली जाती हैं, परन्तु मनुष्य तो जानते हैं कि विषय-वासनाएँ घोर कष्टों और संकटों का कारण हैं, फिर भी मोहवश उन्हें छोड़ने का नाम नहीं लेते।

तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं शीतमधुरं,
क्षुधार्तः शाल्यन्नं कवलयति शाकादिकलितम्।
प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढतरमाश्लिष्यति वधूं,
प्रतीकारं व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति जनः॥18॥

---

1. पाठभेद—दीपदहने—अर्थ होगा दीप-शिखा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—जब मनुष्य का (**आस्ये**) गला, कण्ठ (**तृषा**) प्यास से (**शुष्यति**) सूखने लगता है तब वह (**शीत+मधुरम्**) ठण्डा और मीठा (**सलिलम्**) जल (**पिबति**) पीता है, (**क्षुधार्तः**) भूख से पीड़ित मनुष्य (**शाक+आदि+कलितम्**) शाक आदि से युक्त (**शाली+अन्नम्**) शाली चावलों का भात (**कवलयति**) खाता है—इस प्रकार अपनी भूख मिटा लेता है, (**काम+अग्नौ, प्रदीप्ते**) काम-अग्नि के प्रदीप्त होने पर (**वधूम्**) अपनी स्त्री का (**सुदृढतरम्**) अत्यन्त गाढ (**आश्लिष्यति**) आलिङ्गन करता है, ये सब बातें (**व्याधेः**) रोग की (**प्रतीकारम्**) औषध हैं परन्तु (**जनः**) लोग (**सुखम् इति, विपर्यस्यति**) वास्तविक तथ्य को न जानकर इन्हीं में सुख समझता है।

भावार्थ—प्यास लगने पर मनुष्य शीतल और मधुर जल पीकर अपनी प्यास बुझा लेता है। भूख लगने पर स्वादिष्ठ भोजन करके अपनी क्षुधा मिटा लेता है। काम-वासना से पीड़ित होने पर अपनी पत्नी का गाढ़ालिङ्गन कर सुख पा लेता है—ये सब क्रियाएँ शारीरिक विकारों की ओषधियाँ हैं, परन्तु मनुष्य तथ्य को न जानकर उन्हीं में सच्चा सुख मान बैठता है।

तुङ्गं वेश्म सुताः सतामभिमताः संख्यातिगाः सम्पदः,
कल्याणी दयिता वयश्च नवमित्यज्ञानमूढो जनः।
मत्वा विश्वमनश्वरं निविशते संसारकारागृहे,
संदृश्य क्षणभङ्गुरं तदखिलं धन्यस्तु संन्यस्यति॥ 19॥

शब्दार्थ—(**तुङ्गम् वेश्म**) ऊँचा महल है, भव्य भवन है, (**सताम्, अभिमताः**) सज्जनों द्वारा वाञ्छनीय (**सुताः**) पुत्र हैं (**संख्या+अतिगाः**) अमित, असीम (**सम्पदः**) सम्पत्ति है, (**कल्याणी**) मङ्गलमयी (**दयिता**) पत्नी है (**च**) और (**नवम् वयः**) नई जवानी है, (**इति**) इस प्रकार (**विश्वम्**) संसार को (**अनश्वरम्**) नाशरहित, सदा रहनेवाला (**मत्वा**) मानकर (**अज्ञान+मूढः, जनः**) अज्ञान में मूढ़ बना हुआ मनुष्य (**संसार+कारागृहे**) संसाररूपी बन्दीगृह [जेलखाने] में (**निविशते**) जकड़ा रहता है। (**तु**) सचमुच (**धन्यः**) वह धन्य है जो (**तत्+अखिलम्**) उस सारे वैभव को (**क्षणभङ्गुरम्**) क्षणमात्र में नष्ट होनेवाला (**संदृश्य**) देखकर, समझकर (**संन्यस्यति**) त्याग देता है।

भावार्थ—'मेरे भव्य भवन हैं, सुशील पुत्र हैं, अपार सम्पत्ति है, अनुकूल पत्नी है, मैं स्वयं भी जवान हूँ'—ऐसा मूर्ख लोग सोचा करते हैं और समझते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं कि ये सदा बने रहेंगे। इस प्रकार वे संसार के बन्धनों में बँध जाते हैं। जो लोग इस सारे खेल-तमाशे को चार दिन की चाँदनी समझकर छोड़ देते हैं, वे धन्य हैं।

जीर्णा कन्था ततः किं सितममलपटं पट्टसूत्रं ततः कि-
मेका भार्या ततः किं हयकरिसुगणैरावृतो वा ततः किम्।
भक्तं भुक्तं ततः किं कदशनमथवा वासरान्ते ततः किं,
व्यक्तं ज्योतिर्न वान्तर्मथितभवभयं वैभवं वा ततः किम्॥ 20॥

शब्दार्थ—(जीर्णा कन्था) पुरानी गुदड़ी है **(ततः किम्)** तो क्या? **(सितम्)** श्वेत **(अमल+पटम्)** स्वच्छ वस्त्र और **(पट्टसूत्रम्)** रेशमी वस्त्र धारण किये **(ततः किम्)** तो क्या? **(एका भार्या)** एक ही [अनुपम] पत्नी रही **(ततः किम्)** तो क्या **(वा)** अथवा **(हय+करि+सुगणैः+ आवृतः)** घोड़े-हाथी के समूहों से घिरा है **(ततः किम्)** तो क्या? **(भक्तम्)** उत्तम भात अथवा सुस्वादु व्यञ्जनों का भोजन **(भुक्तम्)** किया, खाया **(ततः किम्)** तो क्या **(अथवा)** अथवा **(वासरान्ते)** सांयकाल का रखा हुआ **(कद+अशनम्)** कुत्सित, निन्दित [रूखा-बासी] अन्न खाया **(ततः किम्)** तो क्या? **(वा अन्तः+मथित+भव+भयम्)** यदि हृदय-मन्दिर में संसार के भय को दूर करनेवाली **(ज्योतिः)** परमात्मा-ज्योति **(न, व्यक्तम्)** प्रकाशित नहीं हुई **(ततः)** तो **(वैभवम् किम्)** इस सारे वैभव से क्या? यह सब व्यर्थ है।

भावार्थ—पुरानी गुदड़ी ओढ़ी तो उससे क्या? श्वेत और स्वच्छ रेशमी वस्त्र धारण किये तो भी क्या? अनुपम सुन्दरी स्त्री रही, हाथी-घोड़ों के समूह से घिरा हुआ है तो भी क्या? बढ़िया भोजन किया अथवा बासी खाया, इससे भी क्या? यदि हृदय-मन्दिर में संसार के भय को दूर करनेवाली, परमात्म-ज्योति प्रकट नहीं हुई तो इस सारे वैभव का क्या प्रयोजन? यह सब व्यर्थ और निःसार है।

दीना दीनमुखैः सदैव शिशुकैराकृष्टजीर्णाम्बरा,
क्रोशद्भिः क्षुधितैर्निरन्नविधुरा दृश्या न चेद् गेहिनी।
याच्ञाभङ्गभयेन गद्गदगलत्त्रुट्यद्विलीनाक्षरं,
को देहीति वदेत्स्वदग्धजठरस्यार्थे मनस्वी पुमान्॥ 21॥

शब्दार्थ—(दीन+मुखैः) मुँह लटकाये हुए **(क्षुधितैः)** भूख से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(क्रोशद्भिः) बिलखते हुए (शिशुकैः) छोटे बालकों द्वारा (सदा+एव) सदा ही (आकृष्ट+जीर्ण+अम्बरा) जिसका जीर्ण-शीर्ण अञ्चल=वस्त्र खींचा जा रहा है (दीना) दीन, दरिद्र (निरन्न+विधुरा) घर में अन्न न होने के कारण अत्यन्त दुःखी (गेहिनी) गृहिणी, स्त्री (दृश्या न चेत्) न दीख पड़े तो (कः मनस्वी पुमान्) कौन स्वाभिमानी मनुष्य (स्व+दग्ध+जठरस्य+अर्थे) अपने जले पेट को भरने के लिए (याच्ञा+भङ्ग+भयेन) याचना के अस्वीकृत होने के भय से (गद्गदगल+त्र्युट्यत्+विलीन+अक्षरम्) लड़खड़ाते हुए गले से, टूटे-फूटे और अस्पष्ट शब्दों में (देहि इति वदेत्) 'मुझे दो'—ऐसा कहेगा ?

भावार्थ—भूख से बिलबिलाते हुए बच्चे माँ की फटी-पुरानी साड़ी को पकड़कर खींचते हुए रो रहे हों और स्वयं माँ भी अन्न के विना बेचैन हो—यदि ऐसी पत्नी और बच्चों को न देखना पड़े तो कोई स्वाभिमानी अपना पेट भरने के लिए किसी के आगे जाकर हाथ नहीं फैलाएगा और वह भी तब जब हृदय में अस्वीकृति का भय हो। स्वाभिमानी मनुष्य अपने दीन-हीन बाल-बच्चों और घरवाली की दुर्दशा को देखकर ही भीख माँगने जैसा घृणित कर्म करता है।

अभिमतमहामानग्रन्थिप्रभेदपटीयसी,
गुरुतरगुणग्रामम्भोजस्फुटोज्ज्वलचन्द्रिका।
विपुलविलसल्लज्जावल्लीवितानकुठारिका,
जठरपिठरी दुष्पूरेयं करोति विडम्बनाम्॥ 22॥

शब्दार्थ—(अभिमत+महा+मान+ग्रन्थि+प्रभेद+पटीयसी) अभीष्ट स्वाभिमान की गाँठ को तोड़ने में अत्यन्त पटु, समर्थ (गुरुतर+गुण+ग्राम+अम्भोज+स्फुट+उज्ज्वल+चन्द्रिका) बहुत सारे सद्गुणरूपी कमलों के लिए अत्यन्त विस्तृत निर्मल चाँदनी (विपुल+विलसत्+लज्जा+वल्ली+वितान+कुठारिका) अत्यन्त प्रकाशमान लज्जारूपी लता के विस्तार को जड़मूल से नष्ट करनेवाली कुल्हाड़ी के समान (इयम् दुष्पूरा) यह कभी न भरनेवाली (जठर+पिठरी) पेटरूपी गुफा (विडम्बनाम्, करोति) अत्यन्त उपहास कराती है।

भावार्थ—पेट मनुष्य के उचित स्वाभिमन अर्थात् कुलीनता, विद्वत्ता आदि को नष्ट कर डालता है। जैसे चन्द्रमा की चन्द्रिका कमलों को सिकोड़ देती है उसी प्रकार पेट मनुष्य के सद्गुणों को भी संकुचित कर डालता है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और लज्जारूपी लता को कुल्हाड़ी के समान काटकर फेंक देता है। यह पेट कभी भरने का नाम ही नहीं लेता। लोभ बढ़ता ही जाता है। इसलिए यह नित नये पाखण्ड [हीनकार्य] कराता है।

पुण्ये ग्रामे वने वा महति सितपटच्छन्नपालीं कपालिं,
ह्यादाय न्यायगर्भद्विजहुतहुतभुग्धूमधूम्रोपकण्ठे।
द्वारं द्वारं प्रविष्टो वरमुदरदरीपूरणाय क्षुधार्तो,
मानी प्राणैः सनाथो न पुनरनुदिनं तुल्यकुल्येषु दीनः ॥ 23 ॥

शब्दार्थ—(**क्षुधार्तः**) भूख से व्याकुल (**मानी**) स्वाभिमानी पुरुष के लिए (**वरम्**) यह अच्छा है कि वह (**न्यायगर्भ+द्विजहुत+हुतभुक्+धूमधूम्रोपकण्ठे**) न्यायशास्त्र और वेद के तत्त्वों के वेत्ता ब्राह्मणों के द्वारा आहुतियों से पूर्ण अग्नि के धुँए से लाल-काले भागवाले (**पुण्ये ग्रामे**) पवित्र गाँव में (**वा**) अथवा (**महति वने**) बड़े वन में (**उदर+दरी+पूरणाय**) अपनी पेटरूपी गुहा को भरने के लिए (**सित+पटच्छन्न+पालीम् कपालिम्**) सफेद कपड़ों से ढके किनारोंवाले कमण्डलु को (**आदाय**) लेकर (**द्वारम्, द्वारम्, प्रविष्टः**) द्वार-द्वार में प्रवेश करे [घर-घर से भिक्षा माँगे] (**पुनः**) परन्तु (**अनुदिनम्**) प्रतिदिन (**प्राणैः सनाथः**) प्राण रहते हुए, जीते जी (**तुल्य+कुल्येषु**) समान कुलवाले बन्धु-बान्धवों के यहाँ (**दीनः न**) दीन होकर रहना अच्छा नहीं है।

भावार्थ—किसी स्वाभिमानी मनुष्य को अपने बराबरवालों के बीच में रहकर अपमानित होते रहना उचित नहीं है। इस अपमानित जीवन से अच्छा है कि वह किसी पवित्र ग्राम या बड़े भारी वन में चला जाए, जहाँ ब्राह्मण लोग सदा यज्ञ करते रहते हैं। वहाँ पेट भरने के लिए हाथ में कमण्डलु लेकर घर-घर में भीख माँगे और इस प्रकार अपने दिन बिताये।

गङ्गातरङ्गकणशीकरशीतलानि,
विद्याधराध्युषितचारुशिलातलानि।
स्थानानि किं हिमवतः प्रलयं गतानि,
यत्सावमानपरपिण्डरता मनुष्याः ॥ 24 ॥

शब्दार्थ—(**गङ्गा+तरङ्ग+कण+शीकर+शीतलानि**) गङ्गा की तरङ्गों के छींटों की फुहार से शीतल (**विद्याधर+अध्युषित+चारु+शिला+तलानि**) विद्याधरों के विराजने से सुन्दर चट्टानोंवाले (**हिमवतः**) हिमालय के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(स्थानानि) रमणीय स्थान (किम्) क्या (प्रलयम् गतानि) नष्ट हो गये ? (यत्) जो कि (मनुष्याः) मनुष्य (स+अवमान+पर+पिण्ड+रताः) अपमान के साथ दूसरों के टुकड़ों के लिए लालायित रहते हैं।

भावार्थ—क्या हिमालय पर्वत के वे रमणीय स्थान नष्ट हो गये जो गङ्गा की तरङ्गों के जलकणों की फुहारों से शीतल रहते हैं, जहाँ विद्वान् लोग विराजते हैं ? यदि नहीं, तो फिर मनुष्य अपमानित होने पर भी दूसरों के टुकड़ों के लिए हाथ क्यों फैलाते हैं ?

किं कन्दाः कन्दरेभ्यः प्रलयमुपगता निर्झरा वा गिरिभ्यः,
प्रध्वस्ता वा तरुभ्यः सरसफलभृतो वल्कलिन्यश्च शाखाः।
वीक्ष्यन्ते यन्मुखानि प्रसभमुपगतप्रश्रयाणां खलानां,
दुःखाप्तस्वल्पवित्तस्मयपवनवशान् नर्तितभ्रूलतानि ॥ 25 ॥

शब्दार्थ—(किम्) क्या (कन्दरेभ्यः) पर्वत की गुफाओं से (कन्दाः) कन्दमूल आदि (प्रलयम् उपगताः) समूल नष्ट हो गये (वा) अथवा (गिरिभ्यः निर्झराः) पहाड़ों में से झरने भी नष्ट हो गये (वा) या (तरुभ्यः) वृक्षों से (सरस+फल+भृतः) रसभरे फलों को धारण करनेवाली (च) और (वल्कलिन्यः) छाल या वल्कलवाली (शाखाः) शाखाएँ (प्रध्वस्ताः) ध्वस्त हो गईं ? हाँ, ऐसा ही प्रतीत होता है (यत्) क्योंकि (प्रसभम्) विवश होकर (उपगत+प्रश्रयाणाम्) विनयरहित (खलानाम्) उन दुष्टों के (मुखानि) मुखों की ओर (वीक्ष्यन्ते) कुछ पाने की आशा से ताकना पड़ता है जो (दुःख+आप्त+स्वल्प+वित्त+स्मय+पवन+वशात्) कठिनता से प्राप्त किये हुए थोड़े-से धन के गर्व की हवा के कारण सदा (नर्तितभ्रूलतानि) टेढ़ी भृकुटियाँ किये रहते हैं।

भावार्थ—क्या पर्वत की कन्दराओं के कन्दमूल समाप्त हो गये ? क्या वहाँ के झरने सूख गये ? क्या वृक्षों पर मधुर फल लगने बन्द हो गये ? क्या उनकी डालियों पर हरी-हरी छाल नहीं रही ? हाँ, कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है, क्योंकि कुछ पाने की आशा से उन दुष्ट जनों के मुख की ओर निहारना पड़ता है जिनकी भृकुटियाँ बड़ी कठिनाई से प्राप्त थोड़े-से धन की गर्वरूपी पवन से टेढ़ी हो रही हैं।

पुण्यैर्मूलफलैस्तथा प्रणयिनीं वृत्तिं कुरुष्वाधुना,
भूशय्यां नवपल्लवैरकृपणैरुत्तिष्ठ यावो वनम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षुद्राणामविवेकमूढमनसां यत्रेश्वराणां सदा,
वित्तव्याधिविकारविह्वलगिरां नामापि न श्रूयते ॥ 26 ॥

शब्दार्थ—हे मित्र (**उत्तिष्ठ**) उठो (**वनम्, यावः**) आओ, वन में चलें (**अधुना**) अब (**पुण्यैः, मूलफलैः**) पवित्र कन्दमूलों से (**प्रणयिनीम्**) अत्यन्त प्रेम करनेवाली (**वृत्तिम्**) आजीविका को (**कुरुष्व**) धारण करें, (**अकृपणैः**) उदार, भारी मात्रा में मिलनेवाले (**नव+पल्लवैः**) नवीन पत्तों द्वारा (**भू+शय्याम्**) भूमि को शय्या बना लें, इस प्रकार सदा वन में विश्राम करें (**यत्र**) जहाँ (**अविवेक+मूढ+मनसाम्**) अज्ञान के कारण कर्तव्यशून्य हृदयवाले (**सदा**) सदा (**वित्त+व्याधि+विकार+विह्वल+गिराम्**) धनरूपी रोग के विकार से विकल वचनोंवाले (**क्षुद्राणाम्**) ओछे (**ईश्वराणाम्**) स्वामियों का (**नाम+अपि**) नाम भी (**न, श्रूयते**) सुनाई नहीं पड़ता।

भावार्थ—दुष्ट स्वामी की सेवा से खिन्न कोई व्यक्ति अपने मित्र से कह रहा है—प्रिय मित्र! आओ, अब हम वनों में वास करें। वहीं कन्दमूल और फलों पर निर्वाह करें और पर्याप्त मात्रा में मिलनेवाली हरी-हरी पत्तियों की शय्या बनाकर भूमि पर शयन करें। वनों में ऐसे ओछे स्वामियों का नाम-निशान भी नहीं मिलेगा, धन के कारण जिनकी विचारशक्ति नष्ट हो गई है और जो सीधे मुँह किसी से बात भी नहीं करते।

फलं स्वेच्छालभ्यं प्रतिवनमखेदं क्षितिरुहां,
पयः स्थाने स्थाने शिशिरमधुरं पुण्यसरिताम्।
मृदुस्पर्शा शय्या सुललितलतापल्लवमयी,
सहन्ते सन्तापं तदपि धनिनां द्वारि कृपणाः ॥ 27 ॥

शब्दार्थ—(**प्रति+वनम्**) प्रत्येक वन में (**अखेदम्**) विना क्लेश के (**स्व+इच्छा+लभ्यम्**) अपनी इच्छानुसार प्राप्त होनेवाले (**क्षितिरुहाम्, फलम्**) वृक्षों के फल हैं, (**स्थाने-स्थाने**) स्थान-स्थान पर (**पुण्य+सरिताम्**) निर्मल एवं शुद्ध नदियों का (**शिशिर+मधुरम्**) ठण्डा और मीठा (**पयः**) जल है (**सुललिता+लता+पल्लव+मयी**) अत्यन्त सुन्दर लताओं और नई कोंपलों से रची (**मृदु+स्पर्शा**) छूने में अत्यन्त मुलायम (**शय्या**) सेज भी है (**तत्+अपि**) फिर भी (**कृपणाः**) धन पाने की इच्छा से दीन-हीन लोग (**धनिनाम्**) धनियों के (**द्वारि**) द्वार पर (**सन्तापम्**) कष्ट (**सहन्ते**) सहते हैं।

भावार्थ—प्रत्येक वन में वृक्षों पर फल लदे हुए हैं। स्थान-स्थान पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नदियों में शीतल और मधुर [ठण्डा और मीठा] जल भरा है। अत्यन्त सुन्दर और कोमल पत्तियों से रचित सेज भी है। इतना सब-कुछ होने पर भी धनलोभी मनुष्य धनियों के दरवाजे पर पड़े हुए कष्ट सहते व दुःख उठाते हैं।

ये वर्तन्ते धनपतिपुरः प्रार्थनादुःखभाजो,
ये चाल्पत्वं दधति विषयाक्षेपपर्याप्तबुद्धेः।
तेषामन्तःस्फुरितहसितं वासराणि स्मरेयं,
ध्यानच्छेदे शिखरिकुहरग्रावशय्यानिषण्णः॥ 28॥

शब्दार्थ—(**ध्यान+च्छेदे**) इष्टदेव के ध्यान की समाप्ति पर (**शिखरि+कुहर+ग्राव+शय्या+निषण्णः**) पर्वत की गुफा की पत्थर-रूप शय्या पर बैठा हुआ मैं (**अन्तः+स्फुरित+हसितम्**) मन के अन्दर उत्पन्न होनेवाली हँसी से (**तेषाम्**) उन लोगों के (**वासराणि**) दिनों को (**स्मरेयम्**) याद करता हूँ (**ये**) जो लोग कि (**धनपति+पुरः**) धनियों के समक्ष (**प्रार्थना+दुःखभाजः, वर्तन्ते**) असफल याचना के दुःखों को सहते हुए रहते हैं (**च**) और (**ये**) जो (**विषय+आक्षेप+पर्याप्त+बुद्धेः**) विषयवासना से आकृष्ट बुद्धि के कारण (**अल्पत्वम् दधति**) दीनता और हीनता को प्राप्त हो रहे हैं।

भावार्थ—ध्यान से निवृत्त होने के पश्चात् पर्वत-गुफा में एक चट्टान पर बैठे हुए मुझे उन दीन-हीन जनों की बात सोच-सोचकर हँसी आ रही है जो धनियों के आगे हाथ फैलाकर माँगते हुए उनके दरवाजों पर पड़े-पड़े सड़ रहे हैं और जिनकी बुद्धि विषयों में फँस जाने के कारण कुण्ठित होती जा रही है।

ये सन्तोषनिरन्तरप्रमुदितास्तेषां न भिन्ना मुदो,
ये त्वन्ये धनलुब्धसङ्कुलधियस्तेषां न तृष्णा हता।
इत्थं कस्य कृते कृतः स विधिना तादृक्पदं सम्पदां,
स्वात्मन्येव समाप्तहेममहिमा मेरुर्न मे रोचते॥ 29॥

शब्दार्थ—(**ये**) जो लोग (**सन्तोष+निरन्तर+प्रमुदिताः**) सन्तोष=पुरुषार्थ करके उससे जो प्राप्त हो, उससे तृप्त होकर सदा प्रसन्न रहते हैं (**तेषाम्**) उनके (**मुदः**) आनन्द (**न भिन्ना**) छिन्न-भिन्न नहीं होते हैं, कम नहीं होते, अपितु बढ़ते हैं। (**ये तु**) और जो (**अन्ये**) दूसरे लोग (**धन+लुब्ध+सङ्कुल+धियः**) धन के लोभ से जिनकी बुद्धि आकुल है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(तेषाम्) उनकी (तृष्णा) आशा, चाह (न हता) समाप्त नहीं होती, अपितु बढ़ती ही जाती है। (इत्थम्) ऐसी दशा में (विधिना) विधाता ने (तादृक्) अनिर्वचनीय (सम्पदाम्) सम्पत्ति का (पदम्) स्थान (सः) वह स्वर्णमय मेरु पर्वत (कस्य कृते) किसके लिए (कृतः) निर्मित किया है, क्योंकि (स्व+आत्मनि, एव समाप्त+हेम+महिमा) उसकी सुवर्ण-विषयक महिमा अपने में ही समाप्त हो जाती है अर्थात् इस अतुल धनराशि का वह केवल प्रदर्शन करता है, वह किसी के काम में नहीं आती (मेरुः मे न रोचते) ऐसा मेरु पर्वत मुझे तो अच्छा नहीं लगता।

भावार्थ—जो सन्तोषी हैं, वे सदा प्रसन्न रहते हैं, उनके आनन्द में कभी न्यूनता नहीं आती। जो लोभी हैं, उनकी आशा, इच्छा कभी पूरी ही नहीं होती, बढ़ती ही जाती है। सन्तोषी को कभी धन की इच्छा नहीं होती और लोभी को सोने के पर्वत पर जा बैठने पर भी लोभ बना ही रहता है, फिर समझ में नहीं आता कि ब्रह्मा ने सुवर्णमय मेरु पर्वत का निर्माण किसलिए किया है जो न सन्तोषी के काम की वस्तु है और न लोभी की ही इच्छापूर्ति करता है।

भिक्षाहारमदैन्यमप्रतिमुखं भीतिच्छिदं सर्वतो,
दुर्मात्सर्यमदाभिमानमथनं दुःखौघविध्वंसनम्।
सर्वत्रान्वहमप्रयत्नसुलभं साधुप्रियं पावनं,
शम्भोः सत्रमवार्यमक्षयनिधिं शंसन्ति योगीश्वराः ॥ 30 ॥

शब्दार्थ—(शम्भोः सत्रम्) महादेव जी के भिक्षा द्वारा प्राप्त अन्न की (योगीश्वराः) बड़े-बड़े योगी भी (शंसन्ति) प्रशंसा करते हैं, क्योंकि (भिक्षा+आहारम्, अदैन्यम्) भिक्षा के भोजन में दीनता नहीं दिखानी पड़ती (अप्रतिमुखम्) बेजोड़ है, इसकी बराबरी का सुख नहीं (सर्वतः भीति+च्छिदम्) सब प्रकार से भय को दूर करनेवाला है (दुःमात्सर्य+मद+अभिमान+मथनम्) दुष्ट ईर्ष्या, गर्व और अहंकार को कुचल देता है (दुःख+औघ+विध्वंसनम्) दुःखों के समूह को [सभी दुःखों को] नष्ट करनेवाला है (सर्वत्र) सभी स्थानों पर (अनु+अहम्) प्रतिदिन (अप्रयत्न+सुलभम्) विना प्रयत्न के, सरलता से प्राप्त हो जाता है (पावनम्) यह पवित्र है (साधु+प्रियम्) सन्तजनों को प्रिय है (अवार्यम्) गर्वहीन विनम्रता से याचित इस अन्न को प्राप्त होने से कोई रोक नहीं सकता। (अक्षय+निधिम्) और यह कभी समाप्त न होनेवाला कोष है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावार्थ—भिक्षा का भोजन अपमान से रहित है, यह अनुपम वृत्ति है। यह सभी प्रकार के भय को दूर करनेवाला है, साथ ही यह ईर्ष्या, गर्व और अहंकार को नष्ट करनेवाला है। विना किसी परिश्रम के और सदा प्राप्त होता है। यह पवित्र है, सन्तों को प्रिय है। इसका कोई निवारण नहीं कर सकता। यह कभी समाप्त न होनेवाला अक्षय कोष है—इसलिए योगी लोग इसकी बारम्बार प्रशंसा करते हैं।

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद् भयं,
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद् भयं,
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्॥ 31॥

शब्दार्थ—(**भोगे**) विषय-भोगों के भोगने में (**रोग+भयम्**) रोगों के होने का भय लगा रहता है (**कुले**) उच्च कुल में (**च्युति+भयम्**) आचार से गिरने या आचारभ्रष्ट होने का भय रहता है (**वित्ते**) धन की समृद्धि में (**नृपालाद्+भयम्**) राजा द्वारा छीने जाने का भय रहता है, (**मौने**) मौन रहने में (**दैन्य+भयम्**) दीनता-प्रदर्शन के प्रवाद का भय लगा होता है (**बले**) बल होने पर (**शत्रु+भयम्**) शत्रु से युद्ध होने का भय होता है (**रूपे**) रूप-सौन्दर्य में (**जरायाः भयम्**) वृद्धावस्था का भय होता है (**शास्त्रे**) शास्त्रों का अध्ययन करके विद्वान् बनने में (**वाद+भयम्**) शुष्क वाद-विवाद अथवा प्रतिवादी से पराजित होने का भय बना रहता है (**गुणे**) दान-दाक्षिण्य आदि सद्गुणों के होने पर (**खल+भयम्**) दुष्टों द्वारा व्यर्थ की निन्दा का भय रहता है (**काये**) शरीर में (**कृतान्ताद्+भयम्**) मृत्यु का भय रहता है। (**भुवि**) संसार में (**नृणाम्**) मनुष्यों के लिए (**सर्वं वस्तु**) सभी वस्तुएँ (**भय+अन्वितम्**) भय से युक्त हैं, (**वैराग्यम् एव**) वैराग्य ही (**अभयम्**) भय से रहित है, अर्थात् वैराग्य में कोई भय नहीं है।

भावार्थ—विषय-सुखों के भोगने में शरीर में रोग पैदा होने का भय लगा रहता है। कुल का अभिमान करने पर उस कुल में कलंक लगने, आचार भ्रष्ट होने का डर रहता है। धन की समृद्धि में राजा द्वारा छीने जाने का डर रहता है। मौन रहने पर दीनता का, बली होने पर शत्रुओं का, शरीर की सुन्दरता में बुढ़ापे का, शास्त्रों में पारंगत होने पर वाद-विवाद अथवा शास्त्रार्थ में पराजित हो जाने का, सद्गुणों के संग्रह में दुष्टों द्वारा व्यर्थ की निन्दा का और सशक्त शरीर में मृत्यु का भय लगा रहता है। सारांश यह है कि संसार में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सभी वस्तुएँ भय से युक्त हैं; केवल वैराग्य ही ऐसा गुण है जिसमें किसी प्रकार का कोई भय नहीं है।

आक्रान्तं मरणेन जन्म जरसा चात्युज्ज्वलं यौवनं,
सन्तोषो धनलिप्सया शमसुखं प्रौढाङ्गनाविभ्रमैः।
लोकैर्मत्सरिभिर्गुणा वनभुवो व्यालैर्नृपा दुर्जनै-
रस्थैर्येण विभूतयोऽप्युपहता ग्रस्तं न किं केन वा ॥ 32 ॥

शब्दार्थ—(**जन्म**) जन्म अथवा जीवन (**मरणेन**) मृत्यु से आक्रान्त है। (**अति+उज्ज्वलम्, यौवनम्**) अत्यन्त मनोहर यौवन (**जरसा**) वृद्धावस्था, बुढ़ापे से (**सन्तोषः**) सन्तोष (**धन+लिप्सया**) धन के लालच से (**शम+सुखम्**) इन्द्रिय-निग्रह से उत्पन्न होनेवाला सुख (**प्रौढ+अङ्गना, विभ्रमैः**) तरुणियों के हाव-भावों के जादू से (**आक्रान्तम्**) घिरा हुआ, जकड़ा हुआ है। (**गुणाः**) शील, सदाचारादि सद्गुण (**मत्सरिभिः, लोकैः**) डाह करनेवाले लोगों से (**वन+भुवः**) वन के भाग (**व्यालैः**) हिंसक पशुओं से आक्रान्त हैं। (**नृपाः**) राजा लोग (**दुर्जनैः**) दुष्टों से (**च**) और (**विभूतयः**) धन-दौलत (**अपि**) भी (**अस्थैर्येण**) चञ्चलता से (**उपहताः**) नष्ट हो जाती हैं। (**वा**) अथवा बताओ, (**किम्**) कौन-सी वस्तु है (**केन**) जो किसी के द्वारा (**न ग्रस्तम्**) जकड़ी हुई नहीं है अर्थात् सभी पदार्थ दूसरों के द्वारा आक्रान्त हैं, ग्रसित हैं, अतः स्थिर वैराग्य का ही आश्रय लेना चाहिए।

भावार्थ—जीवन को मृत्यु ने घेर रखा है, यौवन को बुढ़ापे ने, सन्तोष को लोभ ने, इन्द्रियों की शान्ति को युवतियों के हाव-भावों ने, सद्गुणों को ईर्ष्या ने, वनों को हिंसक पशुओं ने, राजाओं को दुष्टों ने और सम्पदाओं को अस्थिरता ने आक्रान्त किया हुआ है। इस प्रकार सभी वस्तुएँ और अवस्थाएँ किसी न किसी के द्वारा ग्रसित हैं। केवल वैराग्य ही निरापद है, अतः उसी का आश्रय लेना चाहिए।

आधिव्याधिशतैर्जनस्य विविधैरारोग्यमुन्मूल्यते,
लक्ष्मीर्यत्र पतन्ति तत्र विवृतद्वारा इव व्यापदः।
जातं जातमवश्यमाशु विवशं मृत्युः करोत्यात्मसात्,
तत्किं तेन निरङ्कुशेन विधिना यन्निर्मितं सुस्थिरम् ॥ 33 ॥

शब्दार्थ—(**विविधैः**) नाना प्रकार के (**आधि+व्याधि+शतैः**) मानसिक और शारीरिक सैकड़ों रोगों से (**जनस्य**) मनुष्य का (**आरोग्यम्**)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वास्थ्य (उन्मूल्यते) जड़ से उखाड़ दिया जाता है, (यत्र) जहाँ (लक्ष्मीः) धन-सम्पत्ति होती है (तत्र) वहाँ (व्यापदः) आपत्तियाँ (विवृत+द्वाराः, इव) खुले हुए द्वारों के समान, बेरोक-टोक (पतन्ति) टूट पड़ती हैं अर्थात् आपत्तियाँ धनी को घेरे रहती हैं, प्रारब्धवश (-जातम्, जातम्) पुनः-पुनः जन्म लेनेवाले (विवशम्) पराधीन जीव को (मृत्युः) मौत (अवश्यम्) निश्चय ही (आशु) शीघ्र (आत्मसात्, करोति) अपने अधीन कर लेती है, अर्थात् मार डालती है। तब संसार में (तत् किम् ?) वह कौन-सी वस्तु है (यत्) जिसे (तेन, निरङ्कुशेन+विधिना) उस निरंकुश=मनमानी करनेवाले विधाता ने (सुस्थिरम्, निर्मितम्) स्थायी बनाया है ? अर्थात् संसार में स्थिर कुछ भी नहीं है, अतः अस्थिर भोगादि की इच्छा नहीं करनी चाहिए।

भावार्थ—सैकड़ों रोगों और चिन्ताओं से मनुष्य का स्वास्थ्य जकड़ रहता है। धन-सम्पत्ति होने पर आपत्तियाँ मनुष्य को घेरे रहती हैं। जन्म लेते ही मृत्यु मनुष्य को अपने चंगुल में दबोच लेती है। फिर संसार में ऐसी कौन-सी वस्तु है जिसे ब्रह्मा ने स्थिर बनाया है, अर्थात् कुछ भी नहीं। सभी कुछ तो नश्वर है।

कृच्छ्रेणामेध्यमध्ये नियमिततनुभिः स्थीयते गर्भवासे,
कान्ताविश्लेषदुःखव्यतिकरविषमो यौवने चोपभोगः।
वामाक्षीणाम् अवज्ञाविहसितवसतिर्वृद्धभावोऽप्यसाधुः,
संसारे रे मनुष्या वदत यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किञ्चित्॥ 34॥

शब्दार्थ—प्रथम अवस्था में मनुष्य (गर्भवासे) माता के गर्भ में रहने के समय (अमेध्य+मध्ये) अपवित्र मल-मूत्र के बीच में (नियमित+तनुभिः) शरीर को सिकोड़े हुए, जकड़ा हुआ-सा (कृच्छ्रेण) अत्यन्त कष्ट के साथ (स्थीयते) रहता है। दूसरी (यौवने) यौवन अवस्था में (उपभोगः) सम्भोग-सुख में (च) भी (कान्ता+विश्लेष+दुःख+व्यतिकर+विषमः) कान्ता के वियोग का दुःख अधिक कष्टकारक होता है अर्थात् यौवन का भोग-विलास प्रिया के विरह के दुःख से दुस्सह हो जाता है। तीसरी अवस्था (वृद्ध+भावः, अपि) बुढ़ापा भी (वामाक्षीणाम्) सुन्दर नेत्रोंवाली युवतियों के (अवज्ञा+विहसित+वसतिः) निरादर करने के कारण हँसी का स्थान होने से (असाधुः) अच्छा नहीं है। (रे मनुष्याः) हे मनुष्यो! (संसारे) संसार में (यदि) यदि (किञ्चित् स्वल्पम्+सुखम्+अपि) कुछ थोड़ा-सा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुख भी (अस्ति) है तो (वदत) बताओ कहाँ हैं ?

भावार्थ—गर्भवास में माता के पेट में मल-मूत्र में सिकुड़े-सिमटे पड़े रहना पड़ता है। यौवन में प्रेयसी के वियोग का दुःख भोगना पड़ता है। तनिक बताओ तो सही जीवन में सुख है कहाँ ?

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती,
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम्।
आयुः परिस्त्रवति भिन्नघटादिवाम्भो,
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम्॥ 35॥

शब्दार्थ—(जरा) वृद्धावस्था (व्याघ्री इव) बाघिन के समान (परि+तर्जयन्ती) भयभीत करती हुई (तिष्ठति) सामने खड़ी है (च) और (रोगाः) नाना प्रकार के रोग (शत्रवः, इव) शत्रुओं के समान (देहम्) शरीर पर (प्रहरन्ति) आक्रमण कर रहे हैं (आयुः) आयु (भिन्न+घटात्+अम्भः+इव) फूटे हुए घड़े से पानी रिसने के समान (परिस्त्रवति) निरन्तर क्षीण होती जा रही है (तथा+अपि) इतना होने पर भी (लोकः) मनुष्य (अहितम्) अहितकर, प्रतिकूल, उलटा (आचरति) आचरण करता है (इति, चित्रम्) यह महान् आश्चर्य ही है।

भावार्थ—वृद्धावस्था बाघिन की भाँति खा जाने के लिए सामने खड़ी है। नाना प्रकार के रोग शरीर को पीड़ा पहुँचा रहे हैं। आयु ऐसे क्षीण हो रही है जैसे फूटे घड़े से पानी रिसता है। इतना सब-कुछ होने पर भी मनुष्य कुपथ को नहीं छोड़ता।

भोगास्तुङ्गतरङ्गभङ्गतरलाः प्राणाः क्षणध्वंसिनः,
स्तोकान्येव दिनानि यौवनसुखस्फूर्तिः प्रियासु स्थिता।
तत्संसारमसारमेव निखिलं बुद्ध्वा बुधा बोधका,
लोकानुग्रहपेशलेन मनसा यत्नः समाधीयताम्॥ 36॥

शब्दार्थ—(भोगाः) सांसारिक वस्तुओं के भोग से उत्पन्न सुख (तुङ्ग+तरङ्ग+भङ्ग+तरलाः) ऊँची उठनेवाली लहरों के टूटकर गिरने के समान चञ्चल हैं, (प्राणाः) प्राण भी (क्षण+ध्वंसिनः) क्षणभर में नष्ट होनेवाले हैं (प्रियासु) प्रेमिकाओं में (स्थिता) वर्तमान (यौवन+सुख+स्फूर्तिः) जवानी के आनन्द की चमक (स्तोकानि, दिनानि, एव) थोड़े दिनों की ही है। (तत्) इसलिए (बोधकाः बुधाः) दूसरों को बोध प्रदान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करनेवाले विद्वानो! (निखिलम्) सारे (संसारम्) संसार को (असारम्, एव) सारहीन ही (बुद्ध्वा) जानकर (लोक+अनुग्रह+पेशलेन, मनसा) लोगों पर दया करने में लीन मन से (यत्नः समाधीयताम्) सत्य तत्त्व, ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के उपदेश में यत्न कीजिए।

भावार्थ—सांसारिक सुख पानी की लहरों के समान थोड़ी देर में नष्ट होनेवाले हैं। जीवन क्षणभङ्गुर है। यौवन की रंगरेलियाँ भी चार दिन की चाँदनी मात्र हैं, अतः परोपदेश करनेवाले विद्वानों को चाहिए कि संसार को असार समझें और परोपकार के विचार से स्वयं ब्रह्मज्ञान प्राप्त करें और लोगों को भी इस पथ का पथिक बनाएँ

भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदामिनी चञ्चला,
आयुर्वायुविघट्टिताब्जपटलीलीनाम्बुवद् भङ्गुरम्।
लोला यौवनलालसास्तनुभृतामित्याकलय्य द्रुतं,
योगे धैर्यसमाधिसिद्धिसुलभे बुद्धिं विदध्वं बुधाः ॥ 37 ॥

शब्दार्थ—(बुधाः) हे बुद्धिमानो! (तनुभृताम्) शरीरधारी प्राणियों के (भोगाः) सुखभोग (मेघ+वितान+मध्य+विलसत्) मेघों के विस्तार के बीच चमकनेवाली (सौदामिनी+चञ्चला) विद्युत् के समान चञ्चल हैं, (आयुः) जीवन (वायु+विघट्टित+अब्ज+पटली+लीन+अम्बुवत्) हवा के झोंकों से कम्पित कमल के पत्ते पर पड़े हुए जलबिन्दु के समान हवा (भङ्गुरम्) नाशवान् है (यौवन+लालसाः) जवानी की उमगें और वासनाएँ भी (लोलाः) अत्यन्त अस्थिर हैं (इति, आकलय्य) ऐसा विचारकर (बुद्धिम्) बुद्धि को (द्रुतम्) शीघ्र (धैर्य+समाधि+सिद्धि+सुलभे) धैर्य और चित्त की स्थिरता की सिद्धि से सहज प्राप्त होनेवाले (योगे) योग=ब्रह्मचिन्तन में (विदध्वम्) लगाओ।

भावार्थ—संसार के सुख-भोग बादलों में कौंधनेवाली विद्युत् के समान अस्थिर हैं। जीवन हवा के झकोरों से लहलहाते कमल के पत्तों पर तैरनेवाली पानी की बूँद के समान क्षणभङ्गुर है। जीवन की उमंगें और वासनाएँ भी अस्थायी हैं। बुद्धिमान् को चाहिए कि इन सब बातों को समझकर अपने मन को स्थिरता और धैर्य के साथ योग-साधन, ब्रह्म-चिन्तन में लगाए।

भोगा भङ्गुरवृत्तयो बहुविधास्तैरेव चायं भव-
स्तत्कस्येह कृते परिभ्रमत रे लोकाः कृतं चेष्टितैः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आशा-पाशशतोपशान्तिविशदं चेतः समाधीयतां,
कामोत्पत्तिवशात् स्वधामनि यदि श्रद्धेयमस्मद्वचः ॥ 38 ॥

शब्दार्थ—(बहुविधाः) नाना प्रकार के **(भोगाः)** विषय-सुखभोग **(भङ्गुर+वृत्तयः)** नश्वर वृत्तियाँ लिये हुए हैं **(तैः, एव)** उन [भोगों] से ही **(अयम् भवः)** यह संसार है अर्थात् जन्म-मरण है। **(तत्)** इसलिए **(रे लोकाः)** अरे अज्ञानी लोगो! **(इह)** इस संसार में **(कस्य कृते)** किस भोग को पाने के लिए **(परि+भ्रमत)** चक्कर काटते फिरते हो **(कृतम्, चेष्टितैः)** भोग-संग्रह बन्द करो। **(यदि)** यदि **(अस्मत्)** हमारी **(वचः श्रद्धेयम्)** बात श्रद्धा से सुनो—तो **(आशा+पाश+शत+उपशान्ति+विशदम्)** आशारूपी सैकड़ों बन्धनों के त्याग करने से निर्मल बने हुए **(चेतः)** चित्त को **(काम-उत्पत्तिवशात्)** संकल्पमात्र से उत्पन्न होनेवाले प्रेम के साथ **(स्वधामनि)** अपने आत्मस्वरूप में, परब्रह्म में **(समाधीयताम्)** स्थिर करो।

भावार्थ—संसार के नाना प्रकार के सुखभोग क्षणभंगुर हैं और साथ ही संसार में आवागमन के कारण हैं। संसार का कोई भी सुख स्थिर नहीं है, अतः सुख के लिए मारे-मारे फिरना व्यर्थ है। भोग-संग्रह बन्द करो और अपने आशारूपी बन्धनों के त्याग से निर्मल हुए मन को आत्मसाक्षात्कार और परब्रह्म में स्थिर करो। भोगों की ओर से मन को हटाकर उसे परमात्मा में लगाना ही सर्वोत्तम कार्य है।

आयुः कल्लोललोलं कतिपयदिवसस्थायिनी यौवनश्री-
रर्थाः सङ्कल्पकल्पा घनसमयतडिद्विभ्रमा भोगपूगाः।
कण्ठाश्लेषोपगूढं तदपि च न चिरं यत्प्रियाभिः प्रणीतं,
ब्रह्मण्यासक्तचित्ता भवत भवभयाम्बोधिपारं तरीतुम् ॥ 39 ॥

शब्दार्थ—(आयुः) जीवन **(कल्लोल+लोलम्)** पानी की ऊँची तरङ्गों के समान ढलकर नष्ट होनेवाला है **(यौवन+श्रीः)** यौवन की सौन्दर्य-शोभा **(कतिपय+दिवस+स्थायिनी)** कुछ ही अर्थात् थोड़े ही दिन रहनेवाली है **(अर्थाः)** धन-सम्पत्ति **(सङ्कल्प+कल्पाः)** केवल मनोरथमात्र हैं, हवाई महल के समान अस्थिर हैं **(भोग+पूगाः)** भोग-समूह, सारे सुख-भोग **(घन+समय+तडित्+विभ्रमाः)** वर्षाकालिक बादलों में बिजली की चमक के समान भ्रमकारक हैं और **(यत्)** जो **(प्रियाभिः प्रणीतम्)** प्रियाओं द्वारा किया गया **(कण्ठ+आश्लेष+उपगूढम्)** प्रणय-भरा कण्ठालिङ्गन है **(तत्+अपि, न चिरम्)** वह भी स्थायी नहीं है, अतः **(भव+भय+**

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अम्बोधि+पारम्, तरीतुम्) संसार के भयरूपी सागर को पार उतरने के लिए (ब्रह्मणि) परब्रह्म में (आसक्त+चित्ताः) चित्त को लगाने वाले (भवत) बनो अर्थात् भगवद्भजन में मन लगाओ।

भावार्थ—जीवन जल की उत्तुङ्ग तरंगों के समान चञ्चल है। यौवन का सौन्दर्य भी कुछ ही दिनों का मेहमान है। धन-सम्पत्ति हवाई महल के समान हैं। सुखभोग वर्षाकालीन विद्युच्छटा के समान क्षणभर की झलकमात्र हैं। प्रेमिकाओं का आलिङ्गन भी स्थायी नहीं है, अतः संसार के भयरूपी सागर से पार होने के लिए परब्रह्म परमात्मा में ध्यान लगाओ।

ब्रह्मेन्द्रादिमरुद्गणांस्तृणकणान् यत्र स्थितो मन्यते,
यत्स्वादाद्विरसा भवन्ति विभवास्त्रैलोक्यराज्यादयः।
भोगः कोऽपि स एक एव परमो नित्योदितो जृम्भते,
भो साधो! क्षणभङ्गुरे तदितरे भोगे रतिं मा कृथाः॥ 40॥

शब्दार्थ—(यत्र) जिस परब्रह्म में (स्थितः) स्थित मनुष्य (ब्रह्मा+इन्द्र+आदि+मरुद्गणान्) चारों वेदों के ज्ञाता ब्रह्मा, स्वर्ग [त्रिविष्टप, तिब्बत] के अधिपति इन्द्र आदि देव-समूह को (तृणकणान्) तिनके के कण के समान निःसार (मन्यते) समझता है (यत् स्वादात्) जिस ब्रह्मानन्द को प्राप्त करने से (त्रैलोक्य+राज्य+आदयः) तीनों लोकों के राज्यादि (विभवाः) धन-सम्पत्तियाँ उसके लिए (विरसाः भवन्ति) नीरस हो जाती हैं (सः कः अपि भोगः) वह कोई विरला भोग (एव) ही (एकः परमः) अकेला ही सब से श्रेष्ठ है जो (नित्य+उदितः) उदित होकर, प्रकट होकर सदा (जृम्भते) बढ़ता ही जाता है। (भोः साधो) हे सज्जन! (तत्+इतरे) उसे छोड़कर दूसरे (क्षणभङ्गुरे, भोगे) क्षणभर में नष्ट होनेवाले विषयभोगों में (रतिम्) प्रीति (मा कृथाः) मत करो।

भावार्थ—ब्रह्मानन्द का अनुभव करनेवाला मनुष्य ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवगण को भी तिनके के समान तुच्छ समझता है। उस परमानन्द के समक्ष उसे तीनों लोकों का राज्य भी फीका प्रतीत होता है। वास्तविक और विशुद्धआनन्द तो उसी में है, वह आनन्द निरन्तर बढ़ता ही जाता है। उसको छोड़ और सब सुख तो क्षणिक हैं, अतः उसी ब्रह्म में मन लगाना चाहिए।

सा रम्या नगरी महान् स नृपतिः सामन्तचक्रं च तत्,
पार्श्वे तस्य च सा विदग्धपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उद्वृत्तः स च राजपुत्रनिवहस्ते वन्दिनस्ताः कथाः,
सर्वं यस्य वशादगात् स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः ॥ 41 ॥

शब्दार्थ—(**सा**) वह (**रम्या**) रमणीय (**नगरी**) नगरी (**सः**) वह (**महान्**) बड़ा, चक्रवर्ती (**सम्राट्**) राजा (**च**) और (**तत् सामन्त+चक्रम्**) उसके अधीनस्थ राजाओं का समूह [राजाओं का मण्डल] (**च**) तथा (**तस्य**) उसके (**पार्श्वे**) अगल-बगल (**सा**) वह (**विदग्ध+परिषत्**) प्रसिद्ध विद्वानों की सभा (**ताः**) वे (**चन्द्र+बिम्ब+आननाः**) चन्द्रमा की चन्द्रिका के समान सुमुखी सुन्दरियाँ (**च**) और (**सः**) वह (**उद्वृत्तः**) उद्दण्ड (**राज+पुत्र+निवहः**) राजकुमारों का समूह (**ते**) वे (**वन्दिनः**) स्तुति करनेवाले बन्दीगण (**ताः कथाः**) उन बन्दीगणों के द्वारा कथन की गई उत्तम-उत्तम प्रशस्तियाँ व स्तुतियाँ (**यस्य वशात्**) जिसकी अधीनता से (**सर्वम्**) ये सब बातें (**स्मृति+पथम्, अगात्**) स्मृतिमात्र रह गई हैं (**तस्मै, कालाय**) उस सब का संहार करनेवाले कालदेव को (**नमः**) नमस्कार है।

भावार्थ—एक समय था जब मेरी रमणीय नगरी थी, विशाल राज्य था, अनेक सामन्त [माण्डलिक] राजा थे, विद्वानों की सभा थी, सुन्दरी रानियाँ थीं, स्वच्छन्द राजकुमार थे, बन्दीगण थे और उनकी लुभावनी बातें थीं—यह सब-कुछ था, परन्तु दिनों का फेर देखिए कि आज उन सब की एक स्मृति ही शेष रह गई है। सब का संहार करनेवाले उस कालदेव को नमस्कार है।

यत्रानेकः क्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यथैको,
यत्राप्येकस्तदनु बहवस्तत्र नैकोऽपि चान्ते।
इत्थं चेमौ रजनिदिवसौ लोलयन् द्वाविवाक्षौ,
कालः कल्यो भुवनफलके क्रीडति प्राणिशारैः ॥ 42 ॥

शब्दार्थ—(**क्वचित्+अपि, गृहे**) किसी घर में (**यत्र**) जहाँ पहले (**अनेकः**) अनेक गोट अथवा प्राणी थे (**तत्र**) वहाँ (**अथ**) बाद में (**एकः**) कोई एक ही (**तिष्ठति**) रह जाता है और (**यत्र**) जहाँ, जिस घर में कभी (**एकः अपि**) एक ही था (**तत्+अनु**) पश्चात् (**तत्र**) वहाँ (**बहवः**) बहुत से हो जाते हैं (**च**) और (**अन्ते**) अन्त में (**एकः, अपि, न**) एक भी नहीं रह जाता (**इत्थम् च**) इस प्रकार (**कल्यः, कालः**) समर्थ कालपुरुष (**इमौ**) इन (**रजनि+दिवसौ**) रात-दिन को (**द्वौ, अक्षौ, इव**) चौपड़ के दो पासों के समान (**भुवन+फलके**) संसाररूपी चौपड़ पर (**लोलयन्**)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लुढ़का-लुढ़काकर (प्राणि+शारैः) प्राणिरूपी गोटियों से (क्रीडति) खेलता रहता है।

भावार्थ—चौपड़ के खेल में जिस घर में पहले बहुत सी गोटें होती हैं, वहाँ कभी एक ही गोट रह जाती है। इसी प्रकार जिस घर में एक गोट होती है, वहाँ कई इकट्ठी हो जाती हैं और अन्त में सब घर खाली हो जाते हैं और खेल समाप्त हो जाता है। इस संसार की लीला भी चौपड़ के समान है। जिस घर में पहले अनेक प्राणी थे वहाँ बाद में एक ही शेष रह जाता है। किसी घर में जहाँ पहले एक था वहाँ अनेक हुए और अन्त में एक भी नहीं रहा। कालरूपी जुआरी संसाररूपी चौपड़ पर प्राणियों को गोट बनाकर दिन-रातरूपी पासों से खेल रहा है, प्राणियों को अपनी इच्छानुसार नचा रहा है।

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं,
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालोऽपि न ज्ञायते।
दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते,
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्॥ 43॥

शब्दार्थ—(आदित्यस्य) सूर्य के (गत+आगतैः) अस्त और उदय के साथ (अहः, अहः) प्रतिदिन (जीवितम् संक्षीयते) आयु घटती जाती है, (व्यापारैः) जीवन-उपाय के उद्योगों से (बहु+कार्य+भार+गुरुभिः) बहुत-से देह-गेह-सम्बन्धी कार्यों के भार से, कार्यों में लिप्त रहने से (कालः, अपि न ज्ञायते) व्यतीत होनेवाले समय का भी पता नहीं चलता, (जन्म+जरा+विपत्ति+मरणम्) जन्म, वृद्धावस्था, आपत्तियाँ और मृत्यु (दृष्ट्वा) देखकर (च) भी (त्रासः) सारा जगत्, सभी प्राणी (मोहमयीम्) मोहरूपी (प्रमाद+मदिराम्) प्रमाद-मदिरा को (पीत्वा) पीकर (उन्मत्तभूतम्) मतवाले से [बदहवास] हो रहे हैं।

भावार्थ—सूर्योदय और अस्त के साथ आयु घटती जा रही है। सांसारिक धन्धों में फँसे रहने के कारण यह भी पता नहीं रहता कि कितनी आयु बीत गई। जन्म, वृद्धावस्था, आपत्तियों (आधि-व्याधियों) और मृत्यु को अपनी आँखों से देखते हुए भी मनुष्य को भय नहीं होता कि हमारी भी यही गति होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि सारा संसार मोह और प्रमादरूपी मदिरा का पान करके मतवाला हो रहा है। सब-कुछ देख-सुनकर भी मनुष्य सावधान और सजग नहीं होता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रात्रिः सैव पुनः स एव दिवसो मत्वा मुधा जन्तवो,
धावन्त्युद्यमिनस्तथैव निभृतप्रारब्धतत्तत्क्रियाः।
व्यापारैः पुनरुक्तभुक्तविषयैरित्थं विधेनामुना,
संसारेण कदर्थिता वयमहो मोहान्न लज्जामहे॥ 44॥

शब्दार्थ—(सा, एव, रात्रिः) वही [बीती हुई रात्रि के समान] रात्रि है (पुनः) फिर (सः, एव दिवसः) वही [बीते हुए दिन के समान] दिन है (मत्वा) ऐसा जानकर भी (उद्यमिनः) उद्यमशील (जन्तवः) प्राणी (तथा एव) उसी प्रकार (निभृत+प्रारब्ध+तत्+तत्+क्रियाः) चुपचाप उन-उन काम-धन्धों का आरम्भ करते हुए (मुधा) व्यर्थ ही उनके पीछे (धावन्ति) दौड़ते हैं [जिनके पीछे वे पहले दौड़ते थे] (पुनः+उक्त+ भुक्त+विषयैः) बार-बार कहे हुए और भोगे गये उन्हीं विषयों और (व्यापारैः) व्यापारों, कार्यों में जुटे रहते हैं। (इत्थम् विधेन) इस प्रकार (अमुना संसारेण) इस संसार [के लोगों] द्वारा (कदर्थिताः) निन्दित भोगों को भोगते हुए (अहो) आश्चर्य है (वयम्) हम लोग (मोहात्) मोह अथवा अज्ञान के कारण (न लज्जामहे) लज्जित नहीं होते।

भावार्थ—वे ही रातें और वे दिन बार-बार आते और जाते हैं, इस बात को भली-भाँति जानते हुए भी हम लोग पुरुषार्थी बनकर उन-उन काम-धन्धों के पीछे दौड़ते हैं जिनके पीछे पहले भी दौड़ते थे। बार-बार कहे और भोगे हुए उन्हीं विषयों और कार्यों में जुटे रहते हैं। इस प्रकार संसार के निन्दित भोगों को भोगते हुए भी दुःख है कि हम लोग अपनी मूर्खता पर लज्जित नहीं होते।

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये,
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः।
नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि नालिङ्गितं,
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम्॥ 45॥

शब्दार्थ—(संसार+विच्छित्तये) सांसारिक आवागमन [जन्म-मरण] के चक्र से छुटकारा पाने [मोक्ष-प्राप्ति] के लिए (विधिवत्) शास्त्रविधि के अनुसार (ईश्वरस्य पदम्) ईश्वर के स्वरूप का (न ध्यातम्) ध्यान नहीं किया (स्वर्ग+द्वार+कपाट+पाटन+पटुः) स्वर्ग के द्वार के कपाटों को खोलने में समर्थ (धर्मः, अपि) धर्म भी (न उपार्जितः) नहीं अर्जित किया गया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[पुण्य भी नहीं कमाया] और (**स्वप्ने, अपि**) स्वप्न में भी (**नारी+पीन+पयोधर+उरु+युगलम्**) रमणी के पुष्ट स्तनों और दोनों जंघाओं का (**न, आलिङ्गितम्**) आलिङ्गन नहीं किया अर्थात् चार पुरुषार्थों में से धर्म, काम और मोक्ष—तीनों का साधन नहीं किया, बस केवल अर्थ=धन कमाने में ही लगे रहे, ऐसे (**वयम्**) हम लोग (**केवलम्**) केवल (**मातुः**) माता के (**यौवन+वन+छेदे**) यौवनरूपी वन को काट डालने में (**कुठाराः, एव**) कुल्हाड़ी के रूप में ही उत्पन्न हुए। [तात्पर्य यह है कि जो जीवनपर्यन्त अर्थ में ही आसक्त रहा उसने उत्पन्न होकर केवल माता का यौवन ही नष्ट किया]।

भावार्थ—शास्त्रविधि के अनुसार प्रभु-उपासना नहीं की जिससे संसार से छुटकारा मिल जाता। धर्माचरण भी नहीं किया कि स्वर्ग की प्राप्ति ही हो जाती। स्त्री को आलिङ्गन करने का सुख भी अनुभव नहीं किया। संसार में जन्म क्या लिया, बस माता के स्वास्थ्य और यौवन को बर्बाद किया।

नाभ्यस्ता प्रतिवादिवृन्ददमनी विद्या विनीतोचिता,
खड्गाग्रैः करिकुम्भपीठदलनैर्नाकं न नीतं यशः।
कान्ताकोमलपल्लवाधररसः पीतो न चन्द्रोदये,
तारुण्यं गतमेव निष्फलमहो शून्यालये दीपवत्॥ 46॥

शब्दार्थ—इस संसार में आकर यदि (**प्रतिवादि+वृन्द+दमनी**) प्रतिवादियों के अभिमान को चूर करनेवाली और (**विनीत+उचिता**) शिष्टजनोचित वेदशास्त्रादि रूप (**विद्या**) विद्या का (**न अभ्यस्ता**) अभ्यास अर्थात् समुचित रूप से बार-बार अध्ययन, चिन्तन और मनन नहीं किया, युद्ध में (**करि+कुम्भ+पीठ+दलनैः**) हाथियों के मस्तकों को काटनेवाली (**खड्ग+अग्रैः**) तलवार की तीक्ष्ण धारों से [शत्रु को मारकर] (**नाकम्, न नीतम् यशः**) अपने यश को स्वर्ग तक नहीं पहुँचाया, (**चन्द्रोदये**) चाँदनी रात में (**कान्ता+कोमल+पल्लव+अधर+रसः**) कोमल पल्लवों के समान अपनी प्रियतमा के अधर के रस को (**न पीतम्**) नहीं पिया तो (**अहो**) खेद के साथ यही कहना पड़ेगा कि (**शून्य+आलये**) सूने घर में (**दीपवत्**) दीपक के समान (**तारुण्यम्**) जवानी (**निष्फलम्**) व्यर्थ (**एव**) ही (**गतम्**) चली गई।

भावार्थ—शिष्टजनोचित, सुहृदयों को आह्लादित करनेवाली और प्रतिवादियों के अभिमान को चूर करनेवाली वेदशास्त्ररूपी विद्या का अभ्यास नहीं किया, युद्ध में तलवार की तीक्ष्ण धार से शत्रुओं को मार-कर यश भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्त नहीं किया, चाँदनी रात में प्रिया के कोमल अधरों के रस का पान भी नहीं किया तो अफसोस, यौवन वैसे ही व्यर्थ बीत गया जैसे सूने घर में दीपक का प्रकाश।

विद्या नाधिगता कलङ्करहिता वित्तञ्च नोपार्जितं,
शुश्रूषाऽपि समाहितेन मनसा पित्रोर्न सम्पादिता।
आलोलायतलोचनाः प्रियतमाः स्वप्नेऽपि नालिङ्गिताः,
कालोऽयं परपिण्डलोलुपतया काकैरिव प्रेर्यते॥ 47॥

शब्दार्थ—(कलङ्क+रहिता) दोषहीन, सप्रमाण **(विद्या)** विद्या **(न+ अधिगता)** प्राप्त नहीं की, **(वित्तम्, च)** धन भी **(न, उपार्जितम्)** नहीं कमाया, **(समाहितेन)** एकाग्र और प्रसन्न **(मनसा)** मन से **(पित्रोः)** माता-पिता की **(शुश्रूषा+अपि)** सेवा भी **(न सम्पादिता)** ठीक रूप से नहीं की **(आलोल+आयत+लोचनाः)** चञ्चल एवं विशाल नेत्रोंवाली **(प्रियतमाः)** प्रियतमाओं का **(स्वप्नेऽपि)** स्वप्न में भी **(न, आलिङ्गिताः)** आलिङ्गन नहीं किया। अहो! हमने तो **(अयम्, कालः)** यह सारा जीवन **(काकैः इव)** कौओं के समान **(पर+पिण्ड+लोलुपतया)** दूसरों का अन्न खाने को ललचाते हुए ही **(प्रेर्यते)** बिता दिया। [भाव यह है कि माता-पिता की सेवा द्वारा धर्म, धनोपार्जन द्वारा अर्थ, प्रियतमा-आलिङ्गन द्वारा काम और मोक्ष-प्रापक विद्या प्राप्त न करके केवल पेट भरने की ओर ही ध्यान दिया।]

भावार्थ—न तो मोक्षदायक निष्कलंक विद्या का उपार्जन किया, न धन कमाया, न माता-पिता एवं गुरुजनों की सेवा करके धर्म कमाया, न सुन्दरी रमणियों के साथ रमण करके काम का आनन्दोपभोग किया। हमने दूसरे के अन्न पर आशा लगाए हुए तुच्छ सा जीवन व्यतीत किया।

वयं येभ्यो जाताश्चिरपरिगता एव खलु ते,
समं यैः संवृद्धाः स्मृतिविषयतां तेऽपि गमिताः।
इदानीमेते स्मः प्रतिदिवसमासन्नपतना,
गतास्तुल्यावस्थां सिकतिलनदीतीरतरुभिः॥ 48॥

शब्दार्थ—(वयम्) हम **(येभ्यः)** जिन [माता-पिता] से **(जाताः)** उत्पन्न हुए **(ते)** वे **(खलु)** सचमुच **(चिरपरिगताः एव)** बहुत पहले ही चले गये **(यैः)** नि [मित्रों] के **(समम्)** साथ **(संवृद्धा)** हम बड़े हुए थे **(ते, अपि)** वे भी **(स्मृति+विषयताम्, गमिताः)** स्मरण करने की वस्तुमात्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो गये अर्थात् वे भी नहीं रहे (इदानीम्) इस समय (वयम्) हम भी (सिकतिल+नदी+तीर+तरुभिः) रेतीली नदी के तट पर खड़े हुए वृक्षों के (तुल्य+अवस्थाम्) समान अवस्था को (गताः) प्राप्त होकर (प्रतिदिवसम्) प्रतिदिन (आसन्न+पतनाः) पतोन्मुख [मरने] के लिए तैयार (एते स्मः) बैठे हैं, हमारी दशा 'अब गिरे, तब गिरे' की कहावत को चरितार्थ करती है।

भावार्थ—बहुत समय हुआ माता-पिता नहीं रहे। जिनके साथ खेल-कूदकर बड़े हुए थे, वे संगी-साथी भी नहीं रहे। हम भी बूढ़े हो चले। हमारी दशा उन वृक्षों की भाँति है जो नदी के रेतीले तट पर खड़े हों और किसी भी समय नदी में बह जानेवाले हों।

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं,
तस्यार्धस्य परस्य चार्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः।
शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते,
जीवे वारितरङ्गचञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम्॥ 49॥

शब्दार्थ—(नृणाम्) मनुष्यों की (आयुः) आयु (वर्षशतम्) सौ वर्ष (परिमितम्) सीमित-सी है (तत्+अर्धम्) उसका आधा भाग अर्थात् पचास वर्ष (रात्रौ गतम्) रात्रि में [सोने में] व्यतीत हो जाता है (तस्य) उसके (परस्य) शेष के (अर्धस्य) आधे का (अपरम्, अर्धम्) और आधा अर्थात् पच्चीस वर्ष (बालत्व+वृद्धत्वयोः) बचपन और बुढ़ापे में बीत जाता है (शेषम्) शेष पच्चीस वर्ष का समय (व्याधि+वियोग+दुःख+सहितम्) रोग, वियोग=आत्मीयजन एवं धन के बिछोह से होनेवाले दुःख के साथ (सेवा+आदिभिः) अपनी आजीविका के लिए श्रीमानों की सेवा में (नीयते) व्यतीत होता है, इस प्रकार (वारि+तरङ्ग+चञ्चलतरे, जीवे) पानी की लहरों के समान अत्यल्प चञ्चल जीवन में (प्राणिनाम्) मनुष्यों को (सौख्यम्) सुख (कुतः) कहाँ है?

भावार्थ—'शतायुर्वै पुरुषः' के अनुसार मनुष्य की आयु केवल सौ वर्ष है। उसमें से आधी रात्रि में सोने में चली जाती है। पच्चीस वर्ष बचपन और बुढ़ापे में चले जाते हैं। शेष पच्चीस वर्ष रोग, वियोग, नौकरी आदि में व्यतीत हो जाते हैं। इस प्रकार इस क्षणभङ्गुर जीवन में प्राणियों को सुख कैसे मिल सकता है, क्योंकि सभी दुःखमय हैं, अतः सुख असम्भव सा ही है।

क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामरसिकः,
क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च सम्पूर्णविभवः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जराजीर्णैरङ्गैर्नट इव वलीमण्डिततनु-
र्नरः संसारान्ते विशति यमधानीयवनिकाम्॥ 50॥

शब्दार्थ—इस संसार में (**नरः**) मनुष्य (**नटः, इव**) नाटक के पात्र नट के समान है जो (**क्षणम्, बालः भूत्वा**) थोड़ी देर बालक बनकर (**क्षणम् अपि**) थोड़ी ही देर (**युवा कामरसिकः**) काम-वासनाओं का रसिक तरुण बन जाता है (**क्षणम् वित्तैः हीनः**) कुछ समय के लिए धनहीन कङ्गाल बन जाता है (**क्षणम्, अपि सम्पूर्ण+विभवः**) और थोड़े समय के लिए धन-धान्य से समृद्ध बन जाता है तथा (**संसार+अन्ते**) जीवन के अन्त में (**जरा+जीर्णैः+अङ्गैः**) बुढ़ापे के कारण जीर्ण-शीर्ण अङ्गों से (**वली+मण्डित+तनुः**) झुर्रियों से भरे शरीर के साथ (**यमधानी+यवनिकाम्**) यमराज की राजधानीरूप यवनिका [परदे] में (**विशति**) प्रवेश कर जाता है।

भावार्थ—संसार एक रङ्गमञ्च है और मनुष्य उस पर एक पात्र है जो कभी बालरूप में अपनी लीलाएँ दिखाता है तो कभी युवक बनकर रंगरलियाँ करता है। कभी दरिद्र बनकर भीख माँगता है तो कभी धनी बनकर मौज उड़ाता है। फिर बूढ़ा बन जाता है। चेहरा झुर्रियों से भर जाता है, शरीर जीर्ण-शीर्ण हो जाता है और अन्त में अपना अभिनय समाप्त कर मृत्यु के मुख में चला जाता है।

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानोन्नताः,
ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति नः।
इत्थं मानधनातिदूरम् उभयोरप्यावयोरन्तरं,
यद्यस्मासु पराङ्मुखोऽसि वयमप्येकान्ततो निःस्पृहाः॥ 51॥

शब्दार्थ— कोई संन्यासी किसी राजा से प्रसङ्गविशेष में कह रहा है—हे राजन्! यदि (**त्वम्, राजा**) तुम राजा हो—प्रजा को प्रसन्न करनेवाले होने के कारण श्रेष्ठ=उन्नत हो तो (**वयम्, अपि**) हम भी (**उपासित+गुरु+प्रज्ञा+अभिमान+उन्नताः**) गुरुचरण की सेवा द्वारा प्राप्त विलक्षण ज्ञान=श्रेष्ठ बुद्धि के स्वाभिमान से समुन्नत हैं [गुरु-सेवा द्वारा प्राप्त विलक्षण ज्ञान के कारण हमारा भी गौरव है।] (**त्वम्, विभवैः ख्यातः**) तुम धन-सम्पत्ति के कारण चहुँ ओर प्रसिद्ध हो तो (**कवयः**) कविगण (**नः यशांसि**) हमारी भी कीर्ति और यश को (**दिक्षु**) दिशाओं में (**प्रतन्वन्ति**) फैला रहे हैं। (**इत्थम्**) इस प्रकार (**आवयोः, उभयोः**) हम दोनों में (**मान+धन+**

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतिदूरम्) मान और धन का अत्यधिक (**अन्तरम्**) भेद है [तुम धनवान् हो और हम प्रज्ञा=बुद्धिरूपी धनवाले हैं], (**यदि**) यदि तुम (**अस्मासु**) हमारी ओर से (**पराङ्मुखः, असि**) मुँह फेरे हुए हो तो (**वयम्, अपि**) हम भी (**एकान्ततः**) एकदम (**निः स्पृहाः**) उदासीन हैं, तुम से कुछ नहीं चाहते।

भावार्थ—कोई संन्यासी किसी राजा से कह रहा है—तुम राजा हो तो हम ज्ञानी हैं। तुम्हारे पास धन है तो हमारे पास विद्या है। तुम्हारा राज्य-भर में मान और सम्मान है तो कविगण हमारा भी सर्वत्र यशोगान करते हैं। हम में और तुम में धन और मान का भारी अन्तर है। यदि तुम हमारी ओर ध्यान नहीं देते, हमारे प्रति तुम्हारी श्रद्धा नहीं है तो हमें भी तुम्हारी परवाह नहीं है।

अर्थानामीशिषे त्वं वयमपि च गिरामीश्महे यावर्थं,
शूरस्त्वं वादिदर्पव्युपशमनविधावक्षयं पाटवं नः।
सेवन्ते त्वां धनाढ्या मतिमलहतये मामपि श्रोतुकामा,
मय्यप्यास्था न ते चेत्त्वयि मम नितरामेष राजन् गतोऽस्मि॥ 52॥

शब्दार्थ—(**राजन्**) हे राजन्! (**त्वम्**) तुम (**अर्थानाम्, ईशिषे**) अर्थों=धन-सम्पत्ति के स्वामी हो (**च**) तो (**वयम्, अपि**) हम भी (**गिराम्, यावत् अर्थम्**) वेदशास्त्रों के समस्त अर्थों के (**ईश्महे**) अधिकारी विद्वान् हैं, विद्याधन के धनी हैं, (**त्वम्, शूरः**) तुम शूरवीर हो, शत्रुओं का दमन कर सकते हो तो (**नः**) हमें भी (**वादि+दर्प+व्युपशमन+विधौ+अक्षयम्, पाटवम्**) शास्त्रार्थ में प्रतिवादियों के गर्व को शान्त करने की विधि में अत्यधिक पटुता प्राप्त है, यदि (**धनाढ्याः**) धनाढ्य (**त्वाम्**) तुम्हारी (**सेवन्ते**) सेवा करते हैं तो (**मति+मल+हतये**) बुद्धि की जड़ता को नष्ट करने के लिए (**श्रोतुकामाः**) शास्त्रीय सिद्धान्तों को सुनने के इच्छुक शिष्यगण (**माम्, अपि सेवन्ते**) मेरी भी सेवा करते हैं (**चेत्**) यदि (**ते**) तुझे (**मयि**) मुझ में (**आस्था, न**) श्रद्धा नहीं है तो (**मम**) मेरा भी (**त्वयि**) तुझ में (**नितराम्, एव, न**) तनिक भी विश्वास नहीं है। (**एषः**) यह लो, (**गतः अस्मि**) मैं चला।

भावार्थ—कोई त्यागी-तपस्वी संन्यासी किसी राजा से कह रहा है—तुम एक छोटे-से राज्य की धन-सम्पत्ति के स्वामी हो तो मैं समस्त शास्त्रों का अधिकारी विद्वान् हूँ। तुम शास्त्र-सञ्चालन में शूर-वीर हो तो मैं शास्त्रार्थ में प्रतिवादियों के छक्के छुड़ाने में प्रवीण हूँ। धनलोलुप तुम्हें घेरे रहते हैं तो बुद्धि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की जड़ता को नष्ट करने के लिए शिष्यगण मुझे भी घेरे रहते हैं। इस प्रकार हम दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं है, अतः यदि तुम्हें मेरे प्रति श्रद्धा नहीं है तो मुझे भी तुम से कुछ लेना-देना नहीं। लो, मैं तो यह चला।

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं दुकूलैः,
सम इव परितोषो निर्विशेषे विशेषः।
स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला,
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ॥ 53 ॥

शब्दार्थ—हे राजन्! (**इह**) यहाँ, इस संसार में (**वयम्**) हम (**वल्कलैः**) पेड़ों की छाल से बने वल्कल वस्त्रों से (**परितुष्टाः**) सन्तुष्ट हैं और (**त्वम्**) तुम (**दुकूलैः**) रेशमी, बहुमूल्य वस्त्रों को धारण करके प्रसन्न हो, इस प्रकार हम दोनों का (**परितोषः**) सन्तोष तो (**समः, इव**) समान ही है (**विशेषः, निर्विशेषः**) भेद कोई नहीं है। (**यस्य**) जिसकी (**तृष्णा**) चाह, इच्छा (**विशाला**) बहुत हो (**सः, तु**) वह तो भले ही (**दरिद्रः, भवतु**) दरिद्र हो (**च**) सचमुच (**मनसि परितुष्टे**) मन से सन्तुष्ट होने पर (**कः, अथर्वान्**) कौन धनी है और (**कः, दरिद्रः**) कौन निर्धन है?

भावार्थ—हे राजन्! तुम बहुमूल्य रेशमी वस्त्र धारण करके जितने प्रसन्न हो, वल्कल धारण करके हम भी उतने ही सुखी हैं। जहाँ तक सन्तोष का सम्बन्ध है दोनों में कोई भावनात्मक अन्तर नहीं है। सच्ची बात तो यह है कि जिसकी तृष्णा=चाह विशाल है, वही दरिद्र है। मन से सन्तुष्ट होने पर न कोई धनी है और न कोई दरिद्र।

विशेष—डेनियल महोदय ने मानो इसी पद्य के उत्तरार्द्ध का अनुवाद करते हुए कहा है—

He is not poor that has little, but he that desires much.

वह निर्धन नहीं है जिसके पास थोड़ा है, वरन् दरिद्र वह है जिसकी अभिलाषाएँ बढ़ी हुई हैं।

फलमलमशनाय स्वादु पानाय तोयं,
क्षितिरपि शयनार्थे वाससे वल्कलं च।
नवधन-मधुपानभ्रान्तसर्वेन्द्रियाणा-
मविनयमनुमन्तुं नोत्सहे दुर्जनानाम् ॥ 54 ॥

शब्दार्थ—(**अशनाय**) खाने के लिए (**फलम्**) वृक्षों के फल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(अलम्) पर्याप्त हैं **(पानाय)** पीने के लिए **(स्वादु तोयम्)** झरनों का स्वादिष्ठ जल भी भरपूर है **(शयनार्थे)** सोने के लिए **(क्षितिः, अपि)** भूमि भी है ही **(च)** और **(वाससे)** पहनने-ओढ़ने के लिए **(वल्कलम्)** वल्कल वस्त्र हैं। ऐसी स्थिति में **(नव+धन+मधु+पान+भ्रान्त+सर्व+इन्द्रियाणाम्)** अभी-अभी प्राप्त [तुरन्त मिले] धनरूपी मदिरा के पान से जिनकी सारी इन्द्रियाँ भ्रान्त और कुमार्गगामी हो रही हैं, ऐसे **(दुर्जनानाम्)** दुष्टों की **(अविनयम्)** धृष्टता और अनादरपूर्ण बातों को **(अनुमन्तुम्)** स्वीकार करने या सुनने की **(न, उत्सहे)** मुझे तनिक भी इच्छा नहीं है।

भावार्थ—जब खाने के लिए वृक्षों के फल हैं, पीने के लिए झरनों का मधुर एवं शीतल जल है, सोने के लिए भूमि है और पहनने-ओढ़ने के लिए वल्कल वस्त्र हैं, फिर हम उन दुष्टों की अनादरपूर्ण बातें क्यों सुनें जो थोड़ा-सा धन पाकर उसके नशे में चूर हो रहे हैं?

अश्नीमहि वयं भिक्षामाशावासो वसीमहि।
शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः ॥ 55 ॥

शब्दार्थ—**(वयम्)** हम **(भिक्षाम्)** भिक्षा में प्राप्त अन्न को **(अश्नीमहि)** खाएँगे **(आशा+वासः)** दिशारूपी वस्त्र **(वसीमहि)** पहनेंगे अर्थात् दिगम्बर रहेंगे **(महीपृष्ठे)** पृथिवी पर **(शयीमहि)** सोएँगे, फिर हम **(ईश्वरैः)** धनियों अथवा राजाओं से मिलकर **(किम्)** क्या **(कुर्वीमहि)** करेंगे?

भावार्थ—हम भीख माँगकर खा लेंगे, नंग-धड़ंग घूमेंगे और भूतल पर सो जाएँगे, फिर हमें राजाओं से क्या पड़ी है, अर्थात् कुछ नहीं।

न नटा न विटा न गायका न च सभ्येतरवादचञ्चवः।
नृपमीक्षितुमत्र के वयं स्तनभारानमिता न योषितः ॥ 56 ॥

शब्दार्थ—हम **(न नटाः)** न तो नट हैं [जो विभिन्न प्रकार के वेष धारण कर विचित्र ढंग से नृत्य करते हैं], **(न विटाः)** न विट हैं [जो परस्त्रियों को अभिसार कराने को लम्पट होते हैं], **(न गायकाः)** न गायक [अर्थात् संगीत में निपुण गवैये] हैं **(न च)** और न ही **(सभ्य+इतर+वाद+चञ्चवः)** सभ्यता से दूर लबार हैं [असभ्यों की अश्लीलतापूर्ण बातचीत करने में भी प्रसिद्ध नहीं हैं], **(न)** न **(अत्र)** यहाँ **(स्तन+भार+आनमिताः)** स्तनों के भार से आगे की ओर झुकी हुई **(योषितः)** वाराङ्गनाएँ हैं, फिर **(नृपम्)** राजाओं को **(ईक्षितुम्)** देखने के लिए [मिलनेवाले] **(वयम्**

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के) हम कौन हैं ? कोई भी नहीं ? [राजदरबार में तो उपर्युक्त पाँच प्रकार के लोगों की ही पूछ होती है, और हम उनमें से कोई भी नहीं।]

भावार्थ—हम न तो नट हैं, न विट हैं, न गायक हैं, न लबार हैं और न वेश्या हैं, फिर राजाओं के दरबार में हमारा प्रवेश कैसे हो सकता है ?

विपुलहृदयैरीशैरेतज् जगज् जनितं पुरा,
विधृतमपरैर्दत्तं चान्यैर्विजित्य तृणं यथा।
इह हि भुवनान्यन्ये धीराश्चतुर्दश भुञ्जते,
कतिपयपुरस्वाम्ये पुंसां क एष मदज्वरः ॥ 57 ॥

शब्दार्थ—(**पुरा**) प्राचीनकाल में (**विपुल+हृदयैः**) महान् और उदार हृदयवाले [महाराज मनु आदि चक्रवर्ती] (**ईशैः**) सम्राटों ने (**एतत्**) इस (**जगत्**) संसार को (**जनितम्**) संस्थापित किया, बसाया। (**अन्यैः**) अन्य [श्रीराम, युधिष्ठिर प्रभृति] नरेन्द्रों ने (**विधृतम्**) इसका उत्तम प्रकार से पालन-पोषण किया (**च**) और (**अन्यैः**) [बलि आदि] अन्य राजाओं ने (**विजित्य**) इस सम्पूर्ण पृथिवी को जीतकर और (**तृणम् यथा**) इसे तिनके के समान तुच्छ समझकर (**अपरैः, दत्तम्**) अन्यों ने औरों को दान में दे दिया। (**इह हि**) अब भी (**अन्ये धीराः**) अनेक धीर राजाधिराज (**चतुर्दश**) चौदह (**भुवनानि**) भुवनों को (**भुञ्जते**) निरभिमान होकर भोग रहे हैं। यह सब-कुछ जान और देखकर भी (**कतिपय+पुर+स्वाम्ये**) कुछ नगरों का स्वामित्व पाकर (**पुंसाम्**) मनुष्यों को (**एषः**) यह (**मद+ज्वरः**) गर्वरूपी ज्वर (**कः**) किसलिए है ?

भावार्थ—प्राचीनकाल में उदारहृदय और बुद्धिमान् राजाओं ने इस पृथिवी को बसाया और सजाया। उसके बाद धर्मपरायण राजाओं ने इस पर राज्य किया। अनेक वीरपुङ्गवों ने इस सम्पूर्ण पृथिवी को जीता और फिर तृण के समान तुच्छ समझकर इसका दान कर दिया। आज भी अनेक राजाधिराज हैं, जो चौदह लोकों, बड़े-बड़े साम्राज्यों का उपभोग कर रहे हैं। यह सब-कुछ देख और जानकर भी कुछ लोग चार-छह ग्रामों की चौधराहट पाकर गर्व में चूर रहते हैं, यह महान् आश्चर्य है !

अभुक्तायां यस्यां क्षणमपि न यातं नृपशतैर्-
भुवस्तस्या लाभे न इव बहुमानः क्षितिभुजाम्।
तदंशस्याप्यंशे तदवयवलेशेऽपि पतयो,
विषादे कर्तव्ये विदधति जडाः प्रत्युत मुदम् ॥ 58 ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—(**यस्याम्**) जिस भूमि का (**क्षणम्+अपि**) एक पल भी (**नृप+शतैः**) सैकड़ों राजाओं से (**अभुक्तायाम्**) विना भोगे (**न यातम्**) नहीं बीता हो (**तस्याः भुवः**) उस भूमि का (**लाभे**) राज्य प्राप्त होने पर (**क्षिति+भुजाम्**) राजाओं को (**कः इव**) इतना (**बहुमानः**) अभिमान क्यों है ? (**तत्**) उसके (**अंशस्य**) अंश के (**अंशे**) एक छोटे से अंश और (**तत्**) उसके (**अपि**) भी (**अवयव+लेशे**) अंश के एक तुच्छ कण के (**पतयः**) स्वामियों को (**विषादे-कर्तव्ये**) दुःख मानना चाहिए था (**प्रत्युत**) परन्तु (**जडाः**) मूर्ख राजा लोग (**मुदम्**) आनन्द (**विदधति**) मानते हैं [जब बड़े-बड़े राजाधिराज नहीं रहे, वे इस पृथिवी का उपभोग न कर सके, तब ये भी न रहेंगे, अतः हर्ष किस बात का ?]

भावार्थ—सैकड़ों राजा-महाराजा इस पृथिवी को भोगते हुए कराल काल के गाल में समा गये। ऐसी भोगी हुई भूमि का राज्य पाकर अभिमान किस बात का ? इस पृथिवी के अंश का भी अंश और उस अंश का भी एक तुच्छ कण पाकर उन्हें रोना और शरमाना चाहिए था परन्तु मूर्ख लोग अकड़ते और इतराते हैं। जब बड़े-बड़े राजाधिराज नहीं रहे, तब ये भी नहीं रहेंगे, अतः हर्ष और गर्व किस बात का ?

मृत्पिण्डो जलरेखया वलयितस्सर्वोऽप्ययं नन्वणुः,
भागीकृत्य तमेव सङ्गरशतै राज्ञां गणैर्भुज्यते।
नो दद्युर्ददतेऽथा किमपि ते क्षुद्रा दरिद्रा भृशं,
धिग्धिक्तान्पुरुषाधमान्धनकणान् वाञ्छन्ति तेभ्योऽपि ये॥ 59॥

शब्दार्थ—(**जल+रेखया**) जल की रेखा, समुद्र से (**वलयितः**) चारों ओर से घिरा हुआ (**अयम्**) यह भूमण्डल (**सर्वः+अपि**) सब मिलाकर भी (**ननु**) फिर भी (**अणुः**) एक बहुत छोटा-सा (**मृत्+पिण्डः**) मिट्टी का लौंदा है। (**तम्, एव**) उसी मिट्टी के लौंदे को (**राज्ञाम् गणैः**) सैकड़ों राजाओं द्वारा (**सङ्गर+शतैः**) सैकड़ों युद्धों द्वारा (**भागीकृत्य**) अपना-अपना भाग बनाकर (**भुज्यते**) भोगा जाता है। (**ते**) वे (**भृशम्**) अत्यन्त (**क्षुद्राः**) ओछे और (**दरिद्राः**) दरिद्र राजा लोग (**नो दद्युः**) दान नहीं देते, वे दानी होना क्या जानें ? (**अथवा**) अथवा (**किम्+अपि**) बहुत थोड़ा, कुछ ही (**ददते**) देते हैं (**तेभ्यः अपि**) ऐसे क्षुद्र जनों से भी (**ये**) जो लोग (**धन+कणान्**) चाँदी के चन्द ठीकरे, तनिक सा धन (**वाञ्छन्ति**) माँगते हैं (**तान्**) उन (**पुरुष+अधमान्**) नीच पुरुषों को (**धिक्+धिक्**) बार-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बार धिक्कार है!

भावार्थ—चारों ओर समुद्र से घिरा यह भूमण्डल मिट्टी का एक छोटा-सा लौंदा ही तो है। इस तुच्छ लौंदे के लिए राजा लोग सैकड़ों युद्ध लड़कर उसका कुछ भाग पाकर उसी को भोगते हुए सुख अनुभव करते हैं। क्या ऐसे राजा लोग कुछ देंगे? ऐसे क्षुद्र और दरिद्र राजा लोग दानी होना क्या जानें? यदि देंगे भी तो बहुत अल्प=थोड़ा। जो लोग ऐसे ओछे, कंजूसों से कुछ पाने की इच्छा करते हैं, वे स्वयं भी बड़े नीच हैं। उनको बार-बार धिक्कार है!

स जातः कोऽप्यासीन्मदनरिपुणा मूर्ध्नि धवलं,
कपालं यस्योच्चैर्विनिहितमलङ्कारविधये।
नृभिः प्राणत्राणप्रवणमतिभिः कैश्चिदधुना,
नमद्भिः कः पुंसामयमतुलदर्पज्वरभरः॥ 60॥

शब्दार्थ—(**सः कः अपि**) कोई ऐसा [विरला ही] नररत्न (**जातः आसीत्**) उत्पन्न हुआ है (**यस्य**) जिसकी (**धवलम्**) उज्ज्वल (**कपालम्**) खोपड़ी को (**मदन+रिपुणा**) कामदेव के शत्रु [शिव जी] ने (**अलङ्कार-विधये**) आभूषण के रूप में (**उच्चैः मूर्ध्नि**) अपने उच्च भाल पर (**विनिहितम्**) धारण कर लिया। परन्तु (**अधुना**) इस समय (**प्राण+त्राण+प्रवण+मतिभिः**) अपने प्राणों की रक्षा में बुद्धि लगानेवाले (**कैश्चित्**) कुछ (**नमद्भिः**) प्रणाम करनेवाले (**नृभिः**) मनुष्यों से मान और प्रतिष्ठा पाकर (**पुंसाम्**) अधिकार-सम्पन्न लोगों को (**अयम्**) यह (**अतुल+दर्प+ज्वर+भरः**) बेहद अभिमानरूप ज्वर का भार (**कः**) कैसा?

भावार्थ—वर्तमान समय में कुछ लोग, अपने प्राणों की रक्षा में तत्पर, निकम्मे और स्वार्थी लोगों के सामने आकर सिर झुकाते ही अभिमान में चूर हो जाते हैं, परन्तु वस्तुतः जीवन तो उसी का सफल है जिसकी उज्ज्वल खोपड़ी को [अर्द्धचन्द्ररूपी] आभूषण बनाकर शिव जी जैसे महापुरुष अपने मस्तक पर धारण कर लेते हैं।

परेषां चेतांसि प्रतिदिवसमाराध्य बहुधा,
प्रसादं किं नेतुं विशसि हृदयक्लेशकलितम्।
प्रसन्ने त्वय्यन्तः स्वयमुदितचिन्तामणिगणो,
विमुक्तः सङ्कल्पः किमभिलषितं पुष्यति न ते॥ 61॥

शब्दार्थ—(**हृदय**) हे मन! (**प्रति+दिवसम्**) प्रतिदिन (**बहुधा**)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनेक प्रकार से (परेषाम्) दूसरों के (चेतांसि) चित्त को (आराध्य) प्रसन्न कर (क्लेश+कलितम्) अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त होनेवाली (प्रसादम्) कृपा को (नेतुम्) पाने की (किम् विशसि) क्यों व्यर्थ चेष्टा करता है ? (त्वयि) तेरे अन्दर (अन्तःप्रसन्ने) अन्तःकरण के प्रसन्न होने पर (स्वयम्) अपने-आप, विना परिश्रम के (उदित+चिन्तामणि+गणः) तुम्हारे हृदय में समस्त इच्छाओं को पूरा करनेवाला चिन्तामणिरूप रत्नों का समूह प्रकट हो जाएगा। (विमुक्तः, सङ्कल्पः) संकल्पों से मुक्त होकर (ते) तेरी (किम्) कौन-सी (अभिलषितम्) इच्छा (न पुष्यति) न फलेगी ?

भावार्थ—हे मन ! सदा दूसरों को प्रसन्न करने की चेष्टा करना व्यर्थ है। यदि तू तृष्णा को त्यागकर, बाहर से मुख मोड़कर भीतर प्रसन्न होने का प्रयत्न करे तो तेरे अन्दर ऐसी चिन्तामणि प्रकट होगी कि तेरे सारे मनोरथ पूर्ण हो जाएँगे। जब मन में कोई इच्छा ही न रहेगी तब किसी अभाव का आभास भी नहीं होगा।

परिभ्रमसि किं मुधा क्वचन चित्त विश्राम्यतां,
स्वयं भवति यद्यथा भवति तत्तथा नान्यथा।
अतीतमननुस्मरन्नपि च भाव्यसङ्कल्पय-
न्नतर्कितसमागमाननुभवामि भोगानहम्॥ 62॥

शब्दार्थ—(चित्त) हे मन ! (मुधा) व्यर्थ (किम्) क्यों (परिभ्रमसि) चक्कर लगा रहा है ? (क्वचन) कहीं (विश्राम्यताम्) विश्राम कर। (यत्) जो काम, बात (यथा, भवति) जैसे होनेवाली होती है (तत्) वह (स्वयम्) अपने-आप (तथा भवति) वैसे ही हो जाती है (अन्यथा न) और किसी प्रकार से नहीं होती। इसलिए (अहम्) मैं (अतीतम्) बीती बात का (अन्+अनुस्मरन्) विचार न करते हुए (च) और (भावि+अपि) आगे आनेवाली बात का भी (असङ्कल्पयन्) विचार न करते हुए (अतर्कित+समागमान्) विना सोचे, सहसा प्राप्त होनेवाले (भोगान्) भोगों को (अनुभवामि) भोगता हूँ।

भावार्थ—हे मन ! तू व्यर्थ में इधर-उधर भटकना छोड़ दे। किसी एक स्थान पर टिक जा। जो होनहार है वह तो होकर ही रहेगा। न पिछली बातों पर पछताने का कोई लाभ है और न भविष्य में होनेवाली बातों के सोचने में कोई कल्याण है। जो विना सोचे-विचारे सहसा उपलब्ध हो जाए, सन्तोषपूर्वक उसी का उपभोग करना चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एतस्माद् विरमेन्द्रियार्थगहनाद् आयासकाद् आश्रय,
श्रेयोमार्गम् अशेषदुःखशमनव्यापारदक्षं क्षणात्।
शान्तं भावमुपैहि सन्त्यज निजां कल्लोललोलां गतिं,
मा भूयो भज भङ्गुरां भवरतिं चेतः प्रसीदाधुना॥ 63॥

शब्दार्थ—(चेतः) हे मन! (एतस्मात्) इस (आयासकात्) कष्ट-दायक (इन्द्रिय+अर्थ+गहनात्) श्रोत्रादि इन्द्रियों के शब्दादि विषयरूपी वन से (विरम) मुँह मोड़ ले और (क्षणात्) क्षणभर में ही (अशेष+दुःख+शमन+व्यापार+दक्षम्) सम्पूर्ण दुःखों को मिटाने के कार्य में कुशल (श्रेयो+मार्गम्) श्रेय=मोक्ष मार्ग का (आश्रय) आश्रय ले, ज्ञानमार्ग का अनुसरण कर। (शान्तम्, भावम्, उपैहि) शान्त भय को प्राप्त करो, अपना लो (कल्लोल+लोलाम्) पानी की बड़ी-बड़ी लहरों के समान चञ्चल (निजाम्) अपनी (गतिम्) गति को (सन्त्यज) एकदम त्याग दे। (भूयः) फिर से (भङ्गुराम्) क्षणभर में नष्ट होनेवाली (भवरतिम्) संसार की वासना का (मा भज) विचार न करो। (अधुना) अब (प्रसीद) प्रसन्न, स्थिर और शान्त हो जा।

भावार्थ—हे मन! रूप, रस, गन्ध आदि इन्द्रियों के विषय बीहड़ वन के समान अत्यन्त दुःखदायी हैं, अतः तू इन विषय-वासनाओं से मुख मोड़ ले। श्रेयोमार्ग समस्त दुःखों को दूर करके शाश्वत सुख देनेवाला है, अतः तू इस पथ का पथिक बन! शान्त हो जा! चञ्चलता को त्याग दे! क्षणभंगुर सांसारिक भोगों की इच्छा मत कर! प्रसन्न, स्थिर और शान्त हो जा।

मोहं मार्जय तामुपार्जय रतिं चन्द्रार्धचूड़ामणौ,
चेतः स्वर्गतरङ्गिणीतटभुवाम् आसङ्गम् अङ्गीकुरु।
को वा वीचिसु बुद्बुदेषु च तडिल्लेखासु च श्रीषु च,
ज्वालाग्रेषु च पन्नगेषु च सरिद्वेगेषु च प्रत्ययः॥ 64॥

शब्दार्थ—(चेतः) हे मन! (मोहम्) मोह [पुत्र-मित्र आदि विषयक प्रेमरूपी अज्ञान] को (मार्जय) धो डाल! मोह को त्याग दे! (अर्धचन्द्र+चूड़ामणौ) अर्धचन्द्र जिसकी चूड़ामणि के समान है (ताम्) उस (शिव) कल्याणकारी परमात्मा में (ताम्) उस (शिव) कल्याणकारी परमात्मा में (रतिम्) अनुराग (उपार्जय) उत्पन्न करो! (स्वर्ग+तरङ्गिणी+तट+भुवाम्) देवनदी गङ्गा के तटवर्ती स्थानों में (आसङ्गम्) निवास (अङ्गीकुरु) बना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ले, क्योंकि (**वीचिषु**) जल की तरङ्गों (**च**) और (**बुद्बुदेषु**) पानी में उठनेवाले बुलबुलों पर (**तडित्+लेखासु**) विद्युत् की चमक (**च**) और (**श्रीषु च**) धन-वैभव पर, (**ज्वाला+अग्रेषु**) अग्नि की ज्वालाओं (**च**) और (**पन्नगेषु**) सर्पों पर (**च**) तथा (**सरित्+वेगेषु**) नदियों के प्रवाह पर (**कः वा प्रत्ययः**) कैसे विश्वास किया जा सकता है? [इन अनित्य, अध्रुव, चञ्चल वस्तुओं का मोह त्याग कर नित्य, ध्रुव और निश्छल परमात्मा को भज!]

भावार्थ—हे मन! मोह को त्याग दे, परमात्मा की भक्ति में मन लगा। गङ्गा के किनारे पर अपनी झोंपड़ी डाल ले। पानी में उठनेवाले बुलबुलों, विद्युत् की चमक, धन-वैभव, अग्नि की ज्वाला, सर्प और नदियों का प्रवाह—इन पर कौन विश्वास कर सकता है? इन अनित्य एवं चञ्चल वस्तुओं का मोह छोड़कर परमेश्वर में लीन हो जा!

चेतश्चिन्तय मा रमां सकृदिमामस्थायिनीमास्थया,
भूपालभ्रुकुटीकुटीविहरणव्यापारपण्याङ्गनाम् ।
कन्थाकञ्चुकिनः प्रविश्य भवनद्वाराणि वाराणसी-
रथ्यापङ्क्तिषु पाणिपात्रपतितां भिक्षामपेक्षामहे ॥ 65 ॥

शब्दार्थ—(**चेतः**) हे मन! तू (**भूपाल+भ्रुकुटी+कुटी+विहरण+व्यापार+पण्य+अङ्गनाम्**) राजाओं की भ्रुकुटीरूपी कुटी में विचरण करने और पैसे-पैसे पर बिकनेवाली वेश्या के तुल्य (**इमाम्**) इस (**अस्थायिनीम्**) अस्थिर, चञ्चल (**रमाम्**) लक्ष्मी, धन-सम्पत्ति की (**सकृत्**) एक बार कभी, भी (**मा चिन्तय**) चिन्ता मत कर। हमें तो (**वाराणसी+रथ्या+पङ्क्तिषु**) काशी [बनारस] के राजमार्ग की गलियों में (**कन्था+कञ्चुकिनः**) गुदड़ी ओढ़कर (**भवन+द्वाराणि**) घर के दरवाजों में (**प्रविश्य**) प्रविष्ट होकर (**पाणि+पात्र+पतिताम्**) हस्तरूपी पात्र में गिरी हुई (**भिक्षाम्**) भिक्षा को (**अपेक्षामहे**) चाहते हैं, पसन्द करते हैं।

भावार्थ—लक्ष्मी चञ्चला है। उसकी चाल वेश्या के समान है। वह राजाओं की भ्रुकुटि में रहती है, जो कभी भी तन सकती है, अतः हे मन! तू कभी ऐसी लक्ष्मी [सम्पत्ति] की इच्छा मत कर! हमारी इच्छा तो अब यही है कि गुदड़ी ओढ़कर और हाथ को ही पात्र बनाकर वाराणसी की गलियों में दर-दर भीख माँगते हुए निर्वाह करें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अग्रे गीतं सरसकवयः पार्श्वयोर्दाक्षिणात्याः,
पश्चाल्लीलावलयरणितं चामरग्राहिणीनाम्।
यद्यस्त्येवं कुरु भवरसास्वादने लम्पटत्वं,
नोचेच्चेतः प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ ॥ 66 ॥

शब्दार्थ—(**अग्रे**) आगे, सामने (**गीतम्**) सङ्गीत=वीणावादक गायकजन हों, (**पार्श्वयोः**) दाएँ-बाएँ, अगल-बगल में (**दाक्षिणात्याः**) दक्षिण देश के (**सरस+कवयः**) रसिक कविगण सरस काव्य सुनाते हों, (**पश्चात्**) पीछे की ओर (**चामर+ग्राहिणीनाम्**) चँवर डुलानेवाली रमणियों के (**लीला+वलय+रणितम्**) विलासपूर्ण हाव-भावों के साथ कङ्गन या चूड़ियों की झंकार हो। (**यदि एवम् अस्ति**) यदि ऐसा हो, ऐसा सुख मिले तो (**चेतः**) हे मन! तू (**भव+रस+आस्वादने**) संसार के सुखों के भोगने का (**लम्पटत्वम् कुरु**) लालच कर (**नो चेत्**) यदि ऐसा न हो तो (**सहसा**) तुरन्त (**निर्विकल्पे**) निर्विकल्प (**समाधौ**) समाधि में (**प्रविश**) प्रवेश कर।

भावार्थ—सम्मुख गायकों के मधुर गान हों, अलग-बगल में दाक्षिणात्य सरस कवियों की रसपूर्ण काव्य-निर्झरिणी हो और पीछे चँवर डुलाती हुई रमणियों के कंगनों की झंकार हो, यदि ऐसा वैभव प्राप्त हो तो संसार के सुख-भोगों में आसक्त होना चाहिए; और ऐसा सम्भव न हो तो मन को विषयों से हटाकर निर्विकल्प समाधि में लीन हो जाना चाहिए।

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं,
न्यस्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम्।
सम्पादिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं,
कल्पस्थितास्तनुभृतां तनवस्ततः किम् ॥ 67 ॥

शब्दार्थ—(**तनु+भृताम्**) शरीरधारियों=मनुष्यों को [नाना प्रकार के व्यापारों से यदि] (**सकल+काम+दुघाः**) सब कामनाओं को पूर्ण करनेवाली (**श्रियः**) सम्पदाएँ (**प्राप्ताः**) प्राप्त हो गईं तो (**ततः, किम्**) उससे क्या हुआ? इसी प्रकार निज पराक्रम द्वारा (**विद्विषताम्**) शत्रुओं के (**शिरसि**) सिर पर (**पदम्**) पैर (**न्यस्तम्**) रख दिया [सभी शत्रुओं को पादाक्रान्त कर लिया] तो (**ततः, किम्**) इससे भी क्या? यदि (**विभवैः**) धन-सम्पत्ति के द्वारा (**प्रणयिनः**) मित्रों को (**सम्पादिताः**) प्राप्त कर लिया अथवा मित्रों को सम्मानित किया तो (**ततः, किम्**) इससे क्या? [तपश्चरणादि के द्वारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि] (**कल्पस्थिताः**) कल्पभर रहनेवाले (**तनवः**) शरीर (**सम्पादिताः**) प्राप्त कर लिये तो (**ततः, किम्**) उससे भी क्या ? अर्थात् ये सब कुछ व्यर्थ हैं, इन सबके द्वारा सच्चा कल्याण सम्भव नहीं है।

भावार्थ—इतनी धन-सम्पत्ति के स्वामी हो जाएँ कि सब कामनाएँ पूर्ण हो जाएँ, इतनी शक्ति प्राप्त हो जाए कि शत्रुओं को कुचल डालें, इतने सम्पन्न हो जाएँ कि मित्रों को प्रसन्न कर सकें और इतनी आयु प्राप्त हो जाए कि कल्पान्त तक जीते रहें—इतना सब-कुछ हो जाने पर भी इनसे सच्चा सुख नहीं मिल सकता। यह सब कुछ निरर्थक है।

भक्तिर्भवे मरणजन्मभयं हृदिस्थं,
स्नेहो न बन्धुषु न मन्मथजा विकाराः।
संसर्गदोषरहिता विजना वनान्ता,
वैराग्यमस्ति किमतः परमर्थनीयम्॥ 68॥

शब्दार्थ—(**भवे**) कल्याणकारी परमात्मा में (**भक्तिः**) अपार भक्ति हो (**हृदिस्थम्**) हृदय में (**मरण+जन्म+भयम्**) मरने और जीने का भय हो, (**बन्धुषु**) बन्धु-बान्धवों में (**स्नेहः न**) अनुराग, स्नेह न हो, (**मन्मथजाः**) काम के वेग से उत्पन्न होनेवाले स्त्री-परवशता आदि (**विकाराः**) विकार, दोष (**न**) न हों, (**संसर्ग+दोष+रहिताः**) संग के दोषों से रहित (**विजनाः**) मनुष्य से शून्य (**वनान्ताः**) वन के भागों में रहें। (**वैराग्यम् अस्ति**) यदि इस प्रकार का वैराग्य उत्पन्न हो जाए तो (**इतः, परम्**) इससे बढ़कर (**अर्थनीयम्**) चाहने योग्य सुख (**किम्**) क्या है ?

भावार्थ—ईश्वर में भक्ति हो, हृदय में जन्म-मरण का भय हो, बन्धु-बन्धवों में आसक्ति न हो, मन में कामवासना न हो, संग-दोषों से रहित वन में निवास हो, ऐसे वैराग्य के उदय होने पर मनुष्य को अन्य किसी सुख की अभिलाषा नहीं रहती।

तस्मादनन्तमजरं परमं विकासि,
तद् ब्रह्म चिन्तय किमेभिरसद्विकल्पैः।
यस्यानुषङ्गिण इमे भुवनाधिपत्य-
भोगादयः कृपणलोकमता भवन्ति॥ 69॥

शब्दार्थ—(**तस्मात्**) इसलिए अर्थात् वैराग्य की सिद्धि के लिए तू (**अनन्तम्**) अनन्त, अन्तरहित (**अजरम्**) वृद्धावस्थारहित (**परमम्**)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वोत्कृष्ट (**विकसित**) सर्वव्यापक अथवा सर्वत्र प्रकाशमान (**तत्**) उस (**ब्रह्म**) ब्रह्म का ही (**चिन्तय**) चिन्तन कर (**कृपण+लोकमताः**) नीचों द्वारा चाहे जानेवाले (**इमे**) ये (**भुवन+आधिपत्य+भोग+आदयः**) सांसारिक सत्ता के सुखादि (**यस्य**) जिस ब्रह्म के (**अनुषङ्गिणः भवन्ति**) साथ-साथ चलनेवाले होते हैं अर्थात् जिस ब्रह्म की प्राप्ति से त्रिभुवन का ऐश्वर्य प्राप्त हो जाता है तू उसी की आराधना कर। (**एभिः**) इन (**असत्**) झूठे (**विकल्पैः**) संकल्प-विकल्पों से (**किम्**) क्या लाभ ?

भावार्थ—जिस ब्रह्म का लेशमात्र आनन्द प्राप्त कर लेने पर त्रिभुवन के सुख निस्सार प्रतीत होते हैं, उसी अन्तरहित, जरा-मरणादि-हीन, सर्वोत्कृष्ट, सर्वव्यापक अथवा सर्वत्र प्रकाशमान ब्रह्म का ही सदा चिन्तन करो। व्यर्थ में संकल्प-विकल्प और अहंकार से क्या लाभ ?

पातालमाविशसि यासि नभो विलङ्घ्य,
दिङ्मण्डलं भ्रमसि मानसचापलेन।
भ्रान्त्यापि जातु विमलं कथमात्मलीनं,
न ब्रह्म संस्मरसि निर्वृतिमेषि येन॥ 70॥

शब्दार्थ—(**मानस!**) हे चित्त! तू (**चापलेन**) अपनी चञ्चलता से कभी (**पातालम्**) बहुत नीचे पाताल में (**आविशसि**) प्रविष्ट हो जाता है और कभी (**नभः**) आकाश को (**विलंघ्य**) लाँघकर (**यासि**) चला जाता है। कभी (**दिक्+मण्डलम्**) चारों दिशाओं में (**भ्रमसि**) घूमता है परन्तु तू (**भ्रान्त्या+अपि**) भूलकर भी (**जातु**) एक बार भी (**आत्मलीनम्**) हृदय-मन्दिर में विद्यमान [तत्] उस (**विमलम्**) निर्मल (**ब्रह्म**) परब्रह्म को (**कथम्**) क्यों (**न, संस्मरसि**) स्मरण नहीं करता (**येन**) जिससे तू (**निर्वृतिम्**) मोक्ष के परमानन्द को (**एषि**) प्राप्त कर सकता है।

भावार्थ—हे मन! तू अपनी चञ्चलता के कारण आकाश-पाताल के कुलाबे मिलाया करता है। चारों दिशाओं में घूमता हुआ व्यर्थ के माया-जाल रचता रहता है, परन्तु तू भूलकर भी हृदय-मन्दिर में विराजमान परमेश्वर का स्मरण नहीं करता। यदि तू एक बार भी उसका ध्यान करे तो मोक्ष के परमानन्द को प्राप्त कर सकता है।

किं वेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैः शास्त्रैर्महाविस्तरैः,
स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः कर्मक्रियाविभ्रमैः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुक्त्वैकं भवदुःखभाररचनाविध्वंसकालानलं,
स्वात्मानन्दपदप्रवेशकलनं शेषा वणिग्वृत्तयः ॥ 71 ॥

शब्दार्थ—(**वेदैः**) ऋग्वेदादि चारों वेद, (**स्मृतिभिः**) मनु आदि स्मृतियों (**पुराणपठनैः**) भागवतादि अट्ठारह पुराणों के अध्ययन और (**महाविस्तरैः**) बहुत बड़े-बड़े (**शास्त्रैः**) तर्क, व्याकरण आदि शास्त्रों के (**पठनैः**) पढ़ने (**कर्म+क्रिया+विभ्रमैः**) आडम्बरपूर्ण भिन्न-भिन्न प्रकार के कर्मकाण्ड में प्रवृत्त होने से (**स्वर्ग+ग्राम+कुटी+निवास+फलदैः**) स्वर्ग-समानं स्थल में कुटिया का स्थान प्राप्त करने के अतिरिक्त (**किम्**) और क्या लाभ है ? (**स्व+आत्म+आनन्द+पद+प्रवेश+कलनम्**) अपने आत्म-सुख के पद को प्राप्त करने के लिए (**भव+दुःख+भार+रचना+विध्वंस+काल+अनलम्**) संसार के दुःखों के असह्य भार से भरे निर्माण [जन्म-मरण] को विनष्ट करने में प्रलयाग्नि के समान (**एकम्+मुक्त्वा**) एकमात्र, अद्वितीय परब्रह्म की प्राप्ति के सिवा (**शेषाः**) बाकी सारे कार्य (**वणिक्+वृत्तयः**) बनियों का व्यापार हैं अर्थात् एक के बदले दूसरा कुछ लेकर अपना छुटकारा कर लेना है।

भावार्थ—वेद, स्मृति, पुराण, तर्क और व्याकरण आदि बड़े-बड़े शास्त्रों को पढ़ने और अनेक प्रकार के कर्मकाण्डों के अनुष्ठान का फल केवल इतना ही है कि स्वर्ग में कुटिया का स्थान प्राप्त हो जाए। आत्मानन्द की प्राप्ति तो तभी हो सकती है जब संसार के बन्धनों को काटनेवाले परमेश्वर की आराधना की जाए। ब्रह्म का चिन्तन करना ही श्रेयस्कर है। इसी के द्वारा नित्य सुख की प्राप्ति होती है, शेष सब तो बनियों का व्यापार है।

यतो मेरुः श्रीमान्निपतति युगान्ताग्निवलितः,
समुद्राः शुष्यन्ति प्रचुरमकरग्राहनिलयाः।
धरा गच्छत्यन्तं धरणिधरपादैरपि धृता,
शरीरे का वार्ता करिकरभकर्णाग्रचपले ॥ 72 ॥

शब्दार्थ—(**यतः**) जिस कारण से (**श्रीमान्**) सुवर्ण-रत्न आदि मूल्यवान् वस्तुओं से पूर्ण (**मेरुः**) सुमेरु पर्वत (**युगान्त+अग्नि+वलितः**) प्रलयकाल की अग्नि से घिरकर (**निपतति**) गिर पड़ता है, भस्म हो जाता है। (**प्रचुर+मकर+ग्राह+निलयाः**) प्रभूत एवम् अनेक प्रकार के रत्न और मगर=घड़ियालों से आपूर्ण (**समुद्राः**) समुद्र भी [उसी प्रलयकालीन अग्नि से] (**शुष्यन्ति**) सूख जाते हैं। (**धरणीधर+पादैः**) महेन्द्रादि पर्वतों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाँवों से (धृता) अच्छी प्रकार रोकी हुई (धरा+अपि) पृथिवी भी (अन्तम्) नाश को, (गच्छति) प्राप्त हो जाती है, तब (करि+कलभ+कर्ण+अग्र+चपले) हाथी के बच्चे के कान के अग्रभाग के समान अत्यन्त चञ्चल (शरीरे) शरीर के विषय में तो (का वार्ता) बात ही क्या है ! अर्थात् वह तो क्षणभंगुर है ही।

भावार्थ—सुवर्ण और रत्नों से पूर्ण सुमेरु पर्वत प्रलयाग्नि में भस्म हो जाता है। बड़े-बड़े समुद्र भी सूख जाते हैं। पर्वतों द्वारा रोकी हुई पृथिवी भी नष्ट हो जाती है। जब बड़े-बड़े पर्वत, समुद्र और पृथिवी की ऐसी दशा है, तब मनुष्य का शरीर किस गिनती में है, वह तो क्षणभंगुर है ही।

गात्रं सङ्कुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलिर्,
दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते।
वाक्यं नाद्रियते च बान्धवजनो भार्या न शुश्रूषते,
हा कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते॥ 73॥

शब्दार्थ—(जीर्ण+वयसः) ढली अवस्थावाले, बूढ़े (पुरुषस्य) पुरुष को (हा) अहो! (कष्टम्) बड़ा कष्ट [दुःख] होता है। वृद्धावस्था में (गात्रम्) शरीर (सङ्कुचितम्) सिकुड़ गया, झुक गया, (गतिः) चाल (विगलिता) धीमी पड़ गई है (च) और (दन्तावलिः) दाँतों की पंक्ति (भ्रष्टा) टूटकर गिर गई। इस अवस्था में (दृष्टिः) नेत्रज्योति (नश्यति) नष्ट हो जाती है, (बधिरता) बहरापन (वर्धते) बढ़ जाता है (च) और (वक्त्रम्) मुख (लालायते) लार छोड़ने लगता है, (बान्धव+जनाः) बन्धु-बान्धव (वाक्यम्) उसकी बात का (न+आद्रियते) आदर नहीं करते, उसकी बात नहीं सुनते (च) तथा (भार्या) पत्नी (न शुश्रूषते) सेवा नहीं करती। बूढ़े मनुष्य का (पुत्रः+अपि) पुत्र भी (अमित्रायते) अमित्र के समान व्यवहार करता है।

भावार्थ—बुढ़ापे में शरीर पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं, पैर डगमगाने लगते हैं, दाँत टूट जाते हैं, दृष्टि क्षीण हो जाती है, कानों से कम सुनाई देने लगता है, मुँह से लार टपकने लगती है, भाई-बन्धु बात नहीं सुनते, स्त्री सेवा नहीं करती और पुत्र भी वैरी-से बन जाते हैं। इस प्रकार बुढ़ापा अत्यन्त कष्टदायक है।

वर्णं सितं शिरसि वीक्ष्य शिरोरुहाणां,
स्थानं जरापरिभवस्य तथा पुमांसम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आरोपितास्थिशकलं परिहृत्य यान्ति,
चाण्डालकूपमिव दूरतरं तरुण्यः ॥ 74 ॥

शब्दार्थ—(**शिरसि**) सिर में (**शिरोरुहाणाम्**) सिर में उगनेवाले बालों का (**सितम्**) सफेद (**वर्णम्**) रंग (**वीक्ष्य**) देखकर (**तथा**) और (**पुमांसम्**) पुरुष को (**जरा+परिभवस्य, स्थानम्**) बुढ़ापे से अपमानित पात्र, [**मत्वा**] समझकर (**आरोपित+अस्थि+शकलम्**) हड्डी के टुकड़े लगे हुए (**चाण्डाल+कूपम्**) चाण्डाल जाति के कुएँ के (**इव**) समान (**तरुण्यः**) युवतियाँ (**दूरतरम्**) दूर ही (**परिहृत्य**) छोड़कर (**यान्ति**) निकल जाती हैं।

भावार्थ—सिर के बाल श्वेत हो जाने पर पुरुष को बूढ़ा जानकर युवतियाँ उसको दूर से ही त्यागकर ऐसे भाग खड़ी होती हैं जैसे हाड़ बँधे हुए चाण्डालों के कुएँ से सवर्ण हिन्दू भाग जाते हैं।

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो,
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्,
सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥ 75 ॥

शब्दार्थ—(**यावत्**) जब तक (**इदम्**) यह (**शरीरम्**) शरीर (**स्वस्थम्**) स्वस्थ और (**अरुजम्**) रोगरहित हो, (**यावत्**) जब तक (**जरा**) बुढ़ापा (**दूरतः**) दूर रहे, (**च**) और (**यावत्**) जब तक (**इन्द्रिय+शक्तिः**) आँख-कान आदि इन्द्रियों की शक्ति (**अप्रतिहता**) नष्ट नहीं हुई है और (**यावत्**) जब तक (**आयुषः**) आयु का (**क्षयः न**) नाश नहीं हुआ है, (**तावत् एव**) तभी तक (**विदुषा**) बुद्धिमान् मनुष्य को (**आत्म-श्रेयसि**) आत्म-कल्याण के लिए (**महान्**) घोर (**प्रयत्नः**) उद्योग (**कार्यः**) करना चाहिए, क्योंकि (**भवने**) घर में (**सन्दीप्ते, तु**) आग लग जाने पर तो (**कूप-खननम् प्रति**) कुआँ खोदने के लिए (**उद्यमः**) प्रयत्न करना (**कीदृशः**) कैसा, किस काम का ?

भावार्थ—जब तक शरीर नीरोग है, वृद्धावस्था दूर है, इन्द्रियों में शक्ति है और आयु शेष है अर्थात् ढलने से पूर्व ही आत्म-कल्याण के लिए उद्योग करना चाहिए। सब-कुछ बीत जाने पर, मृत्यु के द्वार पर पहुँचने पर मुक्ति के लिए प्रयत्न करना ऐसा है जैसे घर में आग लग जाने पर उसे बुझाने के लिए कुआँ खोदना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तपस्यन्तः सन्तः किमधिनिवसामः सुरनदीं,
गुणोदारान् दारानुत परिचरामः सविनयम्।
पिबामः शास्त्रौघानुत विविधकाव्यामृतरसान्,
न विद्मः किं कुर्मः कतिपयनिमेषायुषि जने॥ 76॥

शब्दार्थ—(**तपस्यन्तः, सन्तः**) तपस्या करते हुए हम लोग वैराग्यपूर्वक (**किम्**) क्या (**सुरनदीम्**) देवनदी गङ्गा के तट पर (**अधिवसामः**) निवास करें ? (**उत**) अथवा (**गुण+उदारान्**) सौभाग्य, सुशीलता आदि गुणों से अलंकृत सुन्दर (**दारान्**) पत्नियों का (**सविनयम्**) विनयपूर्वक, सांसारिक धर्म से (**परिचरामः**) अनुसरण करें। (**उत**) किंवा (**शास्त्रओघान्**) समस्त शास्त्रों और (**विविध+काव्य+अमृत+रसान्**) भिन्न-भिन्न काव्यों के अमृत के समान रस का (**पिबामः**) पान करें। (**जने**) मनुष्य के (**कतिपय+निमेष+आयुषि**) थोड़े-से क्षण के जीवन में (**किम्, कुर्मः**) हम क्या-क्या करें, (**न विद्मः**) यह नहीं जान पाते।

भावार्थ—तप करते हुए गङ्गा के किनारे निवास करें अथवा गुणवती सुशील पत्नी के साथ संसार के भोगों को भोगें। समस्त शास्त्रों का अध्ययन करें, या मधुर काव्यरसों का पान करें। इस क्षणिक जीवन में मनुष्य क्या-क्या करे, समझ में नहीं आता। जीवन थोड़ा-सा है और इच्छाएँ बहुत हैं।

दुराराध्याश्चामी तुरगचलचित्ताः क्षितिभुजो,
वयं तु स्थूलेच्छाः सुमहति फले बद्धमनसः।
जरा देहं मृत्युर्हरति दयितं जीवितमिदं,
सखे नान्यच्छ्रेयो जगति विदुषोऽन्यत्र तपसः॥ 77॥

शब्दार्थ—(**तुरग+चल+चित्ताः**) घोड़े की गति के समान चञ्चल चित्तवाले (**अमी**) ये (**क्षितिभुजः**) राजा लोग (**दुः+आराध्याः**) सेवादि द्वारा कठिनता से प्रसन्न किये जा सकते हैं। (**तु**) और इधर (**वयम्**) हम (**स्थूल+इच्छाः**) बड़ी-बड़ी इच्छा रखनेवाले हैं तथा (**सुमहति**) बहुत भारी (**फले**) फल में (**बद्धमनसः**) मन लगाये हुए हैं। मन में बड़ी-बड़ी लालसाएँ अथवा मोक्ष की इच्छा है। उधर (**जरा**) वृद्धावस्था (**देहम्**) शरीर को [आक्रान्त कर रही है और] (**मृत्युः**) मौत (**इदम्**) इस (**दयितम्**) प्यारे (**जीवितम्**) जीवन को (**हरति**) लेने को उत्सुक है। (**सखे**) हे मित्र! (**जगति**) संसार में (**विदुषः**) विद्वान् के लिए (**तपसः अन्यत्र**)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तपस्या के अतिरिक्त (अन्यत् श्रेयः न) और कोई कल्याण अथवा मोक्ष का साधन नहीं है।

भावार्थ—राजाओं का मन घोड़े की गति के समान चञ्चल होता है। पता नहीं उन्हें किस समय कौन-सी बात अच्छी लगे और कौन सी बुरी, अतः उन्हें प्रसन्न करना कठिन है। इधर हमारी बड़ी-बड़ी इच्छाएँ हैं, मन में मोक्ष की चाहना भी है। उधर वृद्धावस्था शरीर को जीर्ण कर रही है और मृत्यु जीवन की डोरी को काट रही है। ऐसी अवस्था में हे मित्र! तपस्या के अतिरिक्त और कोई कल्याण का साधन नहीं है।

माने म्लायिनि खण्डिते च वसुनि व्यर्थं प्रयातेऽर्थिनि,
क्षीणे बन्धुजने गते परिजने नष्टे शनैर्यौवने।
युक्तं केवलमेतदेव सुधियां यज्जह्नुकन्यापयः-
पूतग्रावगिरीन्द्रकन्दरतटीकुञ्जे निवासः क्वचित्॥ 78॥

शब्दार्थ—(माने म्लायिनि) मान-सम्मान के धूल में मिलने पर, (च) और (वसुनि खण्डिते) धन के नष्ट होने पर, (अर्थिनि, व्यर्थम् प्रयाते) याचक के द्वार से खाली हाथ लौट जाने पर (बन्धुजने क्षीणे) [अन्नादि के अभाव में] पुत्र, कलत्र, भाई, बन्धु, मित्रादि के क्षीण होने पर (परिजने नष्टे) सेवकवर्ग के छोड़कर चले जाने पर और (यौवने शनैः नष्टे) धीरे-धीरे जवानी के ढल जाने पर (सुधियाम्) बुद्धिमानों के लिए (केवलम्) केवल (एतत् एव) यही (युक्तम्) उचित है (यत्) कि वे (जह्नुकन्या-पयः) गङ्गा के पानी से (पूत-ग्राव-गिरीन्द्र-कन्दर-तटी-कुञ्जे, क्वचित्) पवित्र किये हुए पर्वतराज हिमालय की चट्टानों के आसपास किसी कुञ्ज में (निवासः) निवास करें।

भावार्थ—जब मान भङ्ग हो जाए, धन-सम्पत्ति नष्ट हो जाए, याचक दरवाजे से खाली लौटने लगें, मित्र, नाते-रिश्तेदार कम हो जाएँ, नौकर-चाकर छोड़कर चले जाएँ और यौवन ढल जाए, ऐसी स्थिति में बुद्धिमानों के लिए यही उचित है कि वे गङ्गा के जल से पवित्र किये हुए पर्वतराज हिमालय की गुहा के आसपास किसी कुञ्ज में निवास करें। संसार से नाता तोड़कर आत्मानुसन्धान करें।

रम्याश्चन्द्रमरीचयस्तृणवती रम्या वनान्तःस्थली,
रम्यं साधुसमागमागतसुखं काव्येषु रम्याः कथाः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोपोपाहितवाष्पविन्दुतरलं रम्यं प्रियाया मुखं,
सर्वं रम्यमनित्यतामुपगते चित्ते न किञ्चित्पुनः ॥ 79 ॥

शब्दार्थ—(**चन्द्र+मरीचयः**) चन्द्रमा की चाँदनी से युक्त रातें (**रम्याः**) रमणीय होती हैं, (**तृणवती**) हरी-हरी घासवाले (**वनान्तः+स्थली**) वन के प्रदेश (**रम्याः**) रमणीय होते हैं, (**साधु+समागम+आगत+सुखम्**) साधु-सन्तों के समागम से प्राप्त होनेवाला सुख (**रम्यम्**) आनन्ददायक होता है, (**काव्येषु**) काव्यों में वर्णित (**कथाः**) कथाएँ (**रम्याः**) रोचक होती हैं, (**कोप+ उपाहित+वाष्प+विन्दु+तरलम्**) प्रणय-कलह में कोप से उत्पन्न अथवा रूठने से उत्पन्न आँसुओं से भीगा (**प्रियायाः मुखम्**) प्रेयसी का मुखड़ा (**रम्यम्**) सुन्दर होता है, (**सर्वम् रम्यम्**) ये सब रमणीय और मनोहारी हैं (**पुनः**) फिर भी (**चित्ते**) चित्त में उनकी (**अनित्यताम् उपगते**) अनित्यता का ज्ञान होने पर (**न किञ्चित् रम्यम्**) कुछ भी सुन्दर एवम् आनन्ददायक नहीं प्रतीत होता।

भावार्थ—चाँदनी रातें बड़ी सुहावनी होती हैं, हरे-भरे वन मन को मोह लेते हैं, साधु-सन्तों के समागम से सुख मिलता है, काव्य-श्रवण में रस आता है, परन्तु इनकी अनित्यता का ज्ञान होते ही कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती।

रम्यं हर्म्यतलं न किं वसतये श्राव्यं न गेयादिकं,
किं वा प्राणसमासमागमसुखं नैवाधिकप्रीतये।
किन्तु भ्रान्तपतङ्गपक्षपवनव्यालोलदीपाङ्कुर-
च्छायाचञ्चलमाकलय्य सकलं सन्तो वनान्तं गताः ॥ 80 ॥

शब्दार्थ—(**किम्**) क्या (**वसतये**) रहने के लिए (**रम्यम्**) स्वर्ग के तुल्य रमणीय (**हर्म्यतलम्**) भव्य भवन (**न**) नहीं थे ? क्या (**श्राव्यम्**) सुनने के लिए (**गेयादिकम्**) गाने योग्य मधुर संगीत (**न**) नहीं थे ? (**वा**) अथवा (**प्राण+समा+समागम+सुखम्**) प्राणों के समान प्रिया प्रेयसी के साथ समागम का सुख (**अधिक+प्रीतये**) अत्यधिक प्रीतिजनक (**न, एव, किम्**) नहीं था क्या ? (**किन्तु**) इन सब सुख-साधनों के विद्यमान होने पर भी (**सन्तः**) सन्तजन (**सकलम्**) सब विषयों को (**भ्रान्त-पतङ्ग-पक्ष-पवन-व्यालोल-दीपक+अङ्कुर+च्छाया+चञ्चलम्**) इधर-उधर घूमनेवाले पतंगों के पंखों से निकलनेवाली पवन से कम्पित दीपक की लौ के समान अत्यन्त चञ्चल=नश्वर (**आकलय्य**) समझकर [इन सब को त्यागकर अपने कल्याण के लिए] (**वनान्तम्**) वनों के भीतर (**गताः**) चले गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावार्थ—रहने के लिए स्वर्ग के समान सुखप्रद विशाल भवन थे, सुनने के लिए नाना प्रकार के सुन्दर संगीत थे, प्राणों के समान प्रिया प्रेयसी के साथ समागम का सुख भी प्राप्त था—इन सब सुख-साधनों के विद्यमान होने पर भी सन्तजन इन सब वैभवों और विषय-सुखों को अत्यन्त क्षणिक एवं नश्वर समझकर अपने आत्मकल्याण के लिए वन में चले गये।

आसंसारं त्रिभुवनमिदं चिन्वतां तात तादृङ्,
नैवास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रमार्गं गतो वा।
योऽयं धत्ते विषयकरिणीगाढगूढाभिमान-
क्षीबस्यान्तःकरणकरिणः संयमालानलीलाम्॥ 81॥

शब्दार्थ—(**तात**) हे भाई! (**आ संसारम्**) संसार के आरम्भ+सर्ग की उत्पत्ति से लेकर (**इदम्, त्रिभुवनम्**) इन तीनों भुवनों [पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक] में (**चिन्वताम्**) खोजने पर भी (**अस्माकम्**) हमारी (**नयन-पदवीम्**) दृष्टि में (**वा**) अथवा (**श्रोत्र-मार्गम्**) कानों में (**एव**) भी (**तादृक्**) उस प्रकार का व्यक्ति (**न गतः**) नहीं पड़ा अर्थात् आँखों से देखने की तो बात ही क्या, सुनने में भी नहीं आया (**यः, अयम्**) जो मनुष्य कि (**विषयकारिणी-गाढ-गूढाभिमान-क्षीबस्य**) वासना-[विषय-सुख]-रूपी हथिनी में गाढ़े और गहरे प्रेम के कारण मस्त बने हुए (**अन्तःकरणः-करिणः**) अन्तःकरण=मनरूपी हाथी को (**संयम+आलान+लीलाम्, धत्ते**) संयमरूपी रस्सी में बाँधने की लीला करने में समर्थ हो।

भावार्थ—सृष्टि के आरम्भ से लेकर अबतक तीनों लोकों को मथ डाला परन्तु नेत्रों से देखने की तो बात ही क्या, कानों से सुनने में भी ऐसा कोई वीर पुरुष नहीं आया जो विषयवासनारूपी हथिनी में रत, मद से मतवाले अन्तःकरणरूपी हाथी को संयमरूपी रस्सी से बाँधने में समर्थ हो।

यदेतत्स्वच्छन्दं विहरणमकार्पण्यमशनं,
सहार्यैः संवासः श्रुतमुपशमैकव्रतफलम्।
मनो मन्दस्पन्दं बहिरपि चिरस्यापि विमृशन्,
न जाने कस्यैषा परिणतिरुदारस्य तपसः॥ 82॥

शब्दार्थ—(**यत् एतत्**) जो यह (**स्वच्छन्दम्**) अपनी इच्छापूर्वक (**विहरणम्**) विचरण करना, (**अकार्पण्यम्, अशनम्**) दीनता के विना भिक्षा से प्राप्त अन्न, (**आर्यैः सह**) आर्य=ज्ञान-विज्ञानसम्पन्न श्रेष्ठ पुरुषों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साथ (**संवासः**) उठना-बैठना, निवास, (**उपशम, एक-व्रत-फलम्**) मन की शान्ति जिनका प्रधान फल है उन (**श्रुतम्**) वेदादि शास्त्रों का स्वाध्याय अथवा श्रवण करना, अन्तर्मुख होने से (**मनः**) मन का (**बहिः अपि**) बाहर की ओर भी (**मन्द-स्पन्दम्**) बहुत ही कम प्रवृत्त होना, बाहर की ओर कम दौड़ना (**एषा**) यह सब (**कस्य**) किस (**उदारस्य**) महान् (**तपसः**) तपस्या का (**परिणतिः**) फल है (**चिरस्य**) चिरकाल तक (**विमृशन्**) विचारने पर भी (**न, जाने**) मैं समझ नहीं पा रहा हूँ।

भावार्थ—स्वच्छन्द आहार-विहार, श्रेष्ठ पुरुषों के साथ उठना-बैठना, वेदादि शास्त्रों का स्वाध्याय, चित्त का अन्तर्मुख हो जाना—ऐसी अपूर्व स्थिति मनुष्य को न जाने किस पुण्य के प्रताप से प्राप्त होती है, बहुत सोचने-विचारने पर भी इसका रहस्य समझ में नहीं आता।

जीर्णा एव मनोरथाश्च हृदये यातं च तद्यौवनं,
हन्ताङ्गेषु गुणाश्च बन्ध्यफलतां याता गुणज्ञैर्विना।
किं युक्तं सहसाभ्युपैति बलवान् कालः कृतान्तोऽक्षमी,
हा ज्ञातं मदनान्तकाङ्घ्रियुगलं मुक्त्वास्ति नान्या गतिः ॥ 83 ॥

शब्दार्थ—(**मनोरथाः**) हमारी इच्छाएँ (**हृदये**) हमारे हृदय में (**एव**) ही (**जीर्णा**) नष्ट हो गईं, मन की मन में रह गईं (**तत् यौवनम्**) वह उल्लासभरा यौवन (**च**) भी (**यातम्**) बीत गया (**हन्त**) हाय! (**गुणज्ञैः विना**) गुणग्राहियों के अभाव में (**गुणाः**) विद्या, बुद्धि, शील, विनय आदि गुण भी (**अङ्गेषु**) शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्गों में (**च**) ही (**बन्ध्यफलताम्**) निष्फल (**याता**) धरे रह गये। (**बलवान्**) महाबली, (**अक्षमी**) असहनशील (**कृतान्तः**) अन्त कर डालनेवाला (**कालः**) काल, यमराज (**सहसा**) अचानक (**अभि, उप, एति**) प्राण लेने के लिए आ पहुँचा है—ऐसे समय में (**किम् युक्तम्**) क्या करना उचित होगा? (**हा ज्ञातम्**) हाँ, ध्यान आया, अब तो (**मदन+अन्तक+अङ्घ्रियुगलम्**) काम के वैरी, काम को भस्मीभूत करनेवाले शिव के चरण-कमलों को (**मुक्त्वा**) छोड़कर (**अन्या गतिः**) दूसरा कोई आश्रय (**न+अस्ति**) नहीं है। [संसार से त्राण पाने के लिए एकमात्र परमात्मा का ही आश्रय है]।

भावार्थ—सारे मनोरथ नष्ट हो गये। जवानी ढल गई। सारे गुण भी व्यर्थ हो गये। अन्त में यमराज भी आ पहुँचे। ऐसी स्थिति में यदि कोई आश्रय है तो केवल परमात्मा का ही आश्रय है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे जनार्दने वा जगदन्तरात्मनि।
तयोर्न भेदप्रतिपत्तिरस्ति मे तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे॥ 84॥

शब्दार्थ—(**जगताम्**) समस्त जगत् के, चतुर्दश भुवनों के (**अधीश्वरे**) प्रभु, स्वामी (**महेश्वरे**) महादेव में (**वा**) अथवा (**जगत्+अन्तरात्मनि**) सृष्टि के अन्तर्यामी अथवा ब्रह्माण्ड को अपने अन्दर धारण करनेवाले (**जनार्दने**) विष्णु में (**तयोः**) इन दोनों में (**मे**) मुझे (**भेदप्रतिपत्तिः**) अलग-अलग होने का भाव (**न, अस्ति**) नहीं है, मैं दोनों को एक ही मानता हूँ (**तथापि**) फिर भी (**तरुण-इन्दु-शेखरे**) बालचन्द्र को सिर पर धारण किये हुए महादेव में (**भक्तिः**) मेरी श्रद्धा है।

भावार्थ—यद्यपि सकल भुवनों के स्वामी महादेव और सर्वान्तर्यामी विष्णु में हमें कोई भेद प्रतीत नहीं होता, फिर भी महादेव जी में हमारी अधिक श्रद्धा है।

विशेष—यह श्लोक चाहे पौराणिक मान्यता का प्रतिपादक है, फिर भी इससे शिव और विष्णु का ऐक्य प्रदर्शित अवश्य होता है।

स्फुरत्स्फारज्योत्स्नाधवलिततले क्वाऽपि पुलिने,
सुखासीनाः शान्तध्वनिषु रजनीषु द्युसरितः।
भवाभोगोद्विग्नाः शिव शिव शिवेत्युच्चवचसा,
कदा स्यामानन्दोद्गतबहुलवाष्पाकुलदशाम्॥ 85॥

शब्दार्थ—हमारे जीवन में वह शुभ दिन कब आएगा जब हम (**शान्त-ध्वनिषु**) मनुष्य और पशु-पक्षियों के कोलाहल से रहित, एकदम शान्त (**रजनीषु**) रात्रियों में (**स्फुरत्-स्फार-ज्योत्स्ना-धवलित-तले**) छिटकते हुए चन्द्रमा की चाँदनी से धवल प्रदेशवाली (**द्युसरितः पुलिने**) गङ्गा के किसी बालूमय तट पर (**क्व+अपि**) किसी स्थान पर (**सुख-आसीनाः**) सुखपूर्वक, आराम से बैठकर (**भव+आभोग-उद्विग्नाः**) संसार के भोगों से उचाट होकर (**शिव, शिव, शिव**) 'शिव, शिव, शिव' (**इति उच्च-वचसा**) इस प्रकार उच्च स्वर से जपते हुए (**आनन्द-उद्गत-बहुलवाष्प+आकुल+दशाम्**) परमानन्द से उमड़े हुए अविरल आँसुओं की धारा के साथ आकुल दशावाले (**कदा स्याम**) कब होंगे ?

भावार्थ—हमारे जीवन में वह शुभवेला कब आएगी जब हम संसार के कोलाहल से दूर, चन्द्रमा की चाँदनी में गंगा के तट पर बैठकर उच्च स्वर से प्रभु-भजन करते हुए आनन्द के आँसू बहाएँगे ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वितीर्णे सर्वस्वे तरुणकरुणापूर्णहृदयाः,
स्मरन्तः संसारे विगुणपरिणामां विधिगतिम्।
वयं पुण्यारण्ये परिणतशरच्चन्द्रकिरणास्,
त्रियामा नेष्यामो हरचरणचिन्तैकशरणाः ॥ 86 ॥

शब्दार्थ—(**तरुण-करुणा-पूर्ण-हृदयाः**) उद्रिक्त करुणा से भरे हृदय से (**सर्वस्वे**) अपने सर्वस्व, सब-कुछ को (**वितीर्णे**) दीनों को बाँटकर (**संसारे**) संसार में (**विगुण-परिणामाम्**) बुरे परिणामवाली (**विधिगतिम्**) दैवगति=भाग्य की गति का (**स्मरन्तः**) स्मरण करते हुए (**परिणत-शरत्-चन्द्रकिरणाः**) शरद् ऋतु के चन्द्रमा की सर्वत्र छिटकी चाँदनी से धवलित (**पुण्य+अरण्ये**) रमणीक वन में (**हर+चरण+चिन्ता+एक+शरणाः**) दुःखहारी परमात्मा के चरणों के ध्यान को ही एकमात्र आश्रय मानकर (**वयम्**) हम (**त्रियामाः**) रात्रियों को (**नेष्यामः**) बिताएँगे।

भावार्थ—हमारे जीवन में वह समय कब आएगा जब हम प्राणिमात्र के प्रति दया से पूरित होकर उदात्त उदारता से अपना सर्वस्व दान करके दैवगति=भाग्य की गति का विचार करते हुए चन्द्रमा की चाँदनी से आच्छादित किसी रमणीक वन में केवल परमात्मा का ध्यान करते हुए अपनी रात्रियाँ बिताएँगे।

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः ॥ 87 ॥

शब्दार्थ—(**शम्भो**) हे मङ्गलकारी प्रभो! मेरे जीवन में वह समय कब आएगा जब मैं (**एकाकी**) सङ्गरहित, किसी से कोई लगाव न रखनेवाला (**निःस्पृहः**) विषयाभिलाषाओं से निवृत्त, सुख-दुःख से उदासीन (**शान्तः**) मानसिक संकल्प-विकल्पों से शून्य (**पाणि-पात्रः**) कर-पात्री, हाथ ही जिसका पात्र हो अर्थात् हथेली में ही खाने-पीनेवाला (**दिगम्बरः**) वस्त्ररहित, नंगा रहकर (**कर्म-निर्मूलन-क्षमः**) सञ्चित और प्रारब्ध कर्मों को जड़ से उखाड़ फेंकनेवाला (**कदा**) कब (**भविष्यामि**) होऊँगा ?

भावार्थ—हे प्रभो! मेरे मन में किसी के प्रति राग-द्वेष न हो, एकदम अकेला रहूँ, सुख-दुःख का अनुभव न करके उदासीन रहूँ, खाने-पहनने की चिन्ता न हो, एकदम नंगा रहूँ, जो कुछ मिले उसे हथेली में रखकर ही खा लूँ और प्रारब्ध कर्मों को जड़ से उखाड़ फेंकने में समर्थ होऊँ—ऐसा मैं कब बनूँगा ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कौपीनं शतखण्डजर्जरतरं कन्था पुनस्तादृशी,
नैश्चिन्त्यं निरपेक्षभैक्षमशनं निद्रा श्मशाने वने।
स्वातन्त्र्येण निरङ्कुशं विहरणं स्वान्तं प्रशान्तं सदा,
स्थैर्यं योगमहोत्सवेऽपि च यदि त्रैलोक्यराज्येन किम्॥ 88॥

शब्दार्थ—(**शत-खण्ड-जर्जर-तरम्**) सैकड़ों चिथड़ों की एकदम फटी हुई (**कौपीनम्**) लंगोटी हो (**पुनः**) फिर (**तादृशी**) वैसी ही फटी-पुरानी, सैकड़ों चिथड़ों से बनी (**कन्था**) गुदड़ी हो, (**नैश्चिन्त्यम्**) निश्चिन्तता, बेफिक्री हो, (**निरपेक्ष-भैक्ष्यम्-अशनम्**) विना माँगे ही मिली भिक्षा का भोजन हो (**श्मशाने वने निद्रा**) श्मशान या महावन में सो जाएँ, (**स्वातन्त्र्येण, निरङ्कुशम्, विहरणम्**) अपनी इच्छानुसार विना रोक-टोक के विचरण हो (**स्वान्तम्**) अन्तःकरण (**सदा**) सदा (**प्रशान्तम्**) शान्त और प्रसन्न हो (**च**) और (**योग-महोत्सवे, अपि**) समाधिरूप महान् उत्सव में भी (**यदि**) यदि (**स्थैर्यम्**) स्थिरता हो जाए अर्थात् समाधि में मन की वृत्ति टिक जाती हो तो (**त्रैलोक्य-राज्येन किम्**) ऐसे महामानव को तीनों लोकों के राज्य की प्राप्ति से भी क्या लाभ ? कुछ नहीं।

भावार्थ—फटी-पुरानी लंगोटी हो, वैसी ही गुदड़ी हो, एकदम बेफिक्री हो, जो मिल जाए उसी से निर्वाह कर ले, महावन में या श्मशान में कहीं भी सो जाएँ, विना रोक-टोक अपनी इच्छानुसार कहीं भी विचरते रहें, सदा प्रसन्नचित्त और शान्त रहें, समाधि लग जाए—जिसे ऐसी अवस्था प्राप्त हो जाए उसके लिए तीनों लोकों का राज्य निरर्थक है।

ब्रह्माण्डमण्डलीमात्रं न लोभाय मनस्विनः।
शफरीस्फुरितेनाब्धिः क्षुब्धो न खलु जायते॥ 89॥

शब्दार्थ—जिस प्रकार (**शफरी-स्फुरितेन**) एक छोटी मछली की उछल-कूद से (**अब्धिः**) समुद्र (**क्षुब्धः**) चञ्चल (**न जायते**) नहीं होता, उसी प्रकार (**मनस्विनः**) विचारशील, आत्मज्ञानी, योगी को (**ब्रह्माण्डमण्डली-मात्रम्**) सकल ब्रह्माण्ड भी (**लोभाय किम्**) क्या लोभ उत्पन्न कर सकता है ? कभी नहीं।

भावार्थ—जैसे एक छोटी-सी मछली की उछल-कूद से समुद्र के जल में खलबली नहीं हो सकती, वैसे ही समस्त ब्रह्माण्ड का लोभ देकर भी आत्मज्ञानी योगी को लुभाया नहीं जा सकता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मातर्लक्ष्मि भजस्व कञ्चिदपरं मत्काङ्क्षिणी मास्म भूर्-
भोगेषु स्पृहयालवस्तव वशे का निस्पृहाणामसि।
सद्यः स्यूतपलाशपत्रपुटिकापात्रे पवित्रीकृतैर्,
भिक्षावस्तुभिरेव सम्प्रति वयं वृत्तिं समीहामहे॥ 90॥

शब्दार्थ—(मातः लक्ष्मि) हे माता लक्ष्मी! अब तू (कञ्चित् अपरम्) किसी अन्य पुरुष का (भजस्व) आश्रय ले, सेवा कर (मत्) मेरी (काङ्क्षिणी) इच्छुक, अभिलाषिणी (मा-स्म भूः) मत बन। (भोगेषु) सुख-भोग में (स्पृहयालवः) इच्छा रखनेवाले ही (तव) तेरे (वशे) वश में जाते हैं, (निःस्पृहाणाम्) विषय-भोगों से उदासीन मनुष्यों की तू (का असि) कौन होती है, विरक्तों से तेरा क्या वास्ता! (सम्प्रति) अब तो (वयम्) हम (सद्यः) तुरन्त (स्यूत-पलाश-पत्र-पुटिका-पात्रे) सिये हुए ढाक के पत्तों के दोनों में (पवित्रीकृतैः) प्रोक्षणादि द्वारा पवित्र की हुई (भिक्षा-वस्तुभिः एव) भिक्षा की वस्तुओं से ही (वृत्तिम्) जीविका (समीहामहे) पसन्द करते हैं।

भावार्थ—हे माता लक्ष्मी! अब तू हमारी आशा छोड़कर और किसी की सेवा कर, क्योंकि हमें विषय-भोग की इच्छा नहीं रही। जो भोगी हैं वे ही तेरे जाल में फँस सकते हैं, त्यागियों से तुम्हारा क्या लेना-देना? हम तो अब पत्तों के दोने में भिक्षा के अन्न से अपना पेट भरना चाहते हैं।

महाशय्या पृथ्वी विपुलमुपधानं भुजलता,
वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः।
शरच्चन्द्रो दीपो विरतिवनितासङ्गमुदितः,
सुखी शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव॥ 91॥

शब्दार्थ—(पृथ्वी) भूमि (महाशय्या) एक बड़ी सेज के समान है (भुजलता) भुजाएँ (विपुलम्) विशाल (उपधानम्) तकिया हैं (च) और (आकाशम्) आकाश (वितानम्) शामियाना है। (अयम्) यह (अनुकूलः) इच्छानुकूल चलनेवाला (अनिलः) वायु ही (व्यजनम्) पंखा है, (शरत्, चन्द्रः) शरद् ऋतु का चन्द्रमा ही (दीपः) जगमगाता हुआ दीपक है, (विरति-वनिता-सङ्ग-मुदितः) विरक्तिरूपी रमणी के सङ्ग से हर्षित और (शान्तः) शान्त (मुनिः) मुनि, मौनी योगी (अतनुभूतिः) असीम वैभवशाली (नृपः इव) सम्राट् की भाँति विदेह-सा होकर (सुखी शेते) निःशङ्क होकर सुख से सोता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावार्थ—योगी के लिए भूमि ही गद्दा है, आकाश ही शामियाना है, हाथ ही उसका तकिया है, मन्द-मन्द चलनेवाली वायु ही पंखा है, विरक्ति ही उसकी पत्नी है। इस प्रकार वह सब-कुछ त्यागकर चक्रवर्ती सम्राट् की भाँति विदेह-सा होकर समाधि-निद्रा में सोता है [आनन्दमय जीवन बिताता है]।

भिक्षाशी जनमध्यसङ्गरहितः स्वायत्तचेष्टः सदा,
हानादानविरक्तमार्गनिरतः कश्चित्तपस्वी स्थितः।
रथ्याकीर्णविशीर्णजीर्णवसनैः सम्प्राप्तकन्थासनो,
निर्मानो निरहङ्कृतिः शमसुखाभोगैकबद्धस्पृहः॥ 92॥

शब्दार्थ—(**भिक्षा-आशी**) भिक्षा में मिले अन्न पर निर्वाह करनेवाला (**जन-मध्य-सङ्ग-रहितः**) लोगों के बीच में रहकर भी किसी में आसक्ति न रखनेवाला (**सदा, स्वायत्तचेष्टः**) सदा अपनी पवित्र इच्छाओं में ही रमनेवाला (**हान-आदान-विरक्त-मार्ग-निरतः**) त्याग और ग्रहण [देने-लेने] में वैराग्य-मार्ग में स्थित अर्थात् उदासीन (**रथ्या-कीर्ण-विशीर्ण-जीर्ण-वसनैः**) व्यर्थ होने के कारण गली में फेंके गये फटे-पुराने वस्त्रों से (**सम्प्राप्त-कन्था-आसनः**) गुदड़ी और आसन बनाकर (**निर्मानः**) मानरहित (**निरहङ्कृतिः**) अभिमान से दूर (**शम-सुख-आभोग+एक-बद्ध-स्पृहः**) मन की शान्ति से प्राप्त सुख को भोगने की ही एकमात्र इच्छा लिये (**कश्चित्**) कोई विरला ही (**तपस्वी स्थितः**) तपस्वी या योगीश्वर होता है।

भावार्थ—भिक्षा पर निर्वाह कर ले, लोगों के बीच में रहकर भी किसी से कोई लगाव न रक्खे, देने-लेने में उदासीन हो, जहाँ-तहाँ पड़े फटे-पुराने चिथड़ों की गुदड़ी और आसन बनाकर उन्हीं से निर्वाह करे, मान और अहंकार से रहित हो, मन सदा शान्त हो—ऐसी स्थिति किसी महान् तपस्वी अथवा योगीश्वर की ही हो सकती है।

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथ किं तापसः,
किं वा तत्त्वनिवेशपेशलमतिर्योगीश्वरः कोऽपि किम्।
इति उत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैराभाष्यमाणा जनैर्,
न क्रुद्धाः पथि नैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः॥ 93॥

शब्दार्थ—(**अयम्, चाण्डालः, किम्**) क्या यह मनुष्य चाण्डाल है (**अथवा**) अथवा (**द्विजातिः**) ब्राह्मण है (**अथ, शूद्रः**) या शूद्र है (**किम्**) किंवा (**तापसः**) कोई तपस्वी है (**किम् वा**) अथवा (**तत्त्व-निवेश-**

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पेशलमतिः) तत्त्वज्ञान में पटु, चतुर, बुद्धिवाला (**कः अपि योगीश्वरः किम्**) कोई योगीश्वर है क्या? (**इति**) इस प्रकार (**उत्पन्न-विकल्प-जल्प-मुखरैः**) मन में उठे सन्देहों को कहने में ढीठ लोगों के द्वारा (**न क्रुद्धाः**) न तो क्रुद्ध होते हैं (**न, एव**) और न ही (**तुष्टमनसः**) प्रसन्न होते हैं, अपितु (**स्वयं पथि**) अपने मार्ग पर (**यान्ति**) आगे बढ़ जाते हैं।

भावार्थ—किसी योगी को देखकर लोग नाना प्रकार की बातें करते हैं। कोई कहता है यह चाण्डाल है, कोई कहता है ब्राह्मण है, कोई उसे शूद्र बताता है, कोई उसे तपस्वी कहता है तो कोई उसे योगी बताता है। कोई अच्छा कहे या बुरा, योगी इन बातों पर ध्यान न देकर अपनी राह में बढ़ते जाते हैं।

हिंसाशून्यमयत्नलभ्यमशनं धात्रा मरुत्कल्पितं,
व्यालानां पशवस्तृणाङ्कुरभुजः सृष्टाः स्थलीशायिनः।
संसारार्णवलङ्घनक्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणां,
तामन्वेषयतां प्रयान्ति सततं सर्वे समाप्तिं गुणाः॥ 94॥

शब्दार्थ—(**धात्रा**) विधाता ने (**व्यालानाम्**) सर्पों के लिए (**हिंसाशून्यम्**) हिंसा से रहित और (**अयत्न-लभ्यम्**) विना परिश्रम के, अनायास मिलनेवाला (**अशनम्**) आहार (**मरुत्**) पवन (**कल्पितम्**) बनाया है अर्थात् सर्प वायुभक्षण से ही जीवित रह जाते हैं। (**पशवः**) गौ आदि पशु (**तृण-अङ्कुर-भुजः**) घास-पात खानेवाले और (**स्थली-शायिनः**) भूमि पर सोनेवाले (**सृष्टाः**) बनाये गये हैं, परन्तु (**संसार-अर्णव-लङ्घन-क्षम-धियाम्**) संसाररूपी सागर के पार उतरने में समर्थ बुद्धिमान् (**नृणाम्**) मनुष्यों की (**सा वृत्तिः कृता**) ऐसी वृत्ति बनाई है कि (**ताम्**) उस वृत्ति को (**सततम्**) सदा (**अन्वेषयताम्**) खोज करनेवालों के (**सर्वे गुणाः**) सत्त्व, रज, तम आदि सभी गुण (**समाप्तिम्, प्रयान्ति**) समाप्त हो जाते हैं।

भावार्थ—ब्रह्मा ने सर्पों के लिए विना हिंसा और परिश्रम से प्राप्त होनेवाला आहार पवन बनाया। पशुओं के लिए घास बना दी जिसे खाकर वे चाहे जहाँ पड़े रहते हैं। जब नीच योनियों के लिए आहार की इतनी उत्तम व्यवस्था है तब मनुष्य के लिए भी इतनी ही पवित्र व्यवस्था होगी, अतः मनुष्य को ऐसे आहार-विहार की खोज में रहना चाहिए जिससे वह गुणातीत बन जाए। दूसरे शब्दों में, योगियों को अहिंसक वृत्ति द्वारा, अनायास प्राप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वस्तु से प्रसन्न रहकर, कहीं भी निवास करते हुए सांसारिक चक्कर में डालनेवाले रजोगुण और तमोगुण से दूर रहकर सदा आत्मानुसन्धान में संलग्न रहना चाहिए।

गङ्गातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य,
ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य।
किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशङ्काः,
कण्डूयन्ते जरठहरिणाः स्वाङ्गमङ्गे मदीये॥ 95॥

शब्दार्थ—(**गङ्गा-तीरे**) गङ्गा के किनारे (**हिम-गिरि-शिला-बद्ध-पद्म-आसनस्य**) हिमालय पर्वत की चट्टान पर पद्मासन लगाये हुए और (**ब्रह्म-ध्यान-अभ्यसन-विधिना**) ब्रह्म-उपासना की क्रिया द्वारा (**योग-निद्राम् गतस्य**) योगनिद्रा=निर्विकल्प समाधि की अवस्था में पहुँचे हुए (**मम**) मुझे (**तैः, दिवसैः भाव्यम् किम्**) वे दिवस क्या कभी प्राप्त हो सकेंगे (**यत्र**) जब (**जरठहरिणाः**) बूढ़े हिरण (**निर्विशङ्काः**) बेखटके, निर्भय होकर (**मदीये अङ्गे**) मेरे शरीर से (**स्व-अङ्गम्**) अपने शरीर को (**कण्डूयन्ते**) खुजाते हों, रगड़ते हों ?

भावार्थ—क्या मेरे जीवन में वे सुदिन कभी आएँगे जब मैं गङ्गा के किनारे हिमालय पर्वत की किसी शिला पर पद्मासन लगाकर निर्विकल्प समाधि में लीन होऊँगा और उस अवस्था में जंगली हिरन मुझे निर्जीव समझकर मेरे शरीर से अपनी देह को रगड़-रगड़कर अपनी खुजलाहट मिटाएँगे और इस प्रकार आनन्द अनुभव करेंगे ?

पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्षमक्षय्यमन्नं,
विस्तीर्णं वस्त्रमाशादशकमपमलं तल्पमस्वल्पमुर्वी।
येषां निःसङ्गताङ्गीकरणपरिणतस्वान्तसन्तोषिणस्ते,
धन्याः संन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराः कर्म निर्मूलयन्ति॥ 96॥

शब्दार्थ—(**पाणिः**) हाथ, हथेली (**पवित्रम्**) पवित्र (**पात्रम्**) पात्र है (**भ्रमण-परिगतम्**) भ्रमण द्वारा प्राप्त (**भैक्षम्**) भिक्षा जिनका (**अक्षय्यम्**) कभी समाप्त न होनेवाला (**अन्नम्**) अन्न है (**आशादशकम्**) दसों दिशाएँ (**अपमलम्**) निर्मल (**विस्तीर्णम्**) लम्बा-चौड़ा (**वस्त्रम्**) ओढ़ना है (**उर्वी**) भूमि (**अस्वल्पम्**) अत्यन्त विस्तृत (**तल्पम्**) शय्या या बिछौना है (**येषाम्, निःसङ्गता-अङ्गीकरण+परिणत-स्वान्तसन्तोषिणः**) अनासक्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को अपनाने के कारण जिनका अन्तःकरण सन्तोष से परिपूर्ण है (**संन्यस्त-दैन्य-व्यतिकर-निकराः**) जिन्होंने दीनता और समस्त सम्बन्ध त्याग दिये हैं (**ते धन्याः**) वे सौभाग्यशाली पुरुष (**कर्म निर्मूलयन्ति**) अपने तीनों प्रकार के [पाप, पुण्य और मिश्रित] कर्मों का समूल नाश करते हैं।

भावार्थ—हाथ की हथेली ही जिनका पात्र है, भिक्षा ही जिनका सतत भोजन है, दिशाएँ ही ओढ़ना है अर्थात् नंगे रहते व भूमि पर सो जाते हैं, संसार के सभी सम्बन्धों को तोड़कर सदा प्रसन्न रहते हैं, जिन्होंने दीनता को छोड़ दिया है, ऐसे सौभाग्यशाली मनुष्य अपने त्रिविध कर्मों का समूल नाश कर देते हैं।

मातर्मेदिनि तात मारुत सखे तेजः सुबन्धो जल,
भ्रातर्व्योमनिबद्ध एष भवतामन्त्यः प्रणामाञ्जलिः।
युष्मत्सङ्गवशोपजात - सुकृतस्फारस्फुरन्निर्मल-
ज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमा लीये परब्रह्मणि॥ 97॥

शब्दार्थ—(**मातः मेदिनि**) हे माता पृथिवी! (**तात मारुत**) हे पिता वायुदेव! (**सखे तेजः**) हे मित्र अग्निदेव व सूर्य! (**सुबन्धो जल**) प्यारे बन्धु जल! (**भ्रातः व्योम**) हे भाई आकाश! अब मैं (**भवताम्**) आप सब को (**एषः**) यह (**अन्त्यः**) अन्तिम (**प्रणाम-अञ्जलिः निबद्धः**) हाथ जोड़ रहा हूँ, विदाई का अन्तिम प्रणाम करता हूँ, क्योंकि (**युष्मत्**) आप लोगों की (**सङ्ग-वश-उपजात-सुकृत-स्फार-स्फुरत्-निर्मल-ज्ञान-अपास्त-समस्त-मोह-महिमा**) सङ्गति के कारण उत्पन्न हुए पुण्यफल से अत्यन्त जगमगाते हुए विशुद्ध ज्ञान द्वारा सांसारिक मोहमाया दूर हो गई, सारे अज्ञान घुल गये और अब मैं (**परब्रह्मणि लीये**) परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त हो रहा हूँ—मुक्ति को प्राप्त हो रहा हूँ।

भावार्थ—हे पृथिवी माता! हे पिता वायुदेव! हे मित्र अग्नि व सूर्यदेव! प्यारे बन्धु जल! हे भाई आकाश! मैं तुमको अन्तिम प्रणाम के साथ हाथ जोड़ता हूँ, क्योंकि तुम सभी की संगति के कारण उत्पन्न हुए पुण्य फल से अत्यन्त जगमगाते हुए विशुद्ध ज्ञान द्वारा सांसारिक मोह-माया दूर हो गई और मैं अब परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर रहा हूँ।

शय्या शैलशिला गृहं गिरिगुहा वस्त्रं तरूणां त्वचः,
सारङ्गाः सुहृदो ननु क्षितिरुहां वृत्तिः फलैः कोमलैः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

येषां निर्झरमम्बुपानमुचितं रत्यै तु विद्याङ्गना,
मन्ये ते परमेश्वराः शिरसि यैर्बद्धो न सेवाञ्जलिः ॥ 98 ॥

शब्दार्थ—(**येषाम्**) जिन लोगों की (**शय्या**) बिछौना (**शैलशिला**) पर्वत की चट्टान है, (**गृहम्**) घर (**गिरिगुहा**) पर्वत की गुफा है, (**वस्त्रम्**) वस्त्र (**तरूणां त्वचः**) वृक्षों की छाल है, (**सुहृदः**) मित्र (**सारङ्गाः**) हिरन हैं, (**वृत्तिः**) भोजन, आजीविका (**क्षितिरुहाम् कोमलैः फलैः**) वृक्षों के कोमल फलों द्वारा चलती है, (**अम्बुपानम्**) जलपान के लिए (**उचितम् निर्झरम्**) उचित मात्रा में झरने का जल है (**तु**) और (**रत्यै**) रति के लिए (**विद्या-अङ्गना**) ब्रह्मविद्यारूपी रमणी है। (**यैः**) जिन्होंने (**शिरसि**) सिर पर (**सेवा-अञ्जलिः न बद्धः**) अञ्जलि बाँधकर किसी की सेवा का भार ग्रहण नहीं किया है मैं (**ते**) उन्हें (**परमेश्वराः**) सम्राट् (**मन्ये**) मानता हूँ।

भावार्थ—जो लोग पर्वत की शिला पर सो जाते हैं, पर्वत की गुफा ही जिनका घर है, वृक्षों की छाल ही जिनके वस्त्र हैं, हिरन जिनके मित्र हैं, वृक्षों के फल ही जिनका भोजन है, झरनों का पानी पीते हैं, रति-क्रीड़ा के लिए ब्रह्मविद्यारूपी रमणी जिनके पास है, जो किसी के सेवक=दास नहीं हैं, वे वस्तुतः सम्राट् हैं।

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी,
सत्यं मित्रमिदं दया च भगिनी भ्राता मनःसंयमः।
शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनं,
ह्येते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्माद् भयं योगिनः ॥ 99 ॥

शब्दार्थ—(**यस्य**) जिसका (**पिता**) पिता (**धैर्यम्**) धैर्य है (**च**) और (**क्षमा**) क्षमाशीलता (**जननी**) माता है (**शान्तिः**) शान्ति ही (**चिरम्**) चिरकाल तक साथ देनेवाली (**गेहिनी**) चिरसहचरी गृहिणी है (**सत्यम्**) सत्य (**इदम् मित्रम्**) यह मित्र है (**दया**) दया (**च**) ही (**भगिनी**) बहिन है, (**मनः संयमः**) मन का संयम (**भ्राता**) भाई है, (**भूमितलम्**) भूमि का तल=फर्श (**शय्या**) शय्या है, (**दिशः**) दिशाएँ (**अपि**) ही (**वसनम्**) वस्त्र हैं, (**ज्ञान-अमृतम्**) ज्ञानामृत का आस्वादन ही जिसका (**भोजनम्**) भोजन है—(**सखे**) हे मित्र! (**वद**) भला बताओ (**यस्य**) जिस मनुष्य के (**हि एते**) ये सब ही (**कुटुम्बिनः**) कुटुम्बीजन हैं, ऐसे (**योगिनः**) योगी को (**भयम् कस्मात्**) भय किससे होगा? अर्थात् किसी से नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावार्थ—धैर्य जिसका पिता है, क्षमा जिसकी माता है, शान्ति जिसकी चिरसहचरी गृहिणी है, सत्य जिसका मित्र है, दया जिसकी बहिन है, मन का संयम जिसका भाई है, भूमि जिसकी शय्या है, दिशाएँ ही जिसके वस्त्र हैं और ज्ञानामृत का आस्वादन ही जिसका भोजन है—जिस योगी के ये सब कुटुम्बीजन हैं, हे मित्र! भला बताओ उसे संसार में किस से भय होगा?

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा,
मणौ वा लोष्ठे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा।
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्ति दिवसाः,
क्वचित्पुण्यारण्ये शिव-शिव-शिवेति प्रलपतः ॥ 100 ॥

शब्दार्थ—(**अहौ**) सर्प में (**वा**) और (**वा**) अथवा (**हारे**) पुष्पहार में (**बलवति-रिपौ**) बलवान् शत्रु में (**वा**) तथा (**वा**) अथवा (**सुहृदि**) सन्मित्र में, (**मणौ**) मणि में (**वा**) और (**वा**) या (**लोष्ठे**) मिट्टी के ढेले में, (**कुसुम-शयने**) फूलों की शय्या पर (**वा**) तथा (**वा**) अथवा (**दृषदि**) पत्थर की शिला पर, (**तृणे वा**) तिनकों [घासफूस की बनी] (**वा**) और (**वा**) या (**स्त्रैणे**) हाड़ मांस की बनी नारी-आकृति में (**समदृशः**) समान दृष्टि रखते हुए (**क्वचित्**) किसी (**पुण्ये**) रमणीक (**अरण्ये**) वन में (**शिव-शिव-शिव इति**) 'शिव, शिव-शिव' ऐसा (**प्रलपतः**) उच्चारण करते हुए (**मम**) मेरे (**दिवसाः**) दिन (**यान्ति**) व्यतीत हों—यही अभिलाषा है।

भावार्थ—सर्प में अथवा पुष्पहार में, बलवान् शत्रु में या मित्र में मणि में या मिट्टी के ढेले में, फूलों की शय्या अथवा पत्थर की शिला में, तिनकों [घासफूस] की बनी अथवा हाड़मांस की बनी नारी-आकृति में समदृष्टि रखते हुए रमणीय वन में 'शिव-शिव-शिव' ऐसा उच्चारण करते हुए मेरे दिन व्यतीत हों—यही एकमात्र अभिलाषा है।

इति वैराग्यशतकम्॥

समाप्तश्चायं ग्रन्थः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्लोकानुक्रमणिका

अ

अकरुणत्वमकारण 35
अग्रे गीतं सरस 172
अच्छाच्छचन्दन 120
अजानन् दाहात्म्यं 140
अज्ञः सुखमाराध्यः 9
अदर्शने दर्शनमात्र 84
अधिगतपरमार्थान् 17
अपसर सखे 101
अप्रियवचनदरिद्रैः 71
अभिमतमहामान 143
अभुक्तायां यस्यां 166
अमीषां प्राणानां 132
अम्भोजिनी वन 18
अयममृतनिधानं 60
अर्थानामीशिषे त्वं 163
अर्धं सुप्त्वा निशायाः 125
अवश्यं यातारश्चिर 136
अश्नीमहि वयं 165
असन्तो नाभ्यर्थ्याः 27, 43
असाराः सन्त्येते 91
असूचीसञ्चारे 124
अहौ वा हारे वा 192

आ

आक्रान्तं मरणेन 150
आज्ञा कीर्तिः पालनं 33
आदित्यस्य गतागतै 157
आधिव्याधिशतैः 150
आमीलितनयनानां 86
आयुः कल्लोललोलं 154
आयुर्वर्षशतं नृणाम् 161
आरम्भगुर्वी क्षयिणी 39
आलस्यं हि मनुष्याणां 71
आवर्तः संशयानां 97
आवासः किल वञ्चित 118
आवासः क्रियतां 94
आशा नाम नदी 135
आसंसारं त्रिभुवनं 181
आसारेण न हर्म्यतः 125

इ

इतः स्वपिति केशवः 50
इतो विद्युद्वल्ली 123
इदमनुचितमक्रमश्च 87
इयं बाला मां 107
इह हि मधुरगीतं 105

उ-ऊ

उत्खातं निधिशङ्कया 130
उद्भासिताखिल 39
उद्वृत्तः स्तनभार 81
उन्मत्तप्रेमसंरम्भात् 114
उन्मीलत्त्रिवली 99
उपरि घनं घनपटलं 123
उरसि निपतितानां 86

ए

एकाकी निस्पृहः 184
एकेनाऽपि हि शूरेण 72
एके सत्पुरुषाः 48
एको देवः केशवो वा 45
एतत्कामफलं 87
एतस्माद्विरमेन्द्रिय 170
एताश्चलद्वलय 77

ऐ

ऐश्वर्यस्य विभूषणं 58

क

कदर्थितस्यापि 56
करे श्लाघ्यस्त्यागः 41
कर्मायत्तं फलं 71
कश्चुम्बति कुल 102
कान्ताकटाक्षविशिखा 55
कान्तेत्युत्पल 95
कामिनीकायकान्तारे 104
किं कन्दर्प करं 108
किं कन्दाः कन्दरेभ्यः 145
किं गतेन यदि सा 109
किं तेन हेमगिरिणा 52
किं वेदैः स्मृतिभिः 174
किमिह बहुभिरुक्तैः 94
कुङ्कुमपङ्कसमा 78
कुसुमस्तबकस्येव 24
कृच्छ्रेणामेध्यमध्ये 151
कृमिकुलचितं 13
कृशः काणः खञ्जः 115
केयूराणि न भूषयन्ति 18
केशाः संयमिनः श्रुतेः 79

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

केशानाकुलयन्दृशो 127
को लाभो गुणिसङ्गमः 72
कौपीनं शतखण्ड 185
क्वचित्सुभूभङ्गैः 74
क्वचिद् भूमौ शय्या 54
क्षणं बालो भूत्वा 161
क्षान्तं न क्षमया 132
क्षान्तिश्चेत्कवचेन किं 19
क्षीरेणात्मगतोदकाय 49
क्षुत्क्षामोऽपि जरा 22

ख

खल्लोलापाः सोढाः 131
खस्वाटो दिवसे 60

ग

गङ्गातरङ्गकण 144
गङ्गातीरे हिमगिरि 189
गज भुजङ्गविहङ्गम 61
गात्रं सङ्कुचितं 176
गुणवद्गुणवद्गा 68
गुरुणा स्तनभारेण 82

च

चाण्डालः किमयं 187
चुम्बन्तो गण्डभित्तीः 126
चूडोत्तंसितचारुचन्द्र 129
चेतश्चिन्तय मा 171

छ

छिन्नोऽपि रोहति तरुः 57

ज

जयन्ति ते सुकृतिनो 22
जल्पन्ति सार्धमन्येन 100
जाड्यं धियो हरति 21
जाड्यं ह्रीमति 36
जातः कूर्मः स एकः 50
जातिर्यातु रसातलं 28
जात्यन्धाय च 103
जीर्णा एव मनोरथाः 182
जीर्णा कन्थाः ततः किं 142

त

तपस्यन्तः सन्तः 178
तरुणी वेषोद्दीपित 122
तस्मादनन्तमजरं 173
तस्याः स्तनौ यदि 81
तानीन्द्रियाण्य 28
तावदेव कृतिनामपि 111
तावदेवामृतमयी 96
तावन्महत्त्वं पाण्डित्यं 114
तुङ्ग वेश्म सुताः 141
तृषा शुष्यत्यास्ये 140
तृष्णां छिन्धि भज 51
त्वं राजा वयमपि 162
त्वमेव चातकाधारो 34

द

दाक्षिण्यं स्वजने 20
दानं भोगो नाशः 30
दिक्कालाद्यनव 8
दिशं वनहरिणीभ्यो 91
दीना दीनमुखैः सदैव 142
दुराराध्याश्चामी 178
दुर्जनः परिहर्तव्यो 35
दैवेन प्रभुणा स्वयं 64
दौर्मन्त्र्यान्नृपति 30
द्रष्टव्येषु किमुत्तमं 76

ध

धन्यानां गिरिकन्दरेषु 138
धन्यास्त एव धवला 106
धैर्यं यस्य पिता 191

न

न कश्चिच्चण्डकोपाना 38
न गम्यो मन्त्राणां 104
न ध्यातं पदमीश्वरस्य 158
न नटा न विटा 165
नमस्यामो देवान् 65
नम्रत्वेनोन्नमन्तः 46
न संसारोत्पन्नं 136
नाभ्यस्ता प्रतिवादि 159
नामृतं न विषं 97
निन्दन्तु नीतिनिपुणा 55
निवृत्ता भोगेच्छा 134
नूनमाज्ञाकरस्तस्याः 79
नूनं हि ते कविवरा 78
नेता यस्य बृहस्पतिः 58
नैवाकृतिः फलति 69

प

पतितोऽपि कराघातैः 57
पत्रं नैव यदा करीर 62
पद्माकरं दिनकरो 47
परिक्षीणः कश्चित् 31
परिभ्रमसि किं 169
परिमलभृतो वाताः 117
परेषां चेतांसि 168

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाणिः पात्रं पवित्रं 189
पातालमाविशसि 174
पान्थस्त्री विरहानला 119
पापान्निवारयति 49
पुण्ये ग्रामे वने वा 144
पुण्यैर्मूलफलैस्तथा 145
प्रणयमधुराः प्रेमो 83
प्रथितः प्रणयवतीनां 119
प्रदानं प्रच्छन्नं 45
प्रसह्य मणिम् 10
प्राङ् मा मेति 85
प्राणाघातान्निवृत्तिः 42
प्रासाः श्रियः सकल 172
प्रारभ्यते न खलु 53
प्रियसखे विपद्दण्ड 63

फ

फलं स्वेच्छालभ्यं 146
फलमलमशनाय 164

ब

बाले लीलामुकुलितं 106
बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः 9
ब्रह्मज्ञानविवेकनिर्मल 137
ब्रह्माण्डं मण्डली 185
ब्रह्मा येन कुलालवत् 65
ब्रह्मेन्द्रादिमरुद्गणा 155

भ

भक्तिर्भवे मरण 173
भग्नाशस्य करण्ड 59
भवन्ति नम्रास्तरवः 46
भवन्तो वेदान्त 92
भिक्षाशी जनमध्य 187
भिक्षाशनं चदपि 138
भिक्षाहारमदैन्यमप्रति 148
भीमं वनं भवति 71
भोगा न भुक्ता वयमेव 133
भोगा भङ्गुरवृत्तयो 153
भोगा मेघवितानमध्य 153
भोगास्तुङ्गतरङ्गभङ्ग 152
भोगे रोगभयं कुले 149
भ्रान्तं देशमनेकदुर्ग 130
भ्रूचातुर्यात्कुञ्चिता 74

म

मज्जत्वम्भसि यातु 69
मणिः शाणोल्लीढः 31
मत्तेभकुम्भदलने 112
मधु तिष्ठति वाचि 106
मधुरयं मधुरैरपि 138
मनसि वचसि कायेः 52
महाशय्या पृथ्वी 186
महेश्वरे वा जगतां 183
मातर्मेदिनि तात 190
मातर्लक्ष्मी भजस्व 186
मात्सर्यमुत्सार्य 92
माने म्लायिनि 179
मालती शिरसि 85
मुखेन चन्द्रकान्तेन 82
मुण्डे धातुमता 80
मृगमीनसज्जनानाम् 40
मृत्पिण्डो जलरेखया 167
मोहं मार्जय तत्त्वम् 170
मौनान्मूकः प्रवचन 38

य

यः प्रीणयेत्सुचरितैः 45
यत्तो मेरुः श्रीमान् 175
यत्रमनेकः क्वचिदपि 156
यदचेतनोऽपि पादैः 27
यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं 12
यदा यथा भवस 110
यदासीदज्ञानं स्मर 111
यदेतत्पूर्णेन्दु 99
यदेतत्स्वच्छन्दं 181
यद्ब्रह्मा निजभाल 34
यद्यस्य नास्ति रुचिरं 128
यस्यास्ति वित्तं 29
यां चिन्तयामि सततं 8
यामवलम्ब्य परमिदं 177
यामा रमा पूर्णश्च 666
ये चैतन्यसुखेन 62
ये वर्तन्ते धनपतिपुरः 147
येषां न विद्या न तपो 135
ये सन्तोषसिस्तर 147

र

रत्नैर्महाब्धे 53
रम्यं हर्म्यतलं न 180
रम्याश्चन्द्रमरीचयः 179
रागस्यागामवेकं 89
राजन् तृणाय्युत्तरो 87
राजन् दुधुक्षसि यदि 32
रात्रिः सैव [illegible] 158
रे रे [illegible] 34

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ल

लज्जागुणौघजननीं 72
लभेत सिकतासु 10
लाङ्गूलचालन 24
लीलावतीनां सहजा 98
लोभश्चेद्गुणेन किं 36

व

वक्त्रं चन्द्रविकासि 75
वचसि भवति सङ्ग 111
वने रणे शत्रुजला 70
वयं येभ्यो जाता 160
वयमिह परितुष्टा 164
वरं तुङ्गाच्छृङ्गाद् 56
वरं पर्वतदुर्गेषु 16
वरं प्राणोच्छेदः 26
वर्णं सितं शिरसि 176
वलिभिर्मुखाक्रान्तं 134
वहति भुवनश्रेणीं 26
वह्निस्तस्य जलायते 57
वाञ्छा सज्जनसङ्गमे 40
वितीर्णे सर्वस्वे 184
विद्या नाधिगता 160
विद्या नाम नरस्य 19
विपदि धैर्यमथा 41
विपुलहृदयैरीशैः 166
वियदुपचितमेघं 123
विरमत बुधा योषित् 109
विरम विरमायासाद 64
विरहेऽपि सङ्गमः 108
विश्रम्य विश्रम्य 84
विश्वामित्रपराशर 116
विस्तारितं मकर 100
वेश्यासौ मदन 103
वैराग्ये सञ्चरत्ये 128
व्याघ्रीव तिष्ठति जरा 152
व्यादीर्घेण चलेन 102
व्यालं बालमृणाल 11

श

शक्यो वारयितुं 14
शम्भुस्वयम्भुहरयो 73
शय्या शैलशिला 190
शशी दिवसधूसरो 37
शास्त्रज्ञोऽपि प्रथित 114
शास्त्रोपस्कृत 16
शिरः शार्वं स्वर्गान् 13
शुभ्रं सद्म सविभ्रमो 67
शृङ्गारद्रुमनीरदे 88
श्रोत्रं श्रुतेनैव न 47

स

संसार तव पर्यन्त 90
संसारेऽस्मिन्नसारे 89
संसारेऽस्मिन्नसारे परि० 93
स जातः कोऽप्यासीत् 168
स जातो येन जातेन 24
सति प्रदीपे सत्यग्नौ 80
सत्यं जना वच्मि 95
सत्यमेव न शशाङ्क 98
सत्यानृता च परुषा 33
सन्तप्तायसि संस्थितस्य 44
सन्त्यन्येऽपि 25
सन्मार्गे तावदास्ते 113
सम्पत्सु महतां 43
सम्मोहयन्ति मद 83
सहकारकुसुमकेसर 120
सा रम्या नगरी 155
साहित्यसङ्गीत 15
सिंहः शिशुरपि 28
सिद्धाध्यासित कन्दरे 90
सुधाशुभ्रं धाम 121
सृजति तावदशेष 62
स्तनौ मांसग्रन्थी 139
स्त्रीमुद्रां कुसुमायुधस्य 116
स्थाल्यां वैदूर्यमय्यां 68
स्फुरत्स्फारज्योत्स्ना 183
स्मितं किञ्चिद्वक्त्रे 76
स्मितेन भावेन च 73
स्मृता भवति तापाय 96
स्रजो हृद्यामोदा 121
स्वपरप्रतारकोऽसौ 112
स्वल्पस्नायुवसा 23
स्वायत्तमेकान्तहितं 12

ह

हर्तुर्याति न गोचरं 16
हिंसाशून्यमयत्न 188
हेमन्ते दधिदुग्धसर्पिः 126

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जार्ज बर्नार्ड शॉ ने कहा था : प्रत्येक स्त्री को चाहिए कि जितनी जल्दी हो सके शादी कर ले और पुरुष का कर्त्तव्य है कि जहां तक हो सके शादी से बचे। आपकी क्या राय है? आप चाहे पुरुष हैं या नारी, सच्चे जीवन-साथी के लिए आप भी तरसते होंगे। क्यों न हम सब पहले अपने-अपने विचार संसार के महापुरुषों से मिला लें। हमने असंख्य पुस्तकों का मन्थन करके जो अमृत निकाला है उसे आप भी चख लीजिये। आप खुद मान जाएंगे कि आपको इसी की तलाश थी।

अमृतवाणी

से उत्तम जीवन-साथी आपको कहीं नहीं मिलेगा क्योंकि इसकी एक-एक बूंद में अमरता का दिव्य सन्देश है। देश-विदेश के सैकड़ों महापुरुषों की सूक्तियों से रची गई यह पुस्तक मित्रों और परिवारजनों में बांटिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

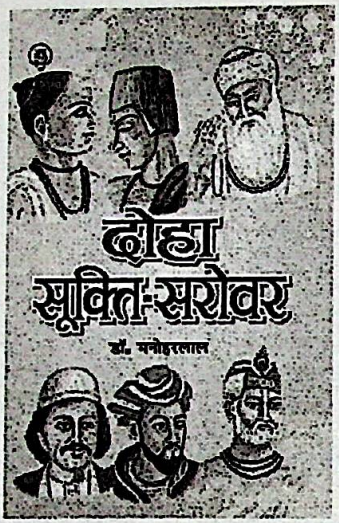

सीस, कान, मुख, नासिका, ऊँचे-ऊँचे ठाँव।
'सहजो' नीचे कारने, सब कोई पूजे पाँव॥

सहजोई कहती हैं—नम्रता ही व्यक्ति को महान् बनाती है। सिर, कान, मुख और नाक का चाहे शरीर में ऊँचा स्थान है, पर निचाई में होने के कारण सब कोई पाँव ही पूजते हैं।

हितहू भलो न नीच को, नाहिंन भलो अहेत।
चाटि अपावन तन करै, काटि श्वान दुख देत॥

वृन्द कहते हैं—नीच आदमी का न तो प्यार (हित) ही अच्छा और न वैर (अहित) ही भला। कुत्ता यदि चाटता है तो शरीर गंदा कर देता है, यदि काटता है तो प्राणों पर संकट बन जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

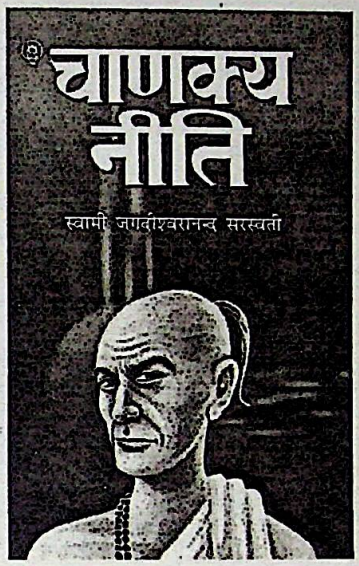

आचार्य चाणक्य कूटनीति और राजनीति के पर्याय हैं। उन जैसा नीतिज्ञ पिछले दो हजार वर्षों में अवतरित नहीं हुआ। चाणक्य के ग्रन्थों में उनका अर्थशास्त्र और चाणक्यनीति दो प्रमुख ग्रन्थ हैं।

नीतिग्रन्थों में चाणक्यनीति का विशेष स्थान है। चाणक्य का यह ग्रन्थ केवल राजनीति का विवेचन ही प्रस्तुत नहीं करता अपितु यह धर्मनीति में भी अपना सानी नहीं रखता।

चाणक्यनीति का भाष्य करते हुए स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ने निम्न विशेषताओं का समावेश किया है।

- प्रत्येक श्लोक का शब्दार्थ दिया गया है।
- पाठ का निर्धारण करने के लिए लुड्विग द्वारा सम्पादित चाणक्यनीतिदर्पण की सहायता ली गई है।
- धारावाही हिन्दी में अनुवाद होने पर भी प्रत्येक श्लोक का भावार्थ दिया गया है।
- प्रक्षिप्त श्लोकों का निर्देश कर दिया गया है।
- चाणक्यनीति के श्लोकों की अनुक्रमणिका दी गई है जो अन्यत्र किसी पुस्तक में नहीं मिलेगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

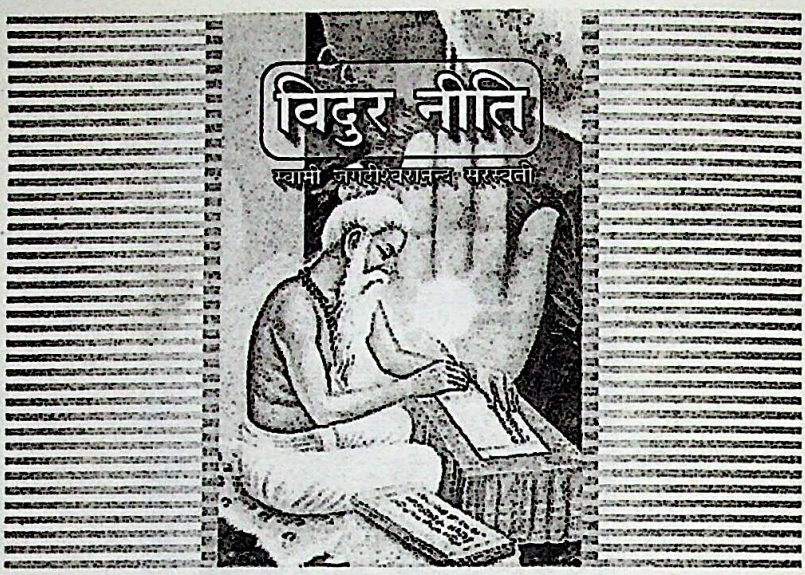

जब भी किसी राष्ट्र में, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, घूसखोरी, बलात्कार और भाई-भतीजावाद का बोल बाला हो जाता है तो उस देश की सरकार और प्रजा को निश्चित ही हत्याओं के दौर से गुजरना पड़ता है, क्योंकि नैतिकता के मूलभूत सिद्धान्तों को ठुकराने वाले दुर्योधनों, दुःशासनों और शकुनियों के शासन में नये-से-नये 'महाभारत' के संग्राम छिड़ना अनिवार्य हो जाता है। यदि धृतराष्ट्र और दुर्योधन ने विदुर-नीति पर फूल चढ़ाए होते तो अठारह अक्षौहिणी का भीषण नर-संहार न होता। वर्तमान के सन्दर्भ में भी 'विदुर-नीति' का महत्व लेशमात्र भी कम नहीं हुआ है, क्योंकि नैतिकता के मूलभूत सिद्धान्त शाश्वत हैं। नीति कहें या राजनीति, जब तक इसके सिद्धान्तों को 'दिव्य सन्देश' मानकर इनपर आचरण नहीं होगा, तब तक विद्यार्थी हो या प्रधानमंत्री, अनपढ़ और अधूरा ही रहेगा।

विदुर-नीति का यह छोटा-सा ग्रन्थ
अनमोल शिक्षाओं से परिपूर्ण है।

परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द जी ने इसका भाष्य वर्तमान के सन्दर्भ में करके इसे और भी दिव्य और ग्राह्य बना दिया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महान् वही है जिसके वचन दृष्टान्त और लोकोक्तियाँ बन जायँ। इस कसौटी पर भर्तृहरि पूरी तरह खरे उतरे हैं। नीति, श्रृंगार और वैराग्य पर उनके रचे शतक (सौ-सौ श्लोक) शताब्दियों बाद भी लोगों को कंठस्थ हैं।

''भर्तृहरिशतकम्'' के अनुवाद और टिप्पणीकार स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ने इसे नवीन सुगन्धियों के साथ और भी महका दिया है।

- प्रत्येक पदांश का शब्दार्थ दिया गया है।
- प्रत्येक श्लोक का भावार्थ भी समझाया गया है।
- भाषा बोलचाल की, मुहावरेदार प्रयुक्त की गई है।
- छात्रों और विद्वानों, सभी के लिए उपयोगी बनाने पर विशेष ध्यान दिया गया है।
- अब तक प्रकाशित इस पुस्तक के विभिन्न संस्करणों की विशेषताओं को इसमें समाविष्ट किया गया है।
- अकारादि क्रम से अनुक्रमणिका भी दी गई है ताकि श्लोक ढूँढने में सुविधा रहे।
- आप स्वीकार करेंगे कि ''भर्तृहरिशतकम्'' का यदि कोई सर्वशुद्ध और सर्वांग सुन्दर प्रकाशन है तो एकमात्र यही है।

₹ 125/-

ISBN: 9788170780977

सुबोध पब्लिकेशन्स